बांसवाड़ा राज्य का इतिहास

महामहोपाध्याय
रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

महाराणा मेवाड़ हिस्टोरिकल पब्लिकेशन ट्रस्ट
उदयपुर के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

प्रकाशक :
राजस्थानी ग्रन्थागार
प्रकाशक एव वितरक
सोजती गेट, जोधपुर (राज.)

कार्यालय . 623933
निवास 32567

प्रथम सस्करण · 1936
द्वितीय सशोधित सस्करण . 1998

मूल्य तीन सौ पचास रुपये मात्र।

कम्प्यूटरीकरण :
सुदर्शन कम्प्यूटर सिस्टम
गैलेक्सी मार्केट, जोधपुर

मुद्रक :
एस. एन. प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली

BANSWARA RAJYA KA ITIHAS

Rai Bahadur Gaurishankar Heerachand Ojha

PUBLISHED BY : RAJASTHANI GRANTHAGAR, JODHPUR

Revised Edition 1998 Rs. 350.00

अरविन्द सिंह मेवाड़

राजमहल
उदयपुर

प्राक्कथन

तेरहवी शताव्दी के मध्य मे मेवाड के स्वामी सामंतसिंह ने वागड में जाकर गुहिल वंशी राज्य की स्थापना की। ई सं १५१८ के लगभग अनेक घटनाओ के परिणाम स्वरूप वागड राज्य के दो भाग हो गये, जिनमे से एक डूंगरपुर और दूसरा बांसवाड़ा राज्य के रूप मे प्रसिद्ध हुए। दक्षिणी राजस्थान मे ऐतिहासिक दृष्टि से बांसवाडा अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा द्वारा ई. सन् १९३६ में लिखित 'बासवाडा राज्य का इतिहास' पुनः प्रकाशित हो रहा है। कर्नल जेम्स टॉड तथा श्यामलदास दधवाड़िया के समकक्ष इतिहासवेत्ता तथा मेवाड राज्य के इतिहास महकमे के अधिकारी प गौरीशंकर ओझा के इतिहास ग्रन्थ भावी शोधकर्ताओ का मार्गदर्शन करते ही रहेगे।

स्वर्गवासी महाराणा श्री जी भगवतसिंहजी मेवाड इतिहास के अनन्य प्रेमी थे तथा पूर्वजों के प्रेरणादायी कृतित्व को अक्षुण्ण बनाये रखने मे उनकी रुचि थी।

पं. गौरीशंकर हीराचद ओझा का ग्रन्थ 'बांसवाडा राज्य का इतिहास' राजस्थान के गौरवमय इतिहास के शोधार्थियो तथा सामान्य जिज्ञासुओ के लिये समान महत्त्वपूर्ण होने के कारण पूज्य पिताश्री महाराणा भगवतसिहजी मेवाड द्वारा स्थापित 'महाराणा मेवाड हिस्टोरिकल पब्लीकेशन ट्रस्ट, उदयपुर' के सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

पं. गौरीशंकर हीराचद ओझा के इस इतिहास ग्रन्थ का महत्त्व सुस्थापित है ही इसलिये यह निश्चित है कि इतिहासकारो तथा इतिहास प्रेमियो की भावी पीढियो के लिये यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

अरविन्द सिंह मेवाड़

भूमिका

राष्ट्र के उत्थान और पतन का बोध इतिहास से ही होता है, इसलिए संसार में इतिहास का स्थान बड़ा ऊंचा है। जिस देश का इतिहास उन्नत है, वही विद्वत्समुदाय की दृष्टि में उन्नत माना जाता है। राजपूताना इतिहास का केंद्र और ऐतिहासिक सामग्री का भण्डार है। यहां की कोई भूमि ऐसी नहीं है, जो अनेक वीरों के रुधिर से न सींची गई हो, परन्तु उनकी अमर कीर्ति अब तक बहुधा अंधकार में ही आवृत है और बहुत थोड़ी सी ही प्रकाश में आई है।

दक्षिणी राजपूताने में बांसवाड़ा राज्य भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वहां पुरातत्त्व-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री मिलने का क्षेत्र है। ई० स० १६११ (वि० स० १६६८) में वहां के सरवाणिया गांव से ज़मीन के भीतर एक पात्र में गड़े हुए क्षत्रप राजाओं के २३६३ चांदी के सिक्के मिले, जो वि० सं० २३८-४१० (ई० स० १८१-३५३) तक के हैं। एक ही स्थल से एक बार में इतनी बड़ी संख्या में एक ही वंश के सिक्कों का मिलना इतिहास के लिए बड़े महत्व की बात है। विक्रम की बारहवीं शताब्दी के अर्थूणा, पाणाहेड़ा आदि के भग्नावशेष मंदिरों से और शिलालेखों से वागड़ के परमारों तथा तलवाड़ा के शिलालेख से गुजरात के सोलंकी नरेशों के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। तेरहवीं शताब्दी के मध्य में मेवाड़ के स्वामी सामंतसिंह ने अपना राज्य छूट जाने पर वागड़ में जाकर गुहिलवंशी राज्य की स्थापना की, जिसको अब लगभग ७५० वर्ष से अधिक हो गये हैं। प्रकृति के नियमानुसार कई उलट-फेर होते हुए वागड़ राज्य के भी वि० सं० १५७५ (ई० स० १५१८) के आसपास दो विभाग हो गये, जिनमें एक डूंगरपुर और दूसरा बांसवाड़ा राज्य है।

पर्वतीय प्रदेश होने और आवागमन के साधन सुलभ न होने से विद्वानों का बांसवाड़ा राज्य में बहुधा जाना नहीं हुआ, जिससे वहां के प्राचीन राजवंशों

का इतिहास तो दूर रहा, वर्त्तमान राजवंश का वास्तविक इतिहास भी अंधकार के आवरण में ढका हुआ है। यही कारण है कि किसी प्रतिष्ठित विद्वान्-द्वारा अब तक ऐसी कोई पुस्तक नहीं लिखी गई, जिससे वहां के वास्तविक इतिहास पर पूर्ण रूप से प्रकाश पड़े।

राजपूताना के अन्य राज्यों की भांति बांसवाड़ा राज्य भी विपत्तियों का केन्द्र रहा है। मुसलमानों के आक्रमणों के कारण तो कई साधन नष्ट हुए ही, पर गृहकलह, मेवाड़ के महाराणाओं की चढ़ाइयों, मरहटों और पिंडारियों के उपद्रवों से भी इस राज्य की कम क्षति नहीं हुई। कई वार राजधानी भी हाथ से निकल जाने के अवसर आये। कई देवमंदिर, प्रशस्तियां, पुस्तकें आदि इतिहासोपयोगी साधन वहां के निवासियों की अज्ञानता के कारण नष्ट हो गये तथापि बहुत कुछ सामग्री बची हुई है, जो कम महत्व की नहीं है, परंतु वह सुलभ नहीं है। उसको खोज निकालने के लिए अब तक राज्य अथवा वहां के निवासियों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। बाधाएं बहुत होने से बाहर के विद्वान् भी इस ओर कम प्रवृत हुए हैं। वस्तुतः यह कार्य राज्य की सहायता और सहयोग पर ही निर्भर है। यदि बांसवाड़ा राज्य वहां के प्राचीन स्थानों की रक्षा और पुरातत्त्व संबंधी वस्तुओं की खोज का कार्य आरंभ करे तो वहां के इतिहास में नवजीवन आ सकता है।

उदयपुर राज्य के बृहत् इतिहास वीरविनोद के लिखे जाने के समय बांसवाड़ा राज्य के अर्थूणा गांव में, जो पहले समृद्धिशाली नगर था, मेरा जाना हुआ। उस समय वहां के मंदिरों के भग्नावशेष और शिलालेखों को देख मेरे आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। राजपूताना म्यूज़ियम (अजमेर) का अध्यक्ष होने के बाद मेरा कई वार उस राज्य में दौरा हुआ और वहां के कई प्राचीन स्थानों को देखने का अवसर मुझे मिला। उस समय मेरे हृदय में मातृभाषा हिंदी में वहां का विस्तृत इतिहास न होने की बात खटकी। फलतः मैंने पुरातत्त्व-संबंधी अनुसंधान के साथ-साथ वहां के इतिहास की सामग्री भी संग्रह करना प्रारंभ कर राजपूताने

के इतिहास में उसको प्रकाशित करने का संकल्प किया। राज्य ने भी मेरे इस कार्य में यथासाध्य हाथ बंटाया और पिछले कुछ शिलालेखों की छापें या नक़लें तथा ताम्रपत्रों की नक़लें एवं बड़वे की ख्यात की नक़ल मेरे पास भेज दी। इस प्रकार संग्रहीत सामग्री तथा अन्य साधनों के आधार पर बांसवाड़ा राज्य के इतिहास की रचना का प्रयत्न किया गया है।

इतिहास लेखन में मुख्यतः प्राचीन समय की लिखी हुई पुस्तकों, पुरानी वंशावलियों, बड़वे, भाटों, राणीमंगों तथा अन्य व्यक्तियों की लिखी हुई ख्यातों, विदेशी और एतद्देशीय विद्वानों-द्वारा रचित संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि विविध भाषाओं की पुस्तकों तथा काव्यों, शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, राजकीय पत्र-व्यवहार, बहीखातों, प्राचीन सनदों (फ़रमान) आदि का उपयोग किया जाता है, परंतु बांसवाड़ा राज्य से प्राप्त सामग्री में उपर्युक्त बातों का बहुत कुछ अभाव है।

इस राज्य से संबंध रखनेवाली प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें अब तक देखने में नहीं आईं। यदि राज्य-द्वारा उनकी खोज होती तो कुछ तो अवश्य मिल जातीं। कुछ हस्तलिखित ब्राह्मण-ग्रंथ बांसवाड़ा के निवासियों के यहां मेरे देखने में आये। उनमें से केवल दो एक में ही वहां के राजाओं के नाम (जिनके समय पुस्तक लिखी गई है) और पुस्तक लिखने के संवत् दिये हैं।

पुरानी वंशावलियां भी इस राज्य में अवश्य होनी चाहियें, परंतु राज्य ने उनकी भी कोई खोज नहीं की है। मेरे बहुत खोजने पर केवल एक स्थान से १५० वर्ष पूर्व की लिखी हुई वहां के राजाओं की वंशावली मिली है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी है। शिलालेखों से उसमें दो एक स्थान पर संवत् का भले ही मिलान न हो, पर उसमें लिखी हुई घटनाएं और अधिकांश संवत् मिल जाते हैं।

पुरानी कोई भी ख्यात इस राज्य में नहीं है और न वहां राणीमंगों की ख्यात है। वहां से केवल बड़वे की ख्यात की नक़ल ही

आई है, जो सत्य-मार्ग से वंचित करती है। उसमें लिखित कई पुरानी घटनाएं विश्वास-योग्य नहीं हैं, क्योंकि उनकी वास्तविकता अन्य साधनों से सिद्ध नहीं होती। उसमें दिये हुए कई संवत् भी अशुद्ध हैं।

विदेशी और एतद्देशीय विद्वानों ने अपनी रचनाओं में इस राज्य के संबंध में बहुत कम लिखा है, जिसका कारण यही हो सकता है कि राजनैतिक दृष्टि से यह राज्य विशेष महत्त्व का नहीं रहा तथा वहां के राजाओं को अपने राज्य से बाहर जाकर वीरता प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिला। गत पचास वर्षों में राजपूताने में इतिहास की तरफ़ लोगों का अनुराग बढ़ा है, जिससे कतिपय विद्वानों ने इस राज्य का थोड़ा-थोड़ा इतिहास भी लिखा है, जो दस-पांच पृष्ठों से अधिक नहीं है और उससे वहां के इतिहास की विशेष रूप से पूर्ति नहीं होती।

शिलालेखों की छापें तथा दानपत्रों की नक़लें जो राज्य से आई हैं, उनसे वहां के इतिहास पर सम्यक् रूप से प्रकाश नहीं पड़ता। वहां से प्राप्त पिछले शिलालेख केवल मृत-वीरों का स्मरण दिलाते हैं। वे भी अधिकांश बिगड़े हुए और बहुत भ्रष्ट खुदे हैं। राज्य ने वहां के शिलालेखों की नक़लें और छापें तैयार करने के लिए पंडित करुणाशंकर शास्त्री को नियत किया, जिसके श्रम से कुछ सहायता अवश्य मिली है।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस राज्य पर महारावल जगमाल के वंशजों का ४०० वर्ष से शासन होने पर भी उनकी कोई विस्तृत प्रशस्ति अथवा शिलालेख नहीं है, जो वहां के इतिहास के लिए उपयोगी हो। इसका यही कारण हो सकता है कि प्रारंभ से ही बांसवाड़ा के नरेशों का ध्यान इतिहास के संरक्षण की तरफ़ नहीं गया। बहुधा उनमें विद्या-प्रेम की कमी होने से उनके दर्बार में कभी कोई ऐसा विद्वान् भी नहीं रहा, जो अपनी रचनाओं-द्वारा उनकी कीर्ति को अमर करता। वहां के नरेशों के बनवाये हुए उल्लेखयोग्य देवमंदिर, तालाब और बावलियां

आदि भी कम देखने में आई हैं । उनकी युद्ध-वीरता की गाथाएं भी विशेष रूप से लोक-प्रसिद्ध नहीं है, जिससे उनकी कीर्त्ति देशव्यापी होती।

बांसवाड़ा से आई हुई दानपत्रों की नक़लें भी वहां के इतिहास के संबंध में कोई विशेष बात प्रकट नहीं करतीं । वर्तमान राजवंश के चांदी के सिक्के तो स्वतंत्र रूप से चलते ही न थे। वहां से आये हुए कुछ शिला-लेखों और दानपत्रों के संवत् भी विश्वास के योग्य नहीं हैं।

राजकीय पत्र-व्यवहार, बहीखातों, पुरानी सनदों से इतिहास की बहुत कुछ कमी पूरी हो जाती है, परंतु बांसवाड़ा राज्य से पत्र-व्यवहार, बही-खाते आदि मिल नहीं सके। संभवतः राज्य में उनका अस्तित्व नहीं है। राज्यों के दफ़्तर पहले मंत्रियों आदि के यहां रहते थे। जब राजा उनसे अप्रसन्न हो जाता तो वे (मंत्री आदि) उपयोगी काग़ज़-पत्रों को छिपा देते अथवा उन्हें नष्ट कर डालते थे। यही कारण है कि राजपूताना के राज्यों में ऐसी सामग्री कम प्राप्त होती है। फिर भी कुछ राज्यों में ऐसी सामग्री बची हुई है, परंतु वह वहां के शासकों की उस ओर अभिरुचि न होने से नष्ट होती जाती है।

ऐसी परिस्थिति में बांसवाड़ा राज्य का सर्वाङ्ग-पूर्ण इतिहास लिखा जाना बहुत कठिन है, तथापि जितनी सामग्री उपलब्ध थी और जो खोज से प्राप्त हुई, उसके आधार पर इस इतिहास का निर्माण हुआ है। जनश्रुतियां और बड़वे-भाटों की ख्यातें ज्यो की त्यों स्वीकार नही की जाती हैं, क्योंकि काल पाकर उनमें मनगढ़ंत बातें भी जोड़ दी जाती हैं । इसलिए पुष्ट प्रमाणों की भित्ति पर जो बात युक्तिसङ्गत हो, उसी को ग्रहण किया जाता है। बांसवाड़ा राज्य का इतिहास लिखने में मैंने भी वैसा ही किया है। यह मैं ऊपर बतला चुका हूं कि बांसवाड़ा राज्य में प्राचीन ऐतिहासिक वस्तुओं की खोज कम ही हुई है। संभव है कि खोज से भविष्य में और कुछ नूतन बातों पर प्रकाश पड़े। उस समय इस इतिहास में भी परिवर्त्तन के स्थल उपस्थित हो सकते हैं; तो भी मुझे विश्वास है कि मेरा यह इतिहास भावी इतिहास-लेखकों को पथ-प्रदर्शक का काम अवश्य देगा।

बांसवाड़ा राज्य का यह इतिहास लगभग तीन वर्ष हुए, तैयार हो चुका था, परंतु मेरी वृद्धावस्था के कारण शारीरिक शक्ति ठीक न रहने तथा कुछ अन्य बाधाएं उपस्थित हो जाने से इसको प्रकाशित करने में बहुत अधिक विलंब हुआ है। जहां तक हो सका, इस इतिहास के लिखने में बहुत सावधानी रक्खी गई है, फिर भी भूल मनुष्य मात्र से होती है और मैं भी इसका अपवाद नहीं हूं। लेखक-दोष से कुछ स्थलों पर त्रुटियां रह गई हैं। इसके लिए अंत में शुद्धिपत्र लगा दिया गया है; तो भी अशुद्धियां रह जाना संभव है। आशा है पाठक उनके लिए मुझे सूचित करेंगे, ताकि द्वितीय संस्करण में उचित संशोधन कर दिया जाय।

मैं उन ग्रन्थकर्त्ताओं का, जिनके ग्रन्थों की नामावली अन्त में दी गई है, अत्यन्त अनुग्रहीत हूं। इस ग्रन्थ के प्रणयन में मुझे अपने पुत्र प्रोफ़ेसर रामेश्वर ओझा, एम० ए०, तथा निजी इतिहास विभाग के कार्यकर्ता पं० नाथूलाल व्यास तथा पं० चिरंजीलाल व्यास ने सहयोग दिया है, जिनका नामोल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूं।

अजमेर
वि० सं० १९९३

गौरीशंकर हीराचंद ओझा.

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूगोल-सम्बन्धी वर्णन

दूसरा अध्याय

बांसवाड़ा के प्राचीन राजवंश

(गुहिलवंश के अधिकार से पूर्व)

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

महारावल जगमाल से समरसिंह तक

विषय	पृष्ठांक

पांचवां अध्याय

महारावल कुशलसिंह से उम्मेदसिंह तक

विषय	पृष्ठांक

छठा अध्याय

महारावल भवानीसिंह से वर्तमान महारावळ सर पृथ्वीसिंहजी तक

सातवां अध्याय

महारावल के समीपी सम्बन्धी और मुख्य-मुख्य सरदार

परिशिष्ट

चित्र-सूची

राजपूताने का इतिहास

बांसवाड़ा राज्य का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल-सम्बन्धी वर्णन

बांसवाड़ा राज्य वागड़ (प्राचीन डूंगरपुर राज्य) का पूर्वी हिस्सा है। उसका अर्थ कोई कोई 'बांस की झाड़ी से रक्षित स्थान'[1] करते हैं।

स्थान और क्षेत्रफल

यह राज्य राजपूताने के बिल्कुल दक्षिणी भाग में २३° ३' और २३° ५५' उत्तर अक्षांश तथा ७३° ५८' और ७४° ४७' पूर्व देशांतर के बीच स्थित है। इसका क्षेत्रफल १६४६ वर्ग मील है।

---

(१) जहां इस समय राजधानी बांसवाड़ा है, वहां पहले बांसों की झाड़ी थी और अब भी इसके समीपवर्त्ती प्रदेश में बांसों की प्रचुरता है। इसी कारण इस क़स्बे का नाम 'बांसवाड़ा,' 'वंसबहाल' और 'बांसवाला' लिखा मिलता है।

बांसवाड़ा राज्य की ख्यात में लिखा है कि रावल जगमाल ने (वि० सं० १५८७-१६०१= ई० स० १५३०-१५४४) बासना भील को मारकर उसकी पाल (पल्ली) की जगह नया क़स्बा आबाद किया, जो उस (बांसना) के नाम से बांसवाड़ा कहलाया (अर्सकिन; बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर, पृष्ठ १५६); परन्तु यह कथा भाटों की गढ़ंत जान पड़ती है, क्योंकि रावल जगमाल के समय से पहले के शिलालेखों से बांसवाड़े का विद्यमान होना पाया जाता है—

वांसवाड़ा राज्य के उत्तर में प्रतापगढ़, उदयपुर और डूंगरपुर; पश्चिम में डूंगरपुर और सूंथ; दक्षिण में पंचमहाल का झालोद परगना, झाबुआ और इंदोर के पेटलावद परगने का कुछ अंश तथा पूर्व में सैलाना, रतलाम और प्रतापगढ़ राज्यों के अंश हैं। उत्तर से दक्षिण तक लंबाई लगभग ५८ मील और पूर्व से पश्चिम तक अधिक से अधिक चौड़ाई अनुमान ५० मील है।

सीमा

इस राज्य का मध्यवर्त्ती तथा पश्चिमी भाग खुला मैदान है, जो उपजाऊ है, किन्तु दक्षिण और पूर्व के हिस्से पहाड़ी हैं। इस प्रदेश में पहाड़ियां बहुधा उत्तर से दक्षिण की ओर चली गई हैं, जो १३०० से १७०० फुट तक ऊंची हैं। कुशलगढ़ से ६ मील उत्तर की एक पहाड़ी १६८८ फुट ऊंची है।

पर्वतश्रेणी

वांसवाड़ा राज्य की मुख्य नदी माही है, जो बहुधा सालभर बहती है।

नदिया

माही (मही, मही-सागर)—इस नदी का निकास ग्वालियर राज्य के आमझरा परगने से है। यह ग्वालियर, धार, झाबुआ, रतलाम और सैलाना राज्यों में बहती हुई राजपूताना में प्रवेश कर, दो मील तक रतलाम और वांसवाड़ा की सीमा बनाकर पूर्व में खांदू के पास वांसवाड़ा राज्य में प्रवेश करती है और अनुमान ४० मील उत्तर में बहती हुई उदयपुर और डूंगरपुर राज्य की सीमा तक चली जाती है। वहां से यह पश्चिम में मुड़कर वांसवाड़ा और डूंगरपुर राज्यों की सीमा पर बहती हुई, गुजरात के महीकांठा तथा रेवाकांठा राज्यों में प्रवेशकर खंभात की खाड़ी में जा

······स्वस्ति संवत् १५३६ आषाढ़ सुदि १ पूर्वे महाराजाधिराजश्रीसोमदासविजयराज्ये अद्येह श्रीबांसवालाग्रामात् युवराजश्रीगंगदास एतैः भट्टसोमदत्त एतेभ्यः चीतलीग्रामे भूमिहल ४ च्यारि उदकधारया शासनपत्रप्रसादीकृतं ए भूमि प्रयागि संकलपकरी······।

चीतली गांव के लेख की छाप से।

गिरती है। वांसवाड़ा राज्य तथा उसकी सीमा के आस-पास इसका वहाव क़रीव १०० मील है। इसके तट ऊंचे होने के कारण इसका जल खेती के काम में नहीं आता।

अनास—यह नदी मध्य भारत से निकलती है और वांसवाड़ा राज्य में प्रवेशकर उत्तर और उत्तर पश्चिम में ३८ मील वहकर पिपलाय गांव के निकट माही में मिल जाती है। तट ऊंचे होने के कारण इसका जल भी खेती के काम में नहीं आता।

हारन—यह नदी वांसवाड़ा राज्य की दक्षिण-पूर्वी पहाड़ियों से निकलती है और उत्तर तथा उत्तर पश्चिम में वहती हुई लिलवानी गांव के निकट अनास में जा गिरती है। इसके तट वहुत ऊंचे नहीं हैं, जिससे इसका जल खेती के काम में आता है।

एरो (एराव)—यह नदी प्रतापगढ़ राज्य से निकलती है। सेमलिया गांव के पास इस राज्य में प्रवेश करने के उपरान्त, यह उधर की पहाड़ियों का जल लेती हुई दक्षिण-पश्चिम में ३० मील बहकर, पारगांव के पास माही में मिलती है। पोनन और पांडिया नाम के नाले इसी में मिलते हैं। इसका जल खेती में सहायक है।

चाप—यह नदी कलिंजरा से उत्तर-पूर्व की पहाड़ियों से निकलती है और उत्तर तथा पश्चिम में वहती हुई गढ़ी से उत्तर-पश्चिम में माही में जा मिलती है। नागदी, कागदी और कलोल इसके सहायक नाले हैं। इसका बहाव क़रीव ३८ मील है और इसका जल खेती के काम में आता है।

इस राज्य में प्राकृतिक झील कोई नहीं है। कृत्रिम झीलों में भी कोई बड़ी झील नहीं है। छोटी झीलें नोगामा, तलवाड़ा, वागीदोरा, वजवाना, आसन, गनोड़ा, घाटोल, खोडन, मेतवाला, अर्थूणा, कलिंजरा और वाई तालाव (राजधानी के निकट) हैं।

झीलें

यहां का जलवायु सामान्यतः आरोग्यप्रद नहीं है। वर्षाऋतु के वाद दो महीने तक लोगों में प्रायः मलेरिया की शिकायत हो जाती है। उष्णकाल

जलवायु

में यहां गर्मी १०८° तक पहुंच जाती है और शीतकाल में कभी-कभी जल भी जम जाता है। बांसवाड़ा राज्य में वर्षा की औसत लगभग ३८ इंच है। यहां ई० स० १८६३ में ६५ इंच से कुछ अधिक और १८६६ में केवल १४ इंच वर्षा हुई थी।

ज़मीन और पैदावार

इस राज्य की भूमि का अधिकांश भाग खेती के लिए अच्छा है। उसमें खरीफ़ (सियालू) और रबी (उन्हालू) दोनों फ़सलें होती हैं। खरीफ़ का आधार वृष्टि है और रबी कुओं और तालावों से होती है। माळ की ज़मीन में दोनों फसलें बहुधा विना जल के ही हो जाती हैं, तो भी रबी की फ़सल खरीफ़ की फ़सल से बहुत कम होती है। इस राज्य के पश्चिम और दक्षिण ओर की समतल भूमि भूरी और रेतीली है, जो खेती के लिए बहुत उपयोगी है। राजधानी से दक्षिण-पश्चिम में तथा वहां से ५-१४ मील तक की ज़मीन काली (माळ) है, जिसमें रबी की फ़सल भी अच्छी होती है। राजधानी से पश्चिम और उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व की मिट्टी लाल और पथरीली होने से वहां भूरी या काली भूमि के समान अच्छी पैदावार नहीं होती। चौथी क़िस्म की मिट्टी बेरंगी अर्थात् भूरी-काली मिली हुई है और उसकी पैदावार एकसी नहीं है। पूर्व की तरफ़ के पहाड़ी प्रदेश के नीचे के हिस्सों की भूमि कहीं काली, कहीं बेरंगी और कहीं भूरी है, इसलिए भूमि के अनुसार वहां पैदावार अधिक या कम होती है। खरीफ़ की फ़सल में मुख्य पैदावार मक्का, जवार, तिल, माल, चावल, उड़द, मूंग, कुलथी, ग्वार, कपास, कोद्रा, बट्टी, कुरी, सन और मिर्च आदि हैं। रबी की फ़सल में मुख्य पैदावार गेहूं, जौ, चना, सरसों, अफ़ीम और जीरा हैं। गन्ने की खेती भी इस राज्य में होती है। पहाड़ों के ढालू हिस्सों में, जहां हल नहीं चल सकते, वहां भी ज़मीन खोदकर भील वगैरह मक्का बोते हैं, जिसको वालरा (प्राकृत में वल्लर) कहते हैं। शाकों में बैंगन, आलू, शकरकन्द, रतालू, अरवी, गोभी, प्याज, लहसन, ककड़ी आदि कई प्रकार के शाक और फलों में आम, केला, दाड़िम, खरबूजा, शहतूत, बेर, करौंदा और टींवरू (आबनूस) आदि यहां उत्पन्न होते हैं।

राज्य के आधे से अधिक भाग (विशेष कर उत्तर पूर्व) में जंगल है। उसमें सागवान, शीशम, आबनूस, बबूल, इमली, बड़, पीपल, हल्दू, सालर, महुआ, ढाक, धौ, कदम्ब आदि के वृक्ष हैं। बांस पहाड़ों में होते हैं। आम और महुआ अधिकतर खेतों की मेड़ों पर लगाये जाते हैं। खजूर के वृक्ष तर ज़मीन में पाये जाते हैं। जंगल की पैदावार में लकड़ी और घास के अतिरिक्त शहद, मोम, गोंद और लाख आदि हैं। राज्य के जंगल का कुछ अंश आज कल सुरक्षित है।

जंगल

पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, ऊंट, गधा, भेड़, बकरी आदि हैं। वन्य पशुओं में बाघ, चीता, भेड़िया, रीछ, सूअर, सांभर, चीतल, हिरण, नीलगाय, जरख, भेड़ला (चार सींगवाला हिरण), सियार, लोमड़ी, ख़रगोश आदि पाये जाते हैं। पक्षियों में मोर, तोता, कोयल, तीतर, कबूतर, बटेर, हरियल, चील, कौआ, गिद्ध, शिकरा, बाज़, जंगली मुर्ग़ आदि हैं। जल के निकट रहनेवाले पक्षियों में सारस, बगला, टिटिहरी, बतख़ और जलमुर्ग़ आदि हैं। जल-जन्तुओं में कछुआ, घड़ियाल, अनेक प्रकार की मछलियां और केकड़ा आदि पाये जाते हैं।

पशु-पक्षी

इस राज्य में उल्लेखनीय खान कोई नहीं है। जनश्रुति है कि तलवाड़ा के पास सोने की एक खान थी। खमेरा और लोहारिया में लोहे की खानें हैं, किन्तु कई वर्षों से ये बंद पड़ी हैं। तलवाड़ा, चींच और अचलपुरा में सफ़ेद पत्थर की, जो इमारतों के काम में आता है, खानें हैं। चूने का पत्थर कई स्थानों में मिलता है।

खानें

बांसवाड़ा राज्य में कोई रेल्वे नहीं है, किन्तु पूर्व में राज्य के नज़दीक बी० बी० एण्ड सी० आई० रेल्वे के रतलाम और नामली तथा दक्षिण-पूर्व में गोधरा-रतलाम ब्रांच पर भैरोंगढ़ स्टेशन है। गुजरात की तरफ़ का व्यापार बढ़ाने के लिए दोहद (बी० बी० एण्ड सी० आई० रेल्वे) स्टेशन बांसवाड़ा राज्य के निकट पड़ता है, जहां बांसवाड़े से झालोद होकर जाना पड़ता है। इसलिए राज्य ने झालोद

सड़कें

पहुंचने के लिए अपनी सीमा में पक्की सड़क बनाना शुरू किया है, जिसका अधिकांश भाग बन भी चुका है। इससे व्यापार में वृद्धि होकर आमद-रफ़्त में सुविधा होगी। बाक़ी तमाम इलाक़े में मोटरों, बैल-गाड़ियों, तांगों आदि के लिए कच्ची सड़कें बनी हुई हैं, जो चातुर्मास में बहुधा बिगड़ जाती हैं।

जन संख्या

इस राज्य में अब तक छः बार मनुष्य-गणना हुई है, जिसके अनुसार यहां की जनसंख्या ई० स० १८८१ में १५२०४५, ई० स० १८९१ में २११६४१, ई० स० १९०१ में १६५३५०, ई० स० १९११ में १८७४९८, ई० स० १९२१ में २१९५२४ और ई० स० १९३१ में २६०६७० (कुशलगढ़ सहित) थी। ई० स० १९०१ में मनुष्य-संख्या के अधिक घटने का कारण वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९८-९९) का भयंकर दुष्काल था।

धर्म

इस राज्य में प्रचलित धर्म हिन्दू, इस्लाम और जैन हैं। हिन्दू धर्म मे शैव, वैष्णव तथा शाक्त और जैनों में श्वेताम्बर, दिगम्बर एवं थानकवासी (ढूंढिये) हैं। मुसलमानों में शिया और सुन्नी हैं, जिनमें अधिक संख्या सुन्नी लोगों की है। शिया मत के माननेवालों में बोहरे मुख्य हैं। भील और मीणे भी, जिनकी संख्या इस राज्य में अधिक है, हिन्दू देवी-देवताओं के उपासक हैं। ईसाई धर्म के प्रचार के लिए यहां मिशन भी नियत है।

जातियां

बांसवाड़ा राज्य में सब से अधिक संख्या भीलों और मीणों की है, जिनकी गणना जंगली जातियों में की जाती है। इसका कारण उनका जंगलों और पहाड़ियों में रहना ही है। हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, कायस्थ, चारण, भाट, सुनार, दरोगा, दरजी, लुहार, सुथार (बढ़ई), कुम्हार, माली, नाई, धोबी, जाट, गूजर, कुनबी, मोची, बलाई, गाडरी, ढोली, मेहतर आदि अनेक जातियां हैं।

यहां के निवासी अधिकतर खेती करते हैं। कुछ लोग पशु-पालन

से भी अपना निर्वाह करते हैं। कई लोग व्यापार, नौकरी, दस्तकारी, मज़-

उद्योग

दूरी आदि करते हैं। व्यापार करनेवालों में महाजन और वोहरे मुख्य हैं। कुछ महाजन नौकरी और खेती भी करते हैं। ब्राह्मण पूजा-पाठ तथा पुरोहिताई करते हैं, किन्तु कोई-कोई खेती, व्यापार एवं नौकरी भी करते हैं। भील पहले खेती तथा मज़दूरी के अतिरिक्त चोरी-धाड़े का पेशा भी करते थे, किन्तु अब राज्य की ओर से वे खेती-बारी के काम में लगाये गये हैं, तो भी कहतसाली में वे अपना पुराना पेशा कभी-कभी कर ही बैठते हैं।

इस राज्य के निवासियों की सामान्य पोशाक पगड़ी, कुरता, लंबा अंगरखा और धोती है। ग्रामीण एवं भील आदि जंगली लोग पगड़ी के

वेष-भूषा

स्थान पर पोतिया (मोटा वस्त्र) बांधते हैं और कमर तक छोटा अंगरखा पहनते हैं। आजकल साफ़े तथा टोपी का प्रचार भी बढ़ने लगा है। वोहरे तथा मुसलमान प्रायः अंगरखा व पाजामा पहनते हैं। स्त्रियों की पोशाक में घाघरा (लहंगा), साड़ी और चोली (कांचली) मुख्य हैं। कुछ स्त्रियां कुरती भी पहनती हैं। मुसलमान स्त्रियां पाजामा, लंबा कुरता और ओढ़नी (दुपट्टा) का प्रयोग करती हैं। भीलों, किसानों और ग्रामीण लोगों की स्त्रियों के लहंगे कुछ ऊंचे होते हैं। भीलों की स्त्रियों के हाथों में पीतल व लाख की चूड़ियां तथा पैरों में घुटनों तक बहुधा पीतल के ज़ेवर होते हैं। वोहरों की स्त्रियां बाहर जाते समय प्रायः लहंगा, दुपट्टा और बुरका पहनती हैं।

यहां की प्रधान भाषा वागड़ी है, जो गुजराती से अधिक सम्बन्ध

भाषा

रखती है। कुछ लोग मालवी भी, जिसे रांगड़ी कहते हैं, बोलते हैं। ब्राह्मण, राजपूत, महाजन आदि उसे राजस्थानी के मिश्रण के साथ बोलते हैं।

लिपि यहां की नागरी है, किन्तु वह घसीटरूप में लिखी जाती है।

लिपि

उसमें कुछ गुजराती वर्णों का भी प्रयोग होता है और लिखने में शुद्धता का विचार बहुत कम रक्खा जाता है।

आजकल सरकारी दफ़्तरों में अंग्रेज़ी का भी प्रयोग होने लगा है।

दस्तकारी

यहां दस्तकारी आदि का काम न तो अधिक होता है और न सुन्दर। देहात में लोग खादी बुनते हैं। कुछ लोग सोना, चांदी, पीतल आदि के ज़ेवर तथा हाथीदांत व नारियल की चूड़ियां बनाते हैं। लाख की चूड़ियां, लकड़ी के खिलौने, पलंग के पाये तथा रंगाई का काम भी यहां पर होता है। राज्य के जेलखाने में कैदियों-द्वारा गलीचे, आसन, दरियां, निवार आदि भी बनते हैं।

व्यापार

इस राज्य में परतापुर, पारोदा और कुशलगढ़ व्यापार के लिए मुख्य हैं। इस राज्य का व्यापार मालवा तथा गुजरात से अधिक होता है। राज्य से बाहर जानेवाली वस्तुओं में अन्न, रुई, घी, तिल, मसाले, महुआ, इमारती लकड़ी, गोंद, लाख आदि हैं। बाहर से आनेवाली वस्तुओं में सोना, चांदी आदि सब धातुएं, कपड़ा, नमक, तंबाकू, पीतल तथा तांबे के बर्तन, शक्कर, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, नारियल और सूखा मेवा आदि हैं।

त्योहार

हिन्दुओं के मुख्य त्योहार रक्षाबंधन, दशहरा (नवरात्रि), दिवाली और होली हैं। गनगौर और तीज स्त्रियों के मुख्य त्योहार हैं। दशहरे पर महारावल की सवारी बड़ी धूमधाम के साथ निकलती है। मुसलमानों के मुख्य त्योहार दोनों ईदें (इदुलफ़ितर और इदुलजुहा) तथा मोहर्रम (ताजिया) हैं। भीलों के त्योहारों में भी दशहरा, दिवाली तथा होली मुख्य हैं। वे लोग इन दिनों में खूब शराब पीकर नाच, गान आदि आमोद-प्रमोद करते हैं। वे हाथ में डंडे लेकर एक प्रकार का नाच, जिसे 'गैर' कहते हैं, करते हैं। इनकी स्त्रियां भी इन उत्सवों में खूब भाग लेती हैं।

मेले

इस राज्य में प्रसिद्ध मेला कोई नहीं होता। राजधानी में राजराजेश्वर का मेला वर्तमान महारावल के राज्याभिषेकोत्सव पर प्रतिवर्ष पौष मास में दो सप्ताह तक होता है, जिसमें आस पास के बहुत लोग एकत्रित होते हैं।

इस राज्य में सरकारी डाकखाने और तारघर अधिक नहीं हैं। बांसवाड़ा, तलवाड़ा, गढ़ी, परतापुर और कुशलगढ़ में डाकखाने हैं तथा बांसवाड़ा और कुशलगढ़ में तारघर भी हैं। जहां डाकखाने नहीं हैं, वहां राज्य की ओर से हरकारों-द्वारा डाक पहुंचाने की व्यवस्था है।

डाकखाने और तारघर

पहले यहां शिक्षा का कोई प्रबंध न था। विद्यार्थी खानगी मदरसों में पढ़ते थे। आजकल राज्य की ओर से शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध हो गया है और राजधानी मे एक मिडिल स्कूल तथा महाराणी कन्या-पाठशाला है। मुसलमानों और वोहरों की धार्मिक शिक्षा के लिए इस्लामिया स्कूल है, जिसको राज्य से सहायता दी जाती है, एवं मिशनरियों-द्वारा भी शिक्षा-प्रचार होता है। इनके अतिरिक्त प्रारंभिक शिक्षा के लिए वडोदिया, कलिंजरा, बागीदोरा, चींच, मोटागड़ा, तलवाड़ा, बोरी, खोडण, सरेड़ी, पारोदा, लोहारिया, खमेरा, घाटोल, भूंगड़ा, दानपुर और परतापुर मे सरकारी प्रारंभिक पाठशालाएं हैं। गढ़ी ठिकाने में एक स्कूल है, जिसमें छठी क्लास तक पढ़ाई होती है। इनके अतिरिक्त आंजणा, नौगामा, चोपासाग, आसोड़ा, चांदरवाड़ा, शेलकाटी और कोटड़े में प्रारंभिक पाठशालाएं गढ़ी के सरदार की तरफ़ से चलती हैं। इसी तरह अर्थूणा, खांदू और गनोड़ा में प्रारंभिक पाठशालाएं वहां के सरदारों की तरफ़ से हैं। कुशलगढ़ इलाके मे वहां के सरदार की तरफ़ से स्कूलें हैं।

शिक्षा

पाश्चात्य विधि से चिकित्सा जारी होने से पूर्व लोग वैद्यों तथा हकीमों से इलाज कराते थे, किन्तु अब बांसवाड़ा, कुशलगढ़ और गढ़ी में अस्पताल खुल गये हैं, जहां चीरफाड़ का काम भी होता है। वैद्य और हकीम लोग भी अपनी शैली से इलाज करते हैं।

अस्पताल

बांसवाड़ा राज्य दो भागों में विभक्त है, जो उत्तरी तथा दक्षिणी भाग के नाम से प्रसिद्ध हैं। ख़ालसे की सारी ज़मीन का प्रवन्ध [illegible] महकमे के अधीन है, जिसकी सहायता के लिए दो [illegible] नियत हैं।

तहसील

पहले न्याय-विधान प्राचीन प्रणाली से होता था। कई दीवानी मुक़-दमे पंचायतों-द्वारा भी तय होते थे, किन्तु आज-कल नई प्रणाली से न्याय होने लगा है। रेवेन्यू अफ़सर को दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के और दोनों तहसीलदारों को तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं। वे दीवानी मामलों में १०० रुपये तक के मुक़दमों का फ़ैसला कर सकते हैं। उनके फ़ैसलों की अपीलें सिविल जज और मजिस्ट्रेट के पास होती हैं। मजिस्ट्रेट को प्रथम श्रेणी के अधिकार प्राप्त है। सिविल जज १०००० रुपये तक के दीवानी दावे सुन सकता है। अब सबसे बड़ी अदालत कौंसिल है, जो मजिस्ट्रेट और सिविल जज के फ़ैसलों की अपीलें सुनती है तथा उनके अधिकार के बाहर के सब दीवानी और फ़ौजदारी मामलों का फ़ैसला करती है। पहले दर्जे के सरदारों में से कुछ को (जीवित काल के लिए) फ़ौजदारी मुक़दमों में दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं और दीवानी मामलों में मुंसिफ़ के।

न्याय

कुशलगढ़ का राव इस विषय में स्वतन्त्र है और वह अपने इलाके में दीवानी व फ़ौजदारी के मुक़दमों का स्वयं फ़ैसला करता है, किन्तु बड़े मामले पोलिटिकल एजेंट की अनुमति से तय होते हैं और प्राण-दंड तथा जन्म-क़ैद की सज़ाएं एजेंट गवर्नर जेनरल राजपूताना की आज्ञा से होती हैं।

राज्य की भूमि खालसा, जागीर और माफ़ी (धर्मादा) में बंटी हुई है। खालसे की भूमि का बंदोबस्त हो गया है और वहां का हासिल नक़द रुपयों में लिया जाता है। जागीरें राजाओं के भाई-बेटों को उनके निर्वाह के लिए और सरदारों को बहुधा राज्य के रक्षार्थ की हुई बड़ी सेवा के उपलक्ष्य में मिली हुई हैं। उनके तीन दर्जे हैं, जो सोलह, बत्तीस और गुड़ाबंदी कहलाते हैं। इनमें मोलां (मोटा गांव), अर्थूणा, गढ़ी, मेतवाला, गनोड़ा, खांदू, सूरपुर, तेजपुर, कुशलपुरा, कुशलगढ़, गोपीनाथ का गुड़ा और ओड़वाड़ावाले प्रथम श्रेणी के सरदार 'सोलह' कहलाते हैं। महारावल के भाइयों को दी हुई जागीरों की गणना भी 'सोलह' में ही होती है। उनको छटूंद (खिराज) देने

जागीर, भोम आदि

के अतिरिक्त अपनी पूरी जमीयत के साथ राज्य की सहायता करनी पड़ती है तथा दरबार व त्योहारों के अवसर पर उपस्थित होना पड़ता है। वे राज्य की आज्ञा के बिना गोद नहीं ले सकते। माफ़ी और धर्मादा की भूमि मंदिरों, ब्राह्मणों, चारणों आदि को पुण्यार्थ दी हुई है। इन्हें न तो ख़िराज देना पड़ता है और न हासिल, किन्तु ये अपनी ज़मीन दूसरे को बेच या दे नहीं सकते।

सेना

जागीरदारों की जमीयत के सवारों तथा पैदल सैनिकों के अतिरिक्त राज्य की ओर से १८ सवार और २५६ पुलिस के सिपाही हैं। इनके अतिरिक्त पैदल सैनिकों की एक नवीन पलटन भी बनाई गई है, जो 'पृथ्वी राइफ़ल्स' कहलाती है। उसमें १३४ सिपाही हैं।

आय-व्यय

राज्य के ख़ालसे की वार्षिक आय अनुमान ६६६००० रुपये और लगभग इतना ही व्यय है। आय के मुख्य सीग़े ज़मीन का हासिल, चुंगी (सायर), एक्साइज़ (मादक द्रव्यों की बिक्री), जंगल, स्टांप (कोर्ट फ़ी), सरदारों की छटूंद आदि हैं। ख़र्च के मुख्य सीग़े पुलिस, फ़ौज, हाथख़र्च, महलों का ख़र्च, पब्लिक वर्क्स, धर्मादा, शिक्षा, सरकार का ख़िराज आदि हैं।

सिक्का

बांसवाड़ा राज्य में पहले बादशाह शाह आलम (दूसरा) का फ़ारसी लेखवाला सालमशाही (शाह आलमशाही) रुपया चलता था। उसके लिए बांसवाड़े में टकसाल भी थी, क्योंकि उस समय के कई सिक्कों पर 'ज़र्ब बांस (वाड़ा)' लेख पढ़ा जाता है। अधिकतर यहां तांबे के पैसे ही बनते रहे, जिनपर एक तरफ़ 'श्री' के नीचे 'रयासत बांसवाला' और 'संवत्' तथा दूसरी तरफ़ लकीरों एवं बिंदियों से बना हुआ कांच की हंडी के जैसा चित्र है। ई० स० १८७० में कर्नल जे० पी० निक्सन ने बांसवाड़े की टकसाल के बारे में राजपूताना के एजेंट गवर्नर जेनरल को रिपोर्ट की कि महारावल अपने सिक्के बनाने के हक़ का दावा करता है, जिसपर पीछे से सरकार ने यह आज्ञा दी कि देशी राज्यों की

टकसालों का बना हुआ कोई सिक्का बांसवाड़ा राज्य में दाखिल न होने पावे, परन्तु उन्हीं दिनों महारावल लक्ष्मणसिंह ने सोने, चांदी और तांबे के सिक्के बनवाना शुरू कर दिया, जिनके दोनों ओर एक दूसरे से मिले हुए सांकेतिक अक्षरों का लेख है, जो शिव के किसी नाम का सूचक बतलाया जाता है। ये लक्ष्मणशाही सिक्के कहलाते थे। उक्त महारावल के रुपये, अठन्नियां और चवन्नियां शुद्ध चांदी की बनती थीं, क्योंकि उसका यह मत था कि मिलावटवाली चांदी के सिक्के दान में देना धर्मविरुद्ध है। ई० स० १६०४ (वि० सं० १६६१) में सालमशाही और लछमनशाही सिक्कों के स्थान में कलदार सिक्का जारी हुआ।

वर्ष और मास

इस राज्य में वर्ष आषाढ़ सुदि १ को प्रारंभ होकर ज्येष्ठ वदि अमावास्या को समाप्त होता है और महीने सुदि १ से प्रारंभ होकर वदि अमावास्या को समाप्त होते हैं। इसलिए संवत् 'आषाढ़ादि' और मास 'अमांत' कहलाते हैं।

तोपों की सलामी और ख़िराज

ईस्वी सन् की १८ वीं शताब्दी के आस-पास बांसवाड़ा राज्य ने मरहटों को ख़िराज देना स्वीकार किया और ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में यह राज्य अंग्रेज़ सरकार के संरक्षण में आया तब से राज्य को १५ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है और अंग्रेज़ सरकार को १७५०० रुपये कलदार सालाना ख़िराज के दिये जाते हैं।

प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान

इस राज्य में प्राचीन एवं प्रसिद्ध स्थान बहुत हैं, जिनमें से मुख्य-मुख्य का वर्णन नीचे किया जाता है—

बांसवाड़ा—यह क़स्बा बांसवाड़ा राज्य की राजधानी है। इसके विषय में मेजर अर्सकिन ने लिखा है कि बांसवाड़ा के पहले राजा जगमाल ने बांसना (बांसिया) भील को मारकर ई० स० १५३० (वि० सं० १५८७) में इसे आबाद किया, परन्तु यह कथन जनश्रुति या भाटों की ख्यातों के आधार पर लिखा हुआ प्रतीत होता है। बांसवाड़ा तो वि० सं० १५३६ (ई० स० १४७६) के पहले से ही आबाद था, जैसा कि ऊपर

बांसवाड़ा के प्राचीन राजमहल

बतलाया जा चुका है[1]। यह भी प्रसिद्धि है कि बांसवाड़े का क़स्बा पहले वर्तमान बांसवाड़े से दो मील दक्षिण में संचाई माता के पहाड़ के नीचे बसा था और पीछे से यहां बसाया गया। यह क़स्बा चारों तरफ़ कोट से घिरा हुआ है। यहां की आबादी ई० स० १९३१ की मनुष्यगणना के अनुसार १०४४४ है। यहां कई बड़े-बड़े मंदिर भी बने हुए हैं, जो सोलहवीं शताब्दी से पूर्व के नहीं हैं। बाज़ार अच्छा है, शहर में बिजली की रोशनी और टेलीफ़ोन का प्रबन्ध है। तारघर-सहित पोस्ट ऑफ़िस, संस्कृत पाठशाला, अंग्रेज़ी मिडिल स्कूल, महाराणी कन्यापाठशाला, हैमिल्टन पुस्तकालय, घंटाघर, अस्पताल और म्यूनिसिपेलिटी भी यहां है। राजमहल एक ऊंची पहाड़ी पर बने हुए हैं, जो बड़ी दूर से दृष्टिगोचर होते हैं। वर्तमान महारावलजी को शिल्पकला से अनुराग होने से उन्होंने राजमहलों में कई सुन्दर स्थान बनवाकर वहां की शोभा बढ़ादी है। शहर-विलास महल से दूर-दूर का दृश्य नज़र आता है। बांसवाड़ा क़स्बे के पूर्व में बाई तालाब है, जो महारावल जगमाल की ईडरवाली राणी लासबाई का बनवाया हुआ है। उसकी पाल पर एक छोटा महल भी बना है। वहां से थोड़ी दूर पर एक बाग़ में वहां के कई राजाओं की छत्रियां (स्मारक) बनी हुई हैं। बस्ती से बाहर कचहरियां, लाइब्रेरी, कुशलबाग़ महल, राजराजेश्वर का मंदिर, मदरसा, अस्पताल, अनाथालय, राजपूत बोर्डिंग हाउस, पावरहाउस और गोशाला बनी हुई है तथा पास ही कनेडियन मिशन का चर्च है। नदी के तट पर नृपतिनिवास नामक सुन्दर कोठी और दीवान का बंगला बना

---

(१) डूंगरपुर राज्य के चीतली गांव से मिले हुए महारावल सोमदास के समय के वि० सं० १५३६ आषाढ सुदि १ (ई० स० १४७९ ता० २० जून) के दो शिलालेखों से पाया जाता है कि उक्त महारावल का कुंवर गंगदास बांसवाड़े में रहता था और वहां रहते समय उसने चीतली (चीतरी) गांव में ४ हल की भूमि भट्ट सोमदत्त को दान की थी।

मूल लेख के लिए देखो पृ० २ में टिप्पण।

'मिराते सिकंदरी' से भी वि० सं० १५७७ (ई० स० १५२०) में गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह की सेना का बांसवाड़े पर चढ़ाई करना पाया जाता है।

बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात; पृ० २७२।

हुआ है। बांसवाड़े से ६ मील दूर विट्ठलदेव गांव में नीलकंठ महादेव के समीप नदी के तट पर वर्तमान महारावलजी का बनवाया हुआ सरिता निवास नामक सुन्दर राज्य-प्रासाद है; एवं बांसवाड़े से दो मील दक्षिण में एक पहाड़ पर जगमेरु नाम का स्थान है, जहां रावल जगमाल अपने भाई पृथ्वीराज के साथ की लड़ाइयों के समय रहा था। वहां उस समय के बने हुए गढ़ी के द्वार आदि के चिह्न अब तक विद्यमान हैं।

तलवाड़ा—बांसवाड़े से लगभग ८ मील पश्चिम में तलवाड़ा नाम का बड़ा गांव है। यहां लक्ष्मीनारायण और गोगरेश्वर (गोकर्णेश्वर) महादेव के मन्दिरों के अतिरिक्त संभवनाथ का विशाल जैन-मन्दिर है। इस मन्दिर की टूटी हुई जैन-मूर्तियों में से कुछ तो नदी में बहादीं और कुछ मन्दिर के पीछे की बावड़ी में डालदी गई हैं। क़स्बे के बाहर वि० सं० की ११ वीं शताब्दी के आस-पास का बना हुआ जीर्ण सूर्यमन्दिर है। इसमें सूर्य की मूर्ति एक कोने में रक्खी हुई है और बाहर के चबूतरे पर सूर्य का रथ (एकचक्र) टूटा हुआ पड़ा है। उसके निकट श्वेत पत्थर की बनी हुई नवग्रहों की मूर्तियां हैं, जिनमें से ३ टूटी हुई हैं। सूर्य-मंदिर के पास ही वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के आस-पास का बना हुआ लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है, जिसके नीचे का हिस्सा प्राचीन और ऊपर का नया है। मूर्ति सभामंडप में पड़ी हुई है। एक ताक में ब्रह्मा की मूर्ति भी है।

सूर्य-मंदिर के निकट ही एक और जैन-मंदिर है, जिसका थोड़ा ही अंश अवशेष रहा है। बाहर एक खेत में वहां की दो दिगंबर मूर्तियां पड़ी हैं, जो कारीगरी की दृष्टि से बहुत उत्तम हैं। उनमें से एक के नीचे वि० सं० ११२३ (ई० स० १०६६) का लेख है। इस मंदिर के सामने ही थोड़ी दूर पर गदाधर[1] का जीर्ण-मन्दिर है, जिसकी छत में आबू पर के

(१) इस मंदिर को गदाधर का मंदिर कहते हैं और वैसा मानने का कारण यह है कि मंदिर के पुराने गरुड़-स्तंभ पर कई यात्रियों ने अपने-अपने नाम खुदवाये हैं, जिनमें से एक में—"संव्रत् १६१६ वर्षे वैशाक(ख)मासे सुकल(शुक्ल)पक्षे ४ दिने महाराजश्रीगदाधरजी" लेख है। इससे निश्चित है कि उक्त संवत् में भी यह मंदिर गदाधर का ही माना जाता था।

प्रसिद्ध विमलशाह के मंदिर जैसी सुन्दर कारीगरी है। कारीगरी की दृष्टि से इस मंदिर की समता करनेवाला दूसरा कोई मंदिर यहां नहीं है। इस मंदिर की प्राचीन मूर्ति का अब पता नहीं है। यहां के लुहारों ने इसमें गदाधर की नई मूर्ति विठलाई है। इसके सभामंडप में एक गणपति की मूर्ति रक्खी हुई है, जिसके आसन पर बारीक अक्षरों में खुदा हुआ सात पंक्तियों का गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह का लेख है, जिसका कितना एक अंश प्रतिदिन जल चढ़ाने से बिगड़ गया है, तो भी उससे मालूम होता है कि सोलंकी-वंशी राजा कर्ण के पुत्र जयसिंह ने, जो सिद्धराज कहलाता था, नरवर्मा (मालवे का परमार राजा) को जीतकर यहां गणपति का मंदिर बनवाया था[1]। गणपति का वह मंदिर कौनसा था, यह जाना

---

(१) ॐ ॐ गणपतये नमः ॥

....

आसी...............चौलुक्यवंशोद्भवो
[राजा] कर्णनरेश्वरो हतरिपुर्विख्यातकीर्तिस्ततः ॥
तत्सूनुर्जयसिंहदेवनृपतिः श्रीसिद्धराजाभिधः
......यस्य........................पः ॥
नरवर्म [कृतोन्नर्म] परमर्दि येन मर्दितः।
....

सिद्धपेन गणनाथमंदिरं कारितं हि......मनोहरं।

मूल लेख से।

उपर्युक्त लेख से अनुमान होता है कि गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह ने मालवे के परमार राजा नरवर्मा पर चढ़ाई की थी, जिसको परास्त करने पर उस(जयसिंह)ने यहां गणपति का मंदिर बनवाया होगा। नरवर्मा सिद्धराज जयसिंह से लड़ता हुआ ही मृत्यु को प्राप्त हुआ, परंतु उसके पुत्र यशोवर्मा ने युद्ध बराबर जारी रक्खा और १२ वर्ष तक यह लड़ाई चली। अन्त में यशोवर्मा के कैद होने पर सोलंकियों और परमारों के बीच का यह युद्ध समाप्त हुआ।

नहीं जाता, क्योंकि यहां कई टूटे-फूटे प्राचीन मंदिर हैं, परन्तु यह निश्चित है कि यह मूर्ति उसी गणपति के मंदिर से लाकर यहां रक्खी गई है।

तालाब की पाल के पास एक पहाड़ी पर देवी का प्राचीन मंदिर है, जिसका जीर्णोद्धार हो चुका है। मंदिर में नई मूर्ति बिठलाई गई है, जो बहुत भद्दी है। मंदिर के बाहर सिंदूर से भरी हुई महिषासुरमर्दिनी की तीन मूर्तियां पड़ी हैं। तालाब की पाल पर ब्राह्मणों तथा वहां के ठाकुरों की कई छत्रियां बनी हैं। वहां एक पुराना सुंदर कुंड भी है और उसके सामने सोमेश्वर महादेव का मंदिर है, जिसके सभा-मंडप में दो विष्णु की और एक वामन की मूर्ति पड़ी हुई है। उसके निकट एक दूसरा शिवालय है, जिसमें शिव की खंडित त्रिमूर्ति और पार्वती की मूर्ति है। इन मंदिरों के पास नवग्रह की अनुमान पौने दो फुट ऊंची मूर्तियां दो टुकड़ों में बनी हुई पड़ी हैं और एक दूसरी शिला पर नवग्रहों की मूर्तियां अंकित हैं। पास में ब्रह्मा, विष्णु और पार्वती की मूर्तियां पड़ी हैं। कुंड के निकट एक छोटासा मंदिर है, जिसमें शेषनाग की खंडित मूर्ति है। इन मंदिरों और इधर-उधर पड़ी हुई अनेक मूर्तियों के देखने से निश्चय होता है कि प्राचीन काल में यह एक बड़ा वैभवशाली नगर था। शिलालेखों में इसका नाम 'तलपाटक'[1] मिलता है, जिसका अपभ्रंश तलवाड़ा है।

गढ़ी—बांसवाड़े से अनुमान २२ मील पश्चिम में चाप नदी के बायें किनारे पर यह गांव है। यह प्रथम श्रेणी के चौहान सरदार का ठिकाना है,

---

(१) देशेऽस्य पत्तनवरं तलपाटकाख्यं
पण्यांगनाजनजितामरसुंदरीकं ॥
अस्ति प्रशस्तसुरमंदिरवैजयन्ती-
विस्ताररुद्धदिननाथकरप्रचारं ॥ ४ ॥

अर्थूणा से मिले हुए परमार राजा विजयराज के समय के वि० सं० ११६६ वैशाख सुदि ३ (ई० स० ११०६ ता० ५ अप्रेल) सोमवार के लेख से। यह शिलालेख पहले किसी ऋषभनाथ के जैनमंदिर में लगा हुआ था और इस समय राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित है।

जिसकी उपाधि 'राव' है। प्राचीनता की दृष्टि से यह स्थान महत्व का नहीं है। यहां के बाग़ में सरदारों की कई छत्रियां हैं, जिनमें से वि० सं० १८६७ (ई० स० १८११) से पूर्व की कोई नहीं है। यहां प्राइमरी स्कूल, अस्पताल और पुस्तकालय हैं। ठिकाने के अधीनस्थ गांवों में सात प्रारंभिक पाठशालाएं हैं, जो ठिकाने के ख़र्च से चलती हैं।

पाणाहेड़ा—बांसवाड़े से १४ मील पश्चिम में यह गांव है। शिलालेखों में इसका नाम 'पांशुलाखेटक'[1] लिखा मिलता है। यहां के नागेला तालाब की पाल पर मंडलीश्वर का शिवालय है, जिसको वागड़ के परमार राजा मंडलीक ने वि० सं० १११६ (ई० स० १०५९) में बनवाया था। उसके बाहर के एक ताक में उक्त संवत् का शिलालेख लगा है, जिसके कई टुकड़े हो गये हैं और एक तिहाई अंश जाता रहा है। बचा हुआ अंश मालवा एवं वागड़ के परमारों के इतिहास के लिए बड़े महत्व का है। उसमें मालवे के परमार राजा मुंज, सिंधुराज, भोज और जयसिंह के अतिरिक्त वागड़ के परमार राजा धनिक से लगाकर मंडलीक तक की पूरी वंशावली और उनका कुछ कुछ वृत्तांत दिया है। भोज के उत्तराधिकारी (पुत्र) जयसिंह का वि० सं० १११२ (ई० स० १०५५) का एक ताम्रपत्र ही पहले मिला था, परन्तु पाणाहेड़ा के लेख से यह भी ज्ञात हो गया कि वि० सं० १११६ (ई० स० १०५९) तक वह (जयसिंह) विद्यमान था। उक्त मंदिर के बनवानेवाले मंडलीक के विषय में उक्त लेख में लिखा है कि उसने बड़े बलवान् सेनापति कन्ह को पकड़कर हाथी और घोड़ों सहित जयसिंह के सुपुर्द किया। कन्ह किस राजा का सेनापति था यह अब तक ज्ञात नहीं हुआ। वागड़ के परमारों का इस लेख से मिलनेवाला वृत्तांत आगे लिखा जायगा।

अर्थूणा—बांसवाड़े से अनुमान ३० मील दक्षिण-पश्चिम में अर्थूणा नामक प्राचीन क़स्बा है। प्राचीन अर्थूणा नगर वागड़ के परमार राजाओं की

---

(१) भक्त्याकार्यत मंदिरं स्मरारिपोस्ततूपांशुलाखेटके······॥३८॥

पाणाहेड़ा के शिलालेख से।

राजधानी था। वर्तमान क़स्बा प्राचीन नगर के भग्नावशेष के पास नया बसा हुआ है। प्राचीन नगर के खंडहर और कई मंदिर अभी क़स्बे के बाहर विद्यमान हैं, जिनमें सबसे पुराना मंडलेश्वर (मंडनेश) का शिवालय है। इस मंदिर को यहां के परमार राजा मंडलीक (मंडनदेव) के पुत्र चामुंडराज ने अपने पिता की स्मृति में वि० सं० ११३६ फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० १०८० ता० ३१ जनवरी) शुक्रवार को बनवाया था। उसके साथ एक मठ भी था। मंदिर का मुख्य-द्वार तथा कोट गिर गये हैं। मंदिर के बाहर बहुत बड़ा नंदी है, जिसका सिर टूटा हुआ है। गुंबज के भीतर तथा निज-मंदिर के द्वार आदि पर बड़ी सुंदर कारीगरी का काम है। द्वार के दोनों तरफ़, नीचे ब्रह्मा, ऊपर विष्णु और सबसे ऊपर शिव की मूर्ति है। द्वार पर गणेश और उसपर लकुलीश की मूर्ति है, जिससे अनुमान होता है कि यहां के मठाधीश लकुलीश[1] (पाशुपत) संप्रदाय के कनफड़े साधु होंगे। निजमंदिर में शिवलिंग, पार्वती तथा उमा-महेश्वर की मूर्तियां हैं। मंदिर के बाहरी ताकों में भैरव, तांडवनृत्य करते हुए शिव और चामुंडा की मूर्तियां हैं। यह शिव-पंचायतन मंदिर था, परंतु इसके चारों कोनों के छोटे-छोटे मंदिर

---

(१) लकुलीश या लकुटीश शिव के १८ अवतारों में से पहला माना जाता है। प्राचीन काल में पाशुपत (शैव) सम्प्रदायों में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और अब तक सारे राजपूताना, गुजरात, मालवा, बंगाल, दक्षिण आदि में लकुलीश की मूर्तियां पाई जाती हैं। लकुलीश की मूर्ति के सिर पर जैन-मूर्तियों के समान केश होते हैं, जिससे कोई कोई उसको जैन-मूर्ति मान लेते हैं, परन्तु वह जैन नहीं, किन्तु शिव के अवतार की एक मूर्ति है। वह द्विभुज होती है, उसके बायें हाथ में लकुट (दंड) रहता है, जिससे लकुलीश तथा लकुटीश नाम पड़े और दाहिने हाथ में बीजोरा नामक फल होता है, जो शिव की त्रिमूर्तियों के मध्य के दो हाथों में से एक में पाया जाता है। वह मूर्ति पद्मासन बैठी हुई होती है। लकुलीश ऊर्ध्वरेता (जिसका वीर्य कभी स्खलित न हुआ हो) माना जाता है, जिसका चिह्न मूर्ति पर स्पष्ट होता है। इस समय इस प्राचीन सम्प्रदाय का अनुयायी कोई नहीं रहा, परन्तु प्राचीन काल में इसके माननेवाले बहुत थे। इस सम्प्रदाय के साधु कनफड़े (नाथ) होते थे और वे ही शिव-मंदिरों के पुजारी या मठाधीश होते थे।

नष्ट होगये हैं, जिनके चिह्न मात्र अब अवशिष्ट हैं। इस मंदिर के एक ताक में संवत् ११३६ फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० १०८० ता० ३१ जनवरी) शुक्रवार की बड़ी प्रशस्ति लगी है, जो कविता और इतिहास की दृष्टि से बड़ी उपयोगी है। उसमें वहां के कितने ही परमार राजाओं की वंशपरंपरा और उनके कार्यों का उल्लेख है। इस मंदिर के सामने एक पहाड़ी पर भग्नप्राय चार शिव-मंदिर हैं, जिनके आसपास गणेश, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, नवग्रह, तांडवनृत्य करते हुए शिव, चामुंडा, भैरव, दिक्पाल आदि की खंडित मूर्तियां पड़ी हैं।

उक्त पहाड़ी से दक्षिण में कुछ दूर गंगेला (गमेला) तालाब में होकर पश्चिम में जाने पर एक सुंदर खुदाईवाला दो मंजिला द्वार आता है, जो उधर के मंदिर-समूह का मुख्य द्वार होना चाहिये। वह मंदिर-समूह 'हनुमानगढ़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। उस समूह में एक हनुमान का, एक वराह का, एक विष्णु का और तीन शिव के मंदिर हैं। विष्णु-मंदिर में बंसी बजाते हुए कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा १८ भुजाओंवाली विष्णु की त्रिमूर्ति एवं पार्वती और पूतना आदि की मूर्तियां रक्खी हुई हैं। निकट ही पाषाण का बना हुआ एक कुंड है, जिसके सामने नीलकंठ का बड़ा मंदिर है। उसमें नवग्रह, चामुंडा और उमा-महेश्वर आदि की मूर्तियां रक्खी हुई हैं। निज-मंदिर में शिवलिंग के पास पहुंचने के लिए नौ सीढ़ियां उतरनी पड़ती हैं। वहां शिवलिंग के अतिरिक्त पार्वती, गणपति और दो उमा-महेश्वर की मूर्तियां हैं। चातुर्मास में यह मंदिर जल से भर जाता है। हनुमानगढ़ी के मंदिर-समूहों में यह सब से बड़ा मंदिर है और इसकी खुदाई भी बड़ी सुन्दर है। इसके निकट एक और शिवालय है, जो टूट गया है। उसके एक ताक में परमार राजा चामुंडराज के समय का आधा बिगड़ा हुआ वि० सं० ११३७ (ई० स० १०८०) का शिलालेख था, जो इस समय अजमेर के राजपूताना म्यूज़ियम् में सुरक्षित है।

इसके निकट एक छोटे से मंदिर में हनुमान की एक विशाल मूर्ति है, जिसकी चरण-चौकी पर वि० सं० ११६५ (ई० स० ११०८) का परमार राजा

विजयराज के समय का ६ पंक्तियों का लेख खुदा हुआ है। उसपर बहुत सिंदूर लगा हुआ था, जिसको बड़े श्रम से हटाने पर उसके संवत् आदि का पता लगा। यह हनुमान की मूर्ति या तो किसी अन्य मंदिर से लाकर यहां खड़ी की गई हो अथवा मंदिर का द्वार किसी पुराने मंदिर से लाकर लगाया गया हो ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इसके छबने के मध्य में लकुलीश की मूर्ति है।

यहां पर कई जैन-मंदिर भी थे। अब जैनियों ने उनके पत्थर, द्वार आदि ले जाकर दूर-दूर के गांवों में नये मंदिर खड़े कर लिये हैं। वर्तमान अर्थूणा गांव का जैन-मंदिर भी पुराने जैन-मंदिरों के पत्थरों से बनाया गया है।

एक पहाड़ी पर के टूटे हुए जैन-मंदिर में परमार राजा चामुंडराज के समय के दो शिलालेख बिगड़ी हुई दशा में मिले हैं, जिनमें से एक वि० सं० ११५६ (ई० स० ११०२) का और दूसरा भी उसी समय के आस-पास का है, जिसमें संवत् के अंतिम दो अंक नष्ट हो गये हैं। ये दोनों भी इस समय राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित हैं। उक्त जैन-मंदिर की कई दिगम्बर जैन-मूर्तियां इधर-उधर पड़ी हैं। इनके अतिरिक्त यहां और भी कई टूटे हुए मंदिर विद्यमान हैं।

चींच (छींछ)—बांसवाड़े से १० मील दक्षिण-पश्चिम में चींच नाम का पुराना गांव है। वहां विक्रम की बारहवीं शताब्दी के आस-पास का पाषाण का बना ब्रह्मा का मन्दिर है, जिसका सभा-मंडप विशाल है और स्तंभों की खुदाई सुन्दर है। उसमें करीब ६ फुट ऊंची सुन्दर कारीगरी के साथ बनी हुई ब्रह्मा की प्राचीन मूर्ति थी, जिसका थोड़ासा अंश टूट जाने से निजमन्दिर के बाहर रखदी गई है। चारों दिशाओं में इस मूर्ति के चार मुख हैं और यह वेदी पर स्थित थी। इसके खंडित होने के कारण आषाढ़ादि वि० सं० १५६३ (चैत्रादि १५६४) अमांत वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि १ (ई० स० १५३७ ता० २६ अप्रेल) गुरुवार और अनुराधा नक्षत्र के दिन महारावल जगमाल के समय वैसी ही छोटी चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति उसी वेदी पर स्थापित की गई, जिसका बराबर पूजन होता है।

यह नई मूर्ति पुरानी मूर्ति के समान सुन्दर नहीं है। इस मन्दिर में लक्ष्मी-नारायण, शेषशायी, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की मूर्तियां हैं। एक स्तम्भ पर वि० सं० १५५२ (ई० स० १४९५) का लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि कल्ला के बेटे देवदत्त ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था।

मन्दिर के बाहर के चौक में वि० सं० १५७७ (ई० स० १५२०) का एक लेख खुदा है, जिसमें जगमाल को महारावल लिखा है। मन्दिर के बाहर संगमरमर के छः टुकड़ों पर नवग्रहों की मूर्तियां बड़ी सुन्दरता से खुदी हुई पड़ी हैं, जिनके ऊपर का भाग तोड़ दिया गया है। मन्दिर से सटा हुआ एक तालाब है, जिसपर एक घाट बना हुआ है, जो ब्रह्मा का घाट कहलाता है।

गांव के निकट आंबलिया तालाब की पाल पर देवी छींछा का प्राचीन मन्दिर है, जिसका जीर्णोद्धार हो चुका है। मन्दिर के निकट एक पत्थर खड़ा है, जिसपर महारावल समरसिंह के समय का आषाढ़ादि वि० सं० १६८४ (चैत्रादि १६८५) अमांत वैशाख (पूर्णिमांत जेष्ठ) वदि १० (ई० स० १६२८ ता० १८ मई) रविवार का लेख है। उसका आशय यह है कि रायरायां महारावल उग्रसेन के पोते और उदयभान के बेटे समरसी के राज्य-समय सोलंकी नानक के बेटे देवीदास आदि ने भगवती छींछा का मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर के निकट सूर्य का एक प्राचीन मन्दिर है, जो खंडित हो गया है और सूर्य का एक चक्ररथ उसके बाहर पड़ा हुआ है।

गांव में वाराही माता का प्राचीन मन्दिर था, जो टूट गया है। दूसरा मन्दिर लक्ष्मीनारायण का है, जो वि० सं० की सोलहवीं शताब्दी के आस-पास का बना हुआ प्रतीत होता है। इसके विषय में यह प्रसिद्धि है कि यह मन्दिर चौहानों ने बनवाया था।

बांसवाड़ा के एक ठठेरे के यहां से मिले हुए मालवे के परमार राजा भोज के समय के वि० सं० १०७६ माघ सुदि ५ (ई० स० १०२० ता० ३ जनवरी) के दान-पत्र में लिखा है—'हमने कोंकण विजय के उत्सव पर वसिष्ठगोत्री माध्यंदिनी शाखावाले ब्राह्मण वामन के बेटे भायल को,

जिसके पूर्वज चींच गांव से आये थे, स्थली-मण्डल[1] के व्याघ्रदोरक[2] ज़िले के वटपद्रक गांव में १०० निवर्तन (बीघा) भूमि दान की।[3] इससे पाया जाता है कि यह गांव उक्त संवत् से भी पूर्व विद्यमान था।

नौगामां—बांसवाड़े से अनुमान १२ मील दक्षिण-पश्चिम में यह पुराना गांव है। शिलालेखों में इसका नाम नूतनपुर मिलता है। यहां पर शांतिनाथ का दिगंबर जैन-मंदिर है, जिसको वागड़ (डूंगरपुर) के स्वामी महारावल उदयसिंह के समय मूलसंघ, सरस्वती गच्छ और बलात्कारगण के श्रीकुंदकुंदाचार्य के परंपरागत आचार्य विजयकीर्ति गुरु के उपदेश से हुंबड़ जाति के खैरजगोत्री दोसी चांपा के वंशजों ने बनवाकर वि० सं० १५७१ कार्तिक सुदि २ (ई० स० १५१४ ता० १६ अक्टोबर) के दिन प्रतिष्ठा करवाई।

वाणीडोरा—यह भी एक पुराना स्थान है और बांसवाड़े से दक्षिण-पश्चिम में लगभग १६ मील दूर है। मालवे के परमार राजा भोजदेव के वि० सं० १०७६ (ई० स० १०२०) के दानपत्र में तथा अर्थूणा के मंडलेश्वर के मंदिर की वि० सं० ११३६ (ई० स० १०८०) की प्रशस्ति में भी इसका नाम 'व्याघ्रदोरक' मिलता है। इससे पाया जाता है कि वि० सं० की ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व भी यह गांव विद्यमान था और एक ज़िले का मुख्य स्थान माना जाता था।

---

(१) 'स्थली' वागड़ के एक विभाग का प्राचीन नाम होना चाहिये। यह नाम वागड़ के परमार राजा चामुंडराज के समय के वि० सं० ११५७ चैत्र वदि २ (ई० स० ११०१ ता० १७ फरवरी) सोमवार के अप्रकाशित लेख में भी मिलता है—

स्थलीजनपदे······पृथ्वीपतिवरानन······॥ ३४ ॥

(२) स्थलीमंडले घा(व्या)घ्रदोरभोगांतःपातिवटपद्रके

ए. इं; जि. ११, पृ० १८२।

अर्द्धाष्टमशते देशे व्याघ्रदोरकसंभवे।······[७७]।

अर्थूणा के मण्डलेश्वर के मंदिर की वि० सं० ११३६ की प्रशस्ति।

कलिंजरा—कलिंजरा गांव बांसवाड़े से १६ मील दक्षिण-पश्चिम में हारन नदी के दाहिने किनारे पर बसा है। यह पहले व्यापार का केन्द्र तथा दक्षिणी तहसीलों का मुख्य स्थान था। यहां पर एक बड़ा शिखरबंद पूर्वाभिमुख जैन-मंदिर है। उसके दोनों पार्श्व में और पीछे एक-एक शिखरबंद मंदिर बना है तथा चौतरफ़ देवकुलिकाएं हैं। यह मंदिर दिगंबर जैनों का है और ऋषभदेव के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें छोटी-बड़ी कई मूर्तियां हैं। एक मंदिर में पार्श्वनाथ की खड़ी मूर्ति है, जिसके आसन पर वि० सं० १५७८ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १५२२ ता० १ फ़रवरी) का लेख है। पार्श्वनाथ की दूसरी बैठी हुई मूर्ति पर वि० सं० १६६० अमांत श्रावण वदि १० (ई० स० १६०३ ता० २१ अगस्त) का लेख है। निज-मंदिर में मुख्य प्रतिमा आदिनाथ की है, जो पीछे से वि० सं० १८६१ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १८०४ ता० १२ मई) को स्थापित की गई है। उसका परिकर पुराना है, जिसपर वि० सं० १६१७ अमांत माघ वदि २ (ई० स० १५६१ ता० २ फ़रवरी) का लेख है। नीचे का आसन भी पुराना है, जिसपर वि० सं० १५७८ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १५२२ ता० १ फ़रवरी) का लेख है। इसके पास एक और मूर्ति है, जो आषाढ़ादि वि० सं० १६५२ (चैत्रादि १६५३) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १५९६ ता० २२ अप्रेल) की है। निज-मंदिर के सामने के मंडप में कई पाषाण व पीतल की छोटी-छोटी मूर्तियां हैं, जिनमें सबसे पुरानी आषाढ़ादि वि० सं० १२३५ (चैत्रादि १२३६) वैशाख सुदि ८ (ई० स० ११७९ ता० १६ अप्रेल) की और दूसरी वि० सं० १४४४ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १३८८ ता० ११ अप्रेल) की है। इस मंदिर का समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। इसमें पत्थर का बना पुरुष का एक बहुत बड़ा सिर रक्खा हुआ है, जिसमें दाढ़ी भी बनी है। इसके बाहर वि० सं० १७५७, १७७५ और १७९२ (ई० स० १७००, १७१८ और १७३५) के शिलालेख दीवार के पास गड़े हुए हैं, परन्तु वे इतिहास के लिए उपयोगी नहीं हैं। कलकत्ते का बिशप (सबसे बड़ा पादरी) हेबर राजपूताने की यात्रा करता हुआ ई० स० १८२४ (वि० सं० १८८१) के आस-पास कलिं-

जरा पहुंचा था। उसने उक्त मंदिर का तथा उक्त बड़े सिर का उल्लेख किया है और देवकुलिकाओं के द्वार की शाखाओं में खुदी हुई पुरुषों की छोटी-छोटी मूर्तियों के हाथ में डंडे तथा सिर पर लम्बी गोल टोपी देखकर लिखा है कि ऐसी टोपियां हिन्दुस्तान में अब पहनने में नहीं आतीं और वे ईरान के पर्सिपोलिस (Persepolis) नगर की मूर्तियों की टोपियों से मिलती हुई हैं। हैबर ने इस मंदिर की कारीगरी आदि की विशेष प्रशंसा की है, परन्तु वास्तव में यह एक साधारण जैन-मंदिर है, जो न तो अधिक पुराना है और न सुन्दर ही। जैन-मंदिर के पास एक विष्णु मंदिर था, जो अब बिल्कुल नष्ट होगया है। उसके बाहर एक बिगड़ा हुआ शिलालेख वि० सं० १४४३ (ई० स० १३८६) का है। कृष्णार्या तालाब की पाल पर एक प्राचीन शिव-मंदिर है, जिसका जीर्णोद्धार बांसवाड़े के नागर मणिशंकर ने करवाया था। वर्तमान महारावलजी ने कलिंजरे का पट्टा अपने छोटे राजकुमार नृपतिसिंह को जागीर में दिया है।

कुशलगढ़—बांसवाड़े से अनुमान ३५ मील दक्षिण में कुशलगढ़ नाम का एक क़स्बा है, जो उक्त ठिकाने का मुख्य स्थान है। यह इस समय बांसवाड़े से स्वतंत्र और दक्षिणी राजपूताने के पोलिटिकल एजेंट के अधीन है, अतएव इसका वृत्तांत अलग लिखा जायगा।

दूसरा अध्याय

बांसवाड़ा के प्राचीन राजवंश

(गुहिलवंश के अधिकार से पूर्व)

गुहिलवंशियों के पूर्व बांसवाड़े पर किस-किस राजवंश का अधिकार रहा, यह निश्चित रूप से नहीं जाना जाता, क्योंकि इस राज्य से अधिक प्राचीन शिलालेखादि नहीं मिले हैं। अब तक के शोध से इतना ही ज्ञात होता है कि पहले यहां क्षत्रपवंशियों एवं परमारों का राज्य रहा था और परमारों को गुजरात के सोलंकियों ने हराकर यहां अपना अधिकार करलिया, पर यहां से परमारों का अस्तित्व न मिटा और तेरहवीं शताब्दी तक वे सामंत रूप से यहां टिके रहे, फिर उन(परमारों)को कमज़ोर देख गुहिलवंशी सामंतसिंह ने मेवाड़ से दक्षिण की तरफ़ जाकर वागड़ में गुहिलवंश के राज्य की स्थापना की।

क्षत्रप

क्षत्रप, जाति के शक थे। ईरान और अफ़गानिस्तान के बीच के शकस्तान (सीथिया) प्रदेश से उनका भारत में आना माना जाता है। शिलालेखों और सिक्कों के अतिरिक्त 'क्षत्रप' शब्द संस्कृत साहित्य में कहीं नहीं मिलता। यह प्राचीन ईरानी भाषा के 'क्षत्रपावन'[1] शब्द से बना है, जिसका अर्थ देश या ज़िले का शासक होता था। राजपूताना और उसके निकटवर्ती प्रदेशों पर क्षत्रपों की दो शाखाओं के राज्य रहे, जिनमें से एक ने मथुरा के आस-पास के प्रदेश और दूसरी शाखा ने राजपूताना, मालवा, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ तथा दक्षिण के कितनेक अंश पर शासन

(१) जे० एम० कैम्बेल; गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी, जिल्द १, भाग १, पृ० २१, टिप्पण ६।

किया। विद्वानों ने पिछली शाखा का 'पश्चिमी क्षत्रप' नाम से परिचय दिया है। इसी शाखा के क्षत्रपों का राज्य बांसवाड़े पर होना निश्चित है, क्योंकि इस राज्य के सरवाणिया नामक गांव से दिसम्बर ई० सन् १९११ (वि० सं० १९६८) में क्षत्रपवंशियों के चांदी के २३९३ सिक्के एक पात्र में गड़े हुए मिले, जो हमारे पास पढ़ने के लिए भेजे गये[1]। उनसे निश्चित है कि इस प्रदेश पर इस वंश का राज्य रहा था। क्षत्रपों के शिलालेखों तथा सिक्कों में 'महाराजाधिराज,' 'परमेश्वर,' 'परमभट्टारक' आदि उपाधियां नहीं मिलतीं, किन्तु उनके स्थान पर राजा को 'राजा[2]' और 'महाक्षत्रप' तथा राजकुमारों को, जो ज़िलों पर शासन करते थे, 'राजा' और 'क्षत्रप[3]' ही लिखा हुआ मिलता है। इनमें एक अनूठी रीति यह थी कि राजा के जितने पुत्र होते वे सब अपने पिता के पीछे क्रमशः राज्य के स्वामी बनते और उन सब के पीछे ज्येष्ठ पुत्र का बेटा यदि जीवित होता तो राज्य पाता। राजा और उसके पुत्र आदि (ज़िलों के शासक) अपने अपने नाम के सिक्के बनवाते थे, जो बहुत छोटे होते और जिनपर बहुधा शक संवत् रहता था। ये सिक्के द्रम्म[4]

(१) राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) की ई० स० १९१२ की रिपोर्ट; पृ० ३-४।

(२) उदाहरण के लिए एक महाक्षत्रप और एक क्षत्रप के सिक्कों पर के लेख की नकल नीचे दी जाती है—

'राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस विजयसेनस'।

ई० जे० रैप्सन; कैटेलॉग ऑव दि कॉइन्स ऑव् आंध्र डिनेस्टी, दि वेस्टर्न क्षत्रप्स, दि त्रैकूटक डिनेस्टी एण्ड दि बोधि डिनेस्टी, पृ० १३०-३१।

(३) 'राज्ञो मह(हा)क्षत्रपस दामसेनपुत्रस राज्ञः क्षत्रपस विजयसेनस'।

ई० जे० रैप्सन; कैटेलॉग ऑव् दि कॉइन्स ऑव् आंध्र डिनेस्टी, दि वेस्टर्न क्षत्रप्स, दि त्रैकूटक डिनेस्टी एण्ड दि बोधि डिनेस्टी, पृ० १२९-३०।

(४) द्रम्म—चार आने के मूल्य का चांदी का छोटा सिक्का था और वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के आस पास तक रुपयों के साथ यह भी चलता था, ऐसा वि० सं० ११३६ की अर्थूणा के मंडलेश्वर महादेव के मंदिर की बड़ी प्रशस्ति से ज्ञात होता है—

कहलाते थे, जिनपर बहुधा एक तरफ़ राजा का सिर तथा शक संवत् का अंक एवं दूसरी ओर विरुद सहित अपने तथा अपने पिता के नामवाला लेख तथा मध्य में सूर्य, चन्द्र, मेरु और गंगा नदी सूचक चिह्न रहते थे।

इन क्षत्रपों का संक्षिप्त वृत्तांत, वंशवृक्ष तथा महाक्षत्रपों और क्षत्रपों की समय सहित तालिका हमने राजपूताने के इतिहास की पहली जिल्द (पृ० ९९-११० प्रथम आवृत्ति) में दी है। सरवाणिया से मिले हुए उपर्युक्त सिक्के शक सं० १०३ से २७५ (वि० सं० २३८ से ४१०=ई० स० १८१ से ३५३) तक के निम्नलिखित महाक्षत्रपों और क्षत्रपों के हैं—

१—महाक्षत्रप रुद्रदामा के पुत्र महाक्षत्रप रुद्रसिंह (प्रथम) के—

चार सिक्के, शक सं० १०३, १०५, १० [x[1]] और ११४ (वि० सं० २३८, २४०, २४९=ई० स० १८१, १८३ और १९२) के।

२—महाक्षत्रप ईश्वरदत्त के—

राज्यवर्ष प्रथम के ६ सिक्के।

३—महाक्षत्रप रुद्रसिंह (प्रथम) के पुत्र क्षत्रप रुद्रसेन (प्रथम) का—

एक सिक्का शक सं० १२[१] (वि० सं० २५६=ई० स० १९९) का।

४—महाक्षत्रप रुद्रसिंह (प्रथम) के पुत्र महाक्षत्रप रुद्रसेन प्रथम के—

११ सिक्के, जिनमें से एक बिना संवत् का और १० शक सं० १३५, १३८, १४२, १[x x] और १४[x] (वि० सं० २७०, २७३, २७७=ई० स० २१३, २१६ और २२०) के।

दापितो रूपकः सार्द्धः प्रतिकर्पटकोटिकाम् ॥······॥ ७२ ॥
तत्थोच्छ्रपनके तेन वणिजां प्रतिमंदिरम् ॥
चैत्र्यां द्रम्मः पवित्र्यां च द्रम्म एकः प्रदापितः ॥ ७३ ॥

मूल लेख की छाप से।

(१) सिक्कों पर जो अङ्क अस्पष्ट हैं अथवा नहीं उठे उनके लिए [x] यह चिह्न लगाया गया है।

५—महाक्षत्रप रुद्रसिंह (प्रथम) के पुत्र महाक्षत्रप दामसेन के—

१३ सिक्के, शक सं० १५०, १५२, १५५, १५७ और १५[×] (वि० सं० २८५, २८७, २९० और २९२=ई० स० २२८, २३०, २३३ और २३५) के।

६—महाक्षत्रप रुद्रसेन (प्रथम) के पुत्र क्षत्रप दामजदश्री के—

२ सिक्के, शक सं० १५५ और १५[×] (वि० सं० २९०=ई० स० २३३) के।

७—महाक्षत्रप दामसेन के पुत्र क्षत्रप वीरदामा के—

१७ सिक्के, शक सं० १५८–६०, १[××] और १५[×] (वि० सं० २९३–९५=ई० स० २३६–३८) के।

८—महाक्षत्रप दामसेन के पुत्र क्षत्रप यशोदामा के—

२ सिक्के शक सं० १[× ×] के।

९—महाक्षत्रप दामसेन के पुत्र महाक्षत्रप यशोदामा के—

४ सिक्के, शक सं० १६[०] और १६१ (वि० सं० २९५–९६=ई० स० २३८–३९) के।

१०—महाक्षत्रप दामसेन के पुत्र क्षत्रप विजयसेन के—

८ सिक्के, शक सं० १६० (वि० सं० २९५=ई० स० २३८) के।

११—महाक्षत्रप दामसेन के पुत्र महाक्षत्रप विजयसेन के—

१०५ सिक्के, जिनमें से ८ सिक्के विना संवत् के, १२ सिक्के अस्पष्ट संवत् के और शेष ८५ सिक्कों पर शक सं० १६१–६२, १६४–७२, १६[×] और १७[×] (वि० सं० २९६–९७, २९९–३०७=ई० स० २३९–४०, २४२–५०) के।

[illegible] दामसेन के पुत्र महाक्षत्रप दामजदश्री (दूसरा) के—

६५ सिक्के, जिनमें से १६ विना संवत्वाले और शेष ४९ सिक्के शक सं० १७२, १७४–७६ और १७[×] (वि० सं० ३०७, ३०९–११=ई० स० २५०, २५२–५४) के।

१३—क्षत्रप वीरदामा के पुत्र महाक्षत्रप रुद्रसेन (दूसरा) के—

३८३ सिक्के, जिनमें से १६३ विना संवत्वाले और २२० सिक्के शक संवत् १७८-९१, १९४, १९६, १[xx], १७[x], १८[x], और १९[x] (वि० सं० ३१२-३२६, ३२९ और ३३१=ई० स० २५६-६९, २७२ और २७४) के।

१४—महाक्षत्रप रुद्रसेन (द्वितीय) के पुत्र क्षत्रप विश्वसिंह के—

१४७ सिक्के, जिनमें से ८२ विना संवत् के, १४ अस्पष्ट संवत्-वाले और शेष ५१ शक संवत् १ [xx], १९ [x], १९८-२०० और २ [xx] (वि० सं० ३३३-३५=ई० स० २७६-७८) के।

१५—महाक्षत्रप रुद्रसेन (द्वितीय) के पुत्र महाक्षत्रप विश्वसिंह के—

२७ सिक्के, जिनमें से २५ विना संवत्वाले और २ अस्पष्ट संवत् के।

१६—महाक्षत्रप रुद्रसेन (द्वितीय) के पुत्र क्षत्रप भर्तृदामा के—

१४७ सिक्के, जिनमें से ९४ विना संवत् के, ७ अस्पष्ट संवत्-वाले और शेष ४६ शक सं० २००, २०[३], २०४ और २[xx] (वि० सं० ३३५, ३३[८] और ३३९=ई० स० २७८, २८[१] और २८२ के।

१७—महाक्षत्रप रुद्रसेन (द्वितीय) के पुत्र महाक्षत्रप भर्तृदामा के—

३२७ सिक्के, जिनमें से १४४ विना संवत् के, ४६ अस्पष्ट संवत्-वाले और १३७ शक सं० २०६-१५, २[xx] और २१[x] (वि० सं० ३४१-५०=ई० स० २८४-९३) के।

भर्तृदामा के १३० सिक्के ऐसे थे, जिनपर लेख अस्पष्ट थे और उनमें से अधिकतर विना संवत् के या अस्पष्ट संवत्वाले थे, अतएव यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे उसके क्षत्रपकाल के थे या महाक्षत्रपकाल के।

१८—महाक्षत्रप भर्तृदामा के पुत्र क्षत्रप विश्वसेन के—

३८५ सिक्के, जिनमें से १२५ विना संवत्वाले, ९१ अस्पष्ट संवत्वाले और १६९ शक सं० २१५-१८, २२०-२६, २[xx], २१ [x] और २२[x] (वि० सं० ३५०-५३, ३५५-६१=ई० स० २९३-९६, २९८-३०४) के।

१९—स्वामिजीवदामा के पुत्र क्षत्रप रुद्रसिंह (द्वितीय) के—

१६० सिक्के, जिनमें से ६० बिना संवत् के १०, अस्पष्ट संवत्-वाले और ६० शक सं० २२६-२६, २[××], २२[×] और २३[×] (वि० सं० ३६१-३७१=ई० स० ३०४-३१४) के।

२०—क्षत्रप रुद्रसिंह (द्वितीय) के पुत्र क्षत्रप यशोदामा (द्वितीय) के—

१५७ सिक्के, जिनमें से २१ बिना संवत् के, १८ अस्पष्ट संवत्-वाले और ११८ शक संवत् २३६-४५, २४७-४८, २५४, २[××], २३[×] और २४ [×] (वि० सं० ३७४-८०, ३८२-८३, ३८९=ई० स० ३१७-२३, ३२५-२६ और ३३२) के।

२१—महाक्षत्रप स्वामिरुद्रदामा के पुत्र महाक्षत्रप स्वामिरुद्रसेन (तृतीय) के—

४३ सिक्के, जिनमें से ८ बिना संवत्वाले, ११ अस्पष्ट संवत्-वाले और २४ शक सं० २७०, २७२-७३, २७५, २[××] और २७ [×] (वि० सं० ४०५, ४०७-८, ४१०=ई० स० ३४८, ३५०-५१, ३५३) के।

१३४ सिक्के किसी रुद्रसेन के किसी पुत्र (नाम नहीं) के। १५ सिक्के दामसेन के किसी पुत्र के।

४५ सिक्के लेख अस्पष्ट होने से यह नहीं जाना जा सकता है कि वे किसके थे।

५५ सिक्के ऐसे थे, जिनपर कोई लेख नहीं, किन्तु दोनों तरफ़ चहरे की छाप थी। राजपूताने में क्षत्रपवंशी राजाओं के सिक्कों का ऐसा बड़ा संग्रह अन्यत्र कहीं नहीं मिला। केवल कुछ सिक्के पुष्कर, आहाड़, नगरी (मध्यामिका) आदि से मिले हैं। उक्त संग्रह से यह निश्चित है कि बांस-वाड़ा राज्य पर इन क्षत्रपों का राज्य अनुमान २०० वर्ष तक रहा था।

इन क्षत्रपों में से महाक्षत्रप रुद्रसेन (तीसरे) के पश्चात् चार और महाक्षत्रपों ने राज्य किया था, परन्तु उनके सिक्के उक्त संग्रह में नहीं थे। अंतिम राजा स्वामीरुद्रसिंह से गुप्त वंश के महाप्रतापी राजा चंद्रगुप्त (दूसरा) ने, जिसका विरुद 'विक्रमादित्य' था, शक सं० ३१० (वि० सं०

४४५=ई० स० ३८८) के आस पास क्षत्रप राज्य को अपने राज्य में मिला कर उक्त राज्य की समाप्ति कर दी, जिससे राजपूताने पर से उनक अधिकार उठ गया।

इन पश्चिमी क्षत्रपों का पूरा वंश-वृक्ष नीचे दिया जाता है, जिसर इन सिक्कों का संबंध ज्ञात होगा—

क्षत्रपों का वंशवृक्ष[1]

भूमक
:
१–नहपान
|
(नहपान की पुत्री) दक्षमित्रा = उषवदात (दीनीक का पुत्र)

घ्सामोतिक
|
२–चष्टन
|
जयदामा
|
३–रुद्रदामा
|— ४–दामघ्सद (दामजदश्री)
| |— सत्यदामा
| |— ७–जीवदामा
|— ५–रुद्रसिंह
| |— ८–रुद्रसेन
| | |— पृथिवीसेन
| | |— दामजदश्री
| |— ९–संघदामा
| |— १०–दामसेन
| |— वीरदामा
| | |
| | १४–रुद्रसेन (दूसरा)
| | |— १५–विश्वसिंह
| | |— १६–भर्तृदामा
| | |
| | विश्वसेन
| |— ११–यशोदामा
| |— १२–विजयसेन
| |— १३–दामजदश्री (दूसरा)
|— ६–ईश्वरदत्त
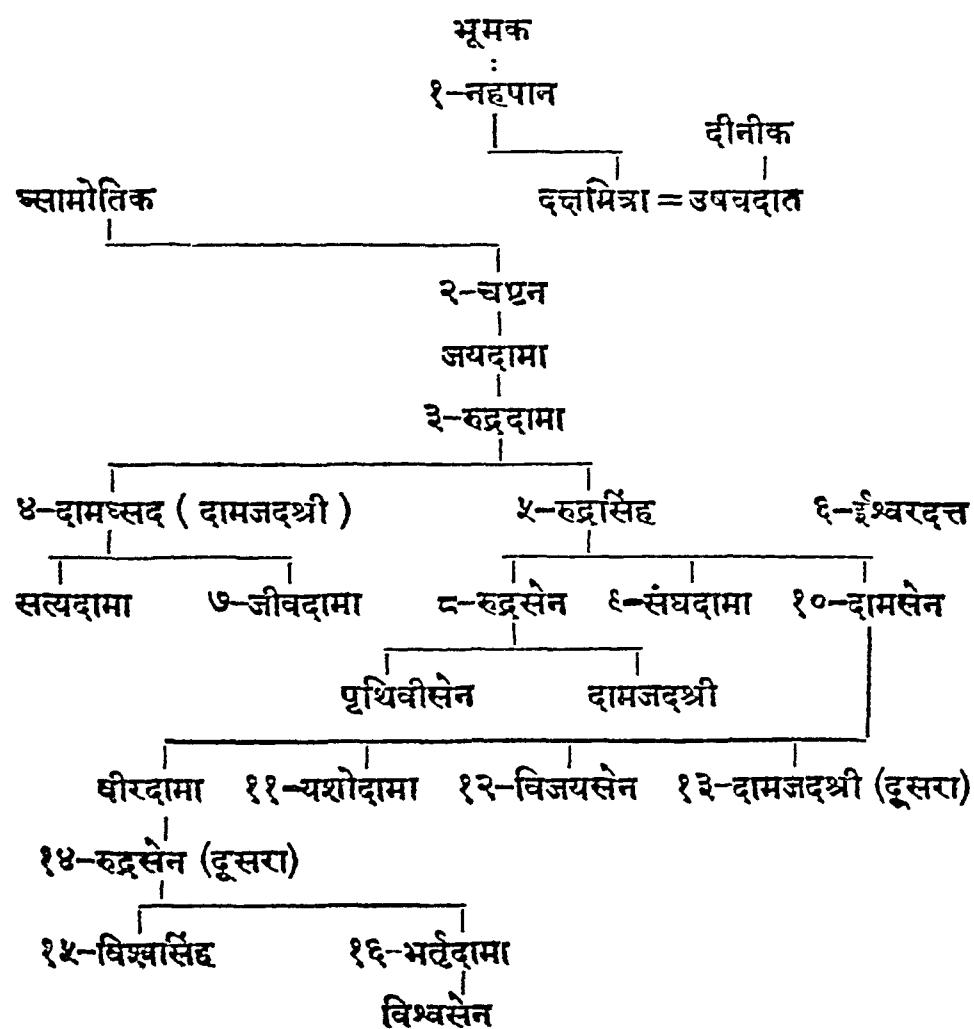
(१) इस वंशवृक्ष में जो अंक दिये हैं वे महाक्षत्रपों के और बिना अंकवाले नाम क्षत्रपों के सूचक हैं।
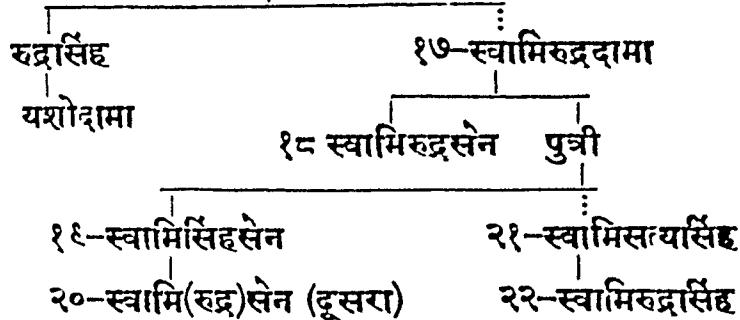
क्षत्रपों के पीछे यहां गुप्तों, हूणों, कन्नौज के वैसवंशी राजा हर्ष और कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों (पड़िहारों) का राज्य रहना संभव है, परन्तु उनका कोई शिलालेख, ताम्रपत्र या सिक्का अब तक यहां नहीं मिला।

परमार

वागड़ के परमार मालवे के परमारवंशी राजा वाक्पतिराज के दूसरे पुत्र डंबरसिंह[1] के वंशज थे। उनके अधिकार में वागड़ तथा छप्पन का प्रदेश था। संभव है कि डंबरसिंह को वागड़ का इलाक़ा जागीर में मिला हो। उसके पीछे धनिक हुआ, जिसने महाकाल के मन्दिर (उज्जैन) के समीप धनेश्वर का देवालय बनवाया[2]। धनिक के पीछे उसका भतीजा चच्च[3] और

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १, प्रथम संस्करण, पृ० २०६ ।

(२) अत्राशी(सी)त्परमारवंशविततौ लब्धा(ब्धा)न्वयः पार्थिवो
नाम्ना श्रीधनिको धनेस्व(श्व)र इव त्यागैककल्पद्रुमः ॥२६॥
श्रीमहाकालदेवस्य निकटे हिमपांडुरं ।
श्रीधनेश्वर इत्युच्चैः कीर्त्तनं यस्य राजते ॥२७॥

वि० सं० १११६ का पाणाहेड़ा का शिलालेख ।

(३) चच्चनामाभवत्तस्माद्भ्रातृसूनुर्महानृपः···॥२८॥

पाणाहेड़ा का शिलालेख ।

फिर कंकदेव[1] हुआ। मालवे के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक दूसरा) ने कर्णाटक के राठोड़ राजा खोट्टिकदेव पर चढ़ाई की, उस समय कंकदेव उस(श्रीहर्ष)के साथ था। नर्मदा के किनारे खलिघट्ट नामक स्थान में युद्ध हुआ, जिसमें कंकदेव हाथी पर सवार होकर लड़ता हुआ मारा गया। इस लड़ाई में श्रीहर्ष की विजय हुई। उसने आगे बढ़कर निज़ाम-राज्यान्तर्गत मान्यखेट (मालखेड़) नगर को, जो राठोड़ों की राजधानी थी, वि० सं० १०२९ (ई० स० ९७२) में लूटा[2]। कंकदेव के चंडप और उस(चंडप)के सत्यराज नामक पुत्र हुआ, जिसका वैभव सुप्रसिद्ध राजा भोज ने बढ़ाया। वह गुजरातवालों से लड़ा था। उसकी स्त्री राजश्री चौहान-वंश की थी[3]। सत्यराज के लिंबराज और मंडलीक नामक दो पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ

---

(१) तस्यान्वये करिकरोद्धुरवा(बा)हुदण्डः ।
श्रीकंकदेव इति लण्ध(ब्ध)जयो व(ब)भूव···॥१७॥
आरूढो गजपृष्ठमद्भुतस(श)रा सारं रणे सर्व्वतः
कर्णाटाधिपतेर्व्वे(र्ब्ब)लं विदलयंस्तन्नर्मदायास्तटे ।
श्रीश्रीहर्षनृपस्य मालवपतेः कृत्वा तथारिक्षयं
यः स्वर्गं सुभटो ययौ सुरवधूनेत्रोत्पलैरर्च्चितः...१९॥
वि० सं० ११३६ की अर्थूणा की प्रशस्ति से ।

यः श्रीखोट्टिकदेवदत्तसमरः श्रीसीयकार्थे कृती।
रेवायाः खलिघट्टनामनि तटे युध्वा(द्ध्वा) प्रतस्थे दिवम्॥२९॥
पाणाहेड़ा के लेख की छाप से ।

(२) विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि (१०२९)।
मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि ॥
धनपाल; पाइअलच्छीनाममाला (भावनगर संस्करण), पृ० ४१ ।

(३) ············कीर्त्तिषु चाहमानमहतां वंशोद्भवा लभ्यते ।
राज़श्रीः सहजेव येन सहजश्रीमन्मतिः स्वामिना···॥३२[॥]
पाणाहेड़ा के शिलालेख की छाप से ।

(लिंबराज) उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके पीछे उसका छोटा भाई मंडलीक, जिसे मंडनदेव भी कहते थे, वागड़ का स्वामी हुआ। वह मालवे के परमार राजा भोज और उसके उत्तराधिकारी (पुत्र) जयसिंह (प्रथम) का सामंत रहा। उसने प्रबल सेनापति कन्ह को पकड़कर घोड़ों और हाथियों सहित जयसिंह के सुपुर्द किया और वि० सं० १११६ (ई० स० १०५९) में पाणाहेड़ा गांव (बांसवाड़ा राज्य) में अपने नाम से मंडलेश्वर नामक शिव-मंदिर बनवाया[1]। उसका पुत्र चामुंडराज था, जिसने वि० सं० ११३६ (ई० स० १०७९) में अर्थूणा नगर (बांसवाड़ा राज्य) में अपने पिता मंडलीक के निमित्त मंडनेश (मंडलेश्वर) का विशाल शिवालय निर्माण करवाया[2]। उसने सिंधुराज को नष्ट किया। यह सिंधुराज कहां का था, इसका पता नहीं चलता। उसके समय के चार शिलालेख, वि० सं० ११३६ फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० १०८० ता० ३१ जनवरी) शुक्रवार, वि० सं० ११३७ माघ सुदि ११ (ई० स० १०८१ ता० २४ जनवरी) रविवार, (आषाढादि) वि० सं० ११५७ (चैत्रादि ११५८) अमांत चैत्र (पूर्णिमांत

(१) श्रीमंडलीक इत्यस्य लघुभ्राताभवे(व)न्नृपः ॥३४[॥]
येनादाय रणे कन्हं दंडाधीसं(शं) महाव(ब)लं ।
अर्प्पितं जयसिंहाय सा[श्वं] गजसमन्विवं(तं) ॥३६॥
भक्त्याकार्यत मंदिरं स्मररिपोस्तत्पांशुलाखेटके ।···॥३८॥

पाणाहेड़ा के शिलालेख की छाप से।

(२) जातो यस्य रविद्युतेर्गुणनिधि-
श्चामुंडराजः सुतः ॥ [४६]
नतरिपुघृतचूडालग्ननीलेद्धसो(शो)चि-
र्म्मधुकरनिकरांव(ब)च्छन्नपादांवु(बु)जेन ।
रुचिरमिदमुदारं कारितं धर्म्मधाम्ना
त्रिदशगृहमिह श्रीमंडलेशस्य तेन । [६६] ।

अर्थूणा के मंडलेश्वर के मंदिर के शिलालेख की छाप से।

वैशाख) वदि २ (ई० स० ११०१ ता० १८ मार्च) सोमवार और वि० सं० ११५६ (ई० स० ११०२) के मिले हैं। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र विजयराज हुआ, जिसका सांधि-विग्रहिक, वालभ जाति के कायस्थ राजपाल का पुत्र वामन था। उसके समय के दो शिलालेख वि० सं० ११६५ फाल्गुन सुदि २ (ई० स० ११०६ ता० ४ फ़रवरी) गुरुवार और वि० सं० ११६६ वैशाख सुदि ३ (ई० स० ११०६ ता० ५ अप्रेल) सोमवार के मिले हैं। उसके पीछे के किसी राजा का शिलालेख न मिलने से उसके उत्तराधिकारियों के नामों का पता नहीं चलता।

मालवे के परमार और गुजरात के सोलंकियों के बीच बहुत दिनों से वैर चला आता था, इसलिए मालवे के परमार राजा नरवर्मा ने सिद्धराज जयसिंह के यात्रा में होने के कारण अवसर पाकर गुजरात पर चढ़ाई कर दी। इसका बदला लेने के लिए सिद्धराज जयसिंह ने यात्रा से लौटकर मालवे पर चढ़ाई की। उस समय वह वागड़ में होकर आगे बढ़ा, जहां उसने अधिकार कर लिया। फिर उसका नरवर्मा से युद्ध हुआ। यह युद्ध १२ वर्ष तक चलता रहा। इस बीच नरवर्मा वि० सं० ११६० (ई० स० ११३३) में मर गया। तब उस(नरवर्मा)के पुत्र यशोवर्मा ने युद्ध निरंतर जारी रक्खा, परन्तु अन्त में वह क़ैद हुआ और मालवे पर सोलंकियों का अधिकार हो गया। नरवर्मा पर विजय प्राप्त होने की प्रसन्नता में सिद्धराज जयसिंह ने बांसवाड़ा राज्य के तलवाड़ा गांव में एक मन्दिर बनवाकर उसमें गणपति की मूर्ति स्थापित की, जिसके आसन पर पांच पंक्तियों का लेख खुदा हुआ है। उससे अनुमान होता है कि मालवे की विजय के साथ ही वागड़ पर सोलंकियों का अधिकार हो गया, जिससे परमार सोलंकियों के सामंत हो गये। उनको मेवाड़ के गुहिलवंशी सामंतसिंह ने निकाल कर वागड़ पर वि० सं० १२३२ (ई० स० ११७५) के लगभग अपना अधिकार जमा लिया, जिसका वर्णन यथाप्रसङ्ग उदयपुर राज्य तथा डूंगरपुर राज्य के इतिहास में विस्तृतरूप से किया जा चुका है।

सोलंकी

गुजरात के सोलंकी दक्षिण के सोलंकियों के वंशधर थे। दक्षिण के सोलंकियों के राज्य-समय उनके छोटे भाइयों को लाट और काठियावाड़ में जागीरें मिलीं, परन्तु पीछे से काठियावाड़ के सोलंकियों का कन्नौज के प्रतिहारों की अधीनता में रहना पाया जाता है।

वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) में सोलंकी मूलराज ने, जो राजि का पुत्र था, काठियावाड़ की तरफ़ से बढ़कर गुजरात के चावड़ावंशी राजा सामंतसिंह को, जिसका वह (मूलराज) भानजा था, मार डाला और गुजरात का राज्य छीन लिया। फिर मूलराज ने अणहिलवाड़ा से उत्तर की तरफ़ राज्य बढ़ाना आरंभ किया एवं आबू के परमार राजा धरणीवराह को परास्तकर उसका राज्य भी अपने अधीन कर लिया। वि० सं० १०५२ (ई० स० ९९५) के लगभग उसकी मृत्यु होने पर उसका पुत्र चामुंडराज गुजरात का स्वामी हुआ, जिसने मालवे के परमार राजा सिन्धुराज को, जो भोज का पिता था, युद्ध में मारा। वह (चामुंडराज) विषयासक्त था, इसलिए उसकी बहिन चाचिणीदेवी ने उसे राज्यच्युत कर उसके पुत्र वल्लभराज को गुजरात का स्वामी बनाया, परन्तु वह केवल छः मास तक ही जीता रहा। अनन्तर उसका छोटा भाई दुर्लभराज राजगद्दी पर बैठा। दुर्लभराज के पीछे उसके छोटे भाई नागराज का पुत्र भीमदेव राज्याधिकारी हुआ। उसके समय में सुलतान महमूद ग़ज़नवी ने जब वि० सं० १०८२ (ई० स० १०२५) में गुजरात पर चढ़ाई कर सोमनाथ के प्रसिद्ध मंदिर को तोड़ा, उस समय भीमदेव भागकर कच्छ (कंथकोट का क़िला) में चला गया। भीमदेव जब सिंध विजय करने गया था, उन दिनों मालवे के परमार राजा भोज के मंत्री कुलचंद्र ने गुजरात की राजधानी अणहिलवाड़े पर चढ़ाई कर उस नगर को लूटा। इसका बदला लेने के लिए भीमदेव ने मालवे पर चढ़ाई की, परन्तु उन्हीं दिनों भोज रोग-ग्रस्त होकर मर गया। तब भीमदेव मालवे की राजधानी धारा नगरी पर अधिकार कर वहां से

लौटा। वि० सं० ११२० (ई० स० १०६३) के लगभग वह अपने पुत्र कर्ण को राज्य देकर तीर्थ-स्थान में जाकर तपस्या करने लगा। कर्ण ने वि० सं० ११२०-११५० (ई० स० १०६३-१०९३) तक राज्य किया। उसके समय में मालवे के परमार राजा उदयादित्य ने गुजरात पर चढ़ाई कर कर्ण को परास्त किया।

कर्ण का पुत्र सिद्धराज जयसिंह बड़ा वीर और पराक्रमी राजा था। वि० सं० ११५० (ई० स० १०९३) के लगभग वह गुजरात का स्वामी हुआ। मालवे के परमारों और सोलंकियों में बहुत समय से वैर चला आता था, इस कारण मालवे के परमार राजा नरवर्मा ने, जब कि सिद्धराज जयसिंह अपनी माता सहित सौराष्ट्र में सोमनाथ की यात्रा को गया हुआ था, गुजरात पर चढ़ाई कर दी। बिना राजा के बलवान् शत्रु का विनाश होना कठिन समझकर जयसिंह के मंत्री (सांतु) ने उस(नरवर्मा)से पूछा कि आप किस शर्त पर लौट सकते हैं? इसपर उसने उत्तर दिया कि यदि तुम जयसिंह की उपर्युक्त यात्रा का पुण्य मुझे दे दो तो मैं लौट जाऊं। सांतु ने वैसा ही किया, जिसपर नरवर्मा पीछा लौट गया। यात्रा से आने पर जयसिंह ने जब यह बात सुनी, तब वह मंत्री पर क्रुद्ध हुआ और उसने मालवे पर अपनी विशाल सेना के साथ चढ़ाई कर दी। वह (सिद्धराज जयसिंह) इस चढ़ाई के समय वागड़ में होकर मालवे की तरफ़ गया था, इसलिए नरवर्मा पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर उसने बांसवाड़ा राज्य के तलवाड़ा गांव में एक मंदिर बनवाकर उसमें गणपति की मूर्ति स्थापित की। उक्त मूर्ति के आसन पर लेख है, जिसमें जयसिंह की नरवर्मा पर विजय होने का उल्लेख है, परन्तु मूर्ति पर प्रतिदिन पानी गिरने से उस लेख का अधिकांश भाग घिस गया है, जिससे उसका संवत् पढ़ा नहीं जाता। नरवर्मा, जयसिंह से युद्ध करता हुआ ही वि० सं० ११९० (ई० स० ११३३) में मर गया। अनन्तर उसके पुत्र यशोवर्म्मा ने, उसका उत्तराधिकारी होकर, युद्ध निरन्तर जारी रक्खा। बारह वर्ष तक परमारों से युद्ध करने के पीछे जयसिंह ने मालवे की राजधानी धारा नगरी में प्रवेश किया और यशोवर्मा

को क़ैद कर वह अपने साथ ले गया। उसने मालवे के अवन्ति (उज्जैन) नगर में नागर जाति के ब्राह्मण महादेव को अपनी तरफ़ से शासक (हाकिम) नियत किया। वि० सं० ११६६ (ई० स० ११४२) के लगभग सिद्धराज जयसिंह का देहांत होने पर उसका कुटुम्बी कुमारपाल गुजरात का राजा हुआ। उसके समय में भी गुजरात के सोलंकी राज्य की अवस्था उन्नत रही। वि० सं० १२३० (ई० स० ११७४) में उस(कुमारपाल)की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी अजयपाल के समय गुजरात के राज्य की अवनति शुरू हुई और मेवाड़ के गुहिलवंशी नरेश सामंतसिंह ने उसको लड़ाई में घायल किया, जिसका बदला लेने के लिए गुजरातवालों ने उस-(सामंतसिंह)को मेवाड़ से निकाल दिया। तब उसने वागड़ की तरफ़ बढ़कर बचे हुए परमारों को, जो सोलंकियों के अधीन सामंत की भांति वहां रहा करते थे, निकालकर वहां अपना अधिकार कर लिया, किन्तु उस(सामंतसिंह)को सोलंकियों ने वहां भी न टिकने दिया और महाराजा भीमदेव (दूसरा, भोला भीम) के समय सोलंकियों का पुनः वहां अधिकार हो गया।

मेवाड़ राज्य के जयसमुद्र (ढेबर) झील के निकटवर्ती वीरपुर (गातोड़) गांव से मिले हुए वि० सं० १२४२ (ई० स० ११८५) के ताम्रपत्र से स्पष्ट है कि उस समय वागड़, गुजरात के सोलंकी राज्य के अन्तर्गत था और गुजरातवालों ने गुहिलवंशी विजयपाल के पुत्र अमृतपाल को वहां का राजा बना दिया था। उस(भीमदेव)का वागड़ पर ही अधिकार न रहा, किन्तु कुछ वर्षों तक उसका मेवाड़ पर भी अधिकार रहा था, जैसा कि वि० सं० १२६३ (ई० स० १२०६) के आहाड़ गांव से मिले हुए सोलंकी महाराजा भीमदेव के समय के ताम्रपत्र से प्रकट है। डूंगरपुर राज्य के दीवड़ा गांव के वि० सं० १२५३ (ई० स ११९६) के लेख में महाराजा भीमदेव का नाम है, परन्तु उसके पीछे के वागड़ के लेखों में उसका नाम नहीं मिलता। सामंतसिंह के वंशधर सीहड़देव के दो शिलालेखों में से एक वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२१) का मेवाड़ राज्य के जगत् गांव से (जो उन दिनों

वागड़ में था) और दूसरा वि० सं० १२९१ (ई० स० १२३५) का डूंगरपुर राज्य के बड़ोदा (वटपद्रक) गांव से मिल चुका है, जिनसे ज्ञात होता है कि भीमदेव (भोला भीम) के समय में ही सामंतसिंह के वंशधरों ने वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२१) से पूर्व सोलंकियों का वागड़ से अधिकार उठा दिया था।

तीसरा अध्याय

गुहिल वंश

बांसवाड़ा के स्वामी सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। वे अहाड़ा[1] गुहिलोत कहलाते हैं और 'महारावल' उनकी उपाधि है। इस राजवंश का निकास डूंगरपुर के राजवंश से हुआ है, जिसका विस्तृत वर्णन उदयपुर व डूंगरपुर राज्यों के इतिहास में किया जा चुका है, अतएव यहां उसका संक्षिप्त परिचय ही दिया जाता है—

अन्य राजवंशों की भांति गुहिलवंशी नरेशों का भी छठी शताब्दी से पहले का इतिहास अंधकार मे छिपा है। उनका क्रमबद्ध इतिहास राजा गुहिल से मिलता है। उनके प्राचीन एवं विश्वस्त शिलालेखों में गुहिल से ही वंशावली आरंभ की गई है। मि० कार्लाइल को ई० स० १८६९ (वि० सं० १९२६) में गुहिल के २००० चांदी के सिक्के आगरे से मिले थे, जिनसे अनुमान होता है कि वह प्रदेश उस (गुहिल) के अधिकार में रहा होगा, क्योंकि पीछे भी उसके आस-पास के प्रदेश पर बहुत समय तक गुहिलवंशियों का राज्य रहा था। अनन्तर भोज, महेन्द्र, नाग और शील (शीलादित्य) नामक राजा हुए। उदयपुर राज्य के भोमट प्रांत के सामोली गांव से शीलादित्य का वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) का शिलालेख मिला है तथा उसके सिक्के भी मेवाड़ में मिल गये हैं, जिनसे निश्चित है कि उस समय मेवाड़ में गुहिलवंशियों का राज्य स्थायी रूप से जम चुका था। फिर अपराजित राजा हुआ, जो वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) में मेवाड़ में राज्य करता था। कुंडा गांव के वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) के लेख

---

(१) विक्रम की दसवीं शताब्दी के लगभग आहाड़ (आघाटपुर) गुहिलवंश की दूसरी राजधानी थी, जो उदयपुर से उत्तर-पूर्व में लगभग १½ मील दूर है। वहां रहने से गुहिलवंश की एक शाखा अहाड़ा कहलाई।

से प्रकट है कि वह (अपराजित) प्रतापी नरेश था और उसने गुहिलवंश की राज्य-लक्ष्मी बढ़ाई थी। उसके पीछे महेन्द्र और कालभोज (बापा रावल) राजा हुए। कालभोज (बापा) के लिए प्रसिद्ध है कि वह एकलिङ्ग शिव का परमभक्त था और उसने मोरियों से चित्तोड़ का दुर्ग छीनकर दूर-दूर तक अपनी विजय-पताका फहराई थी। वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) में उस(बापा)ने राज्य त्यागकर संन्यास लिया। उसकी राजधानी एकलिङ्गजी के निकट नागदा नगर थी। उसका पुत्र खुंमाण (प्रथम) हुआ, जिसके पीछे मत्तट, भर्तृभट, सिंह, खुंमाण (दूसरा), महायक और खुंमाण (तीसरा) ने क्रमशः अपने पैतृक राज्य को प्राप्त किया। खुंमाण (तीसरा) के पीछे भर्तृभट (दूसरा), अल्लट, नरवाहन, शालिवाहन और शक्तिकुमार मेवाड़ के स्वामी हुए, जिनका समय शिलालेखों से वि० सं० ९९९ से १०३४ (ई० स० ९४२ से ९७७) तक स्पष्ट है। शक्तिकुमार के समय मालवे के परमार राजा मुंज ने आक्रमण कर चित्तोड़ पर अधिकार कर लिया और उस(मुंज)ने आहाड़ को भी तोड़ा था।

शक्तिकुमार का पुत्र अंबाप्रसाद, सांभर के चौहान वाक्पतिराज (दूसरा) के द्वारा मारा गया। उस(अंबाप्रसाद)के पीछे क्रमशः शुचिवर्मा, नरवर्मा, कीर्तिवर्मा, योगराज, वैरट, हंसपाल और वैरिसिंह राजा हुए। वैरिसिंह का उत्तराधिकारी विजयसिंह हुआ, जिसका वि० सं० ११६४-११७३ (ई० स० ११०७-१११६) तक मेवाड़ का राजा होना निश्चित है। फिर अरिसिंह, चोड़सिंह, विक्रमसिंह और रणसिंह (कर्णसिंह) ने एक दूसरे के पीछे राज्य पाया। रणसिंह के क्षेमसिंह, माहप और राहप नामक पुत्र थे। माहप और राहप को मेवाड़ में सीसोदे की जागीर मिली, जिससे वे तथा उनके वंशधर सीसोदिया कहलाये तथा उनकी उपाधि 'राणा' हुई। राहप के वंशधर इस समय उदयपुर राज्य के स्वामी हैं।

क्षेमसिंह मेवाड़ का स्वामी रहा और 'रावल' उसकी उपाधि रही। उसके सामंतसिंह तथा कुमारसिंह नामक दो पुत्र थे, जिनमें से सामंतसिंह

सामंतसिंह का वागड़ पर अधिकार करना

ने पिता का राज्य मिलने पर गुजरात के सोलंकी राजा अजयपाल से युद्धकर उसे घायल किया, इससे गुजरातवालों से उसका वैर हो गया। उसके सामन्त भी उससे रुष्ट थे। ऐसा अवसर पाकर गुजरातवालों ने उसको वहां से निकाल दिया। तब उसने वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) के पूर्व वागड़ में जाकर वड़ोदा के सरदार चौरसीमल को मारकर वहां पर अपना राज्य जमाया, परन्तु गुजरातवालों ने वहां भी उसे स्थिरता पूर्वक रहने न दिया।

वागड़ का राज्य सोलंकियों के अधिकार में चले जाने एवं सोलंकियों-द्वारा गुहिलवंशी अमृतपाल को उसके दिये जाने पर भी सामंतसिंह के वंशज निराश न हुए और अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही उन्होंने गुजरात के महाराजा भीमदेव (दूसरा) की कमज़ोरी का अवसर पाया त्योंही वागड़ का राज्य पीछा अपने अधिकार में कर लिया। सामंतसिंह के पीछे जयतसिंह, सीहड़देव, विजयसिंहदेव (जयसिंहदेव), देवपालदेव (देदू), वीरसिंहदेव (वरसी रावल) और भचुंड वागड़ के स्वामी हुए, जिनकी राजधानी वड़ोदा (वटपद्रक, डूंगरपुर राज्य) थी। भचुंड का पुत्र डूंगरसिंह हुआ, जिसने वि० सं० १४१५ (ई० स० १३५८) के लगभग डूंगरपुर बसाकर वहां अपनी राजधानी स्थापित की।

डूंगरसिंह का उत्तराधिकारी कर्मसिंह (पहला) और उसके पीछे कान्हड़देव तथा प्रतापसिंह (पाता रावल) क्रमशः वागड़ की गद्दी पर बैठे। अनन्तर गोपीनाथ (गैपा रावल) वि० सं० १४८३ (ई० स० १४२६) के लगभग वागड़ का स्वामी हुआ। उसके समय में वि० सं० १४८६ (ई० स० १४३३) में गुजरात के सुलतान अहमदशाह की चढ़ाई हुई। उस समय उसने गुजरात की सेना को नष्टकर उसकी संपत्ति छीन ली। फिर उसने वागड़ में बसनेवाले भीलों का दमनकर वहां शांति स्थापित की। तदनन्तर मेवाड़ के महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) की चढ़ाई होने पर मेवाड़ की

सेना से लड़ना उचित न समझकर वह कुछ समय के लिए पहाड़ों में चला गया।

गोपीनाथ का पुत्र सोमदास भी वीर था। उसके समय में मांडू के सुलतान महमूद ख़िलजी और गयासुद्दीन की वि० सं० १५१६ तथा १५३० (ई० स० १४५९ और १४७४) में चढ़ाइयां हुईं। इनमें से पिछली चढ़ाई में डूंगरपुर को सुलतान ने तोड़ा था। वि० स० १५३६ (ई० स० १४८०) में सोमदास का देहांत होने पर उसका पुत्र गंगदास वागड़ के सिंहासन पर बैठा, जिसने ईडर की १८००० सेना से युद्ध किया था।

महारावल गंगदास का पुत्र उदयसिंह युद्धप्रिय नरेश था। कुंवर-पदे में वह मेवाड़ के महाराणा रायमल के साथ, मालवे के सेनापति जफ़रखां के साथ के युद्ध में, विद्यमान था। सिंहासनारूढ़ होने के पीछे उसने गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़रशाह के विरुद्ध ईडर का राज्य राठोड़ राव रायमल को दिलाने में मेवाड़ के स्वामी महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के साथ रहकर वि० सं० १५७१ (ई० स० १५१४) में निज़ामुलमुल्क (गुजरात के सरदार) से युद्ध किया। उसका बदला लेने के लिए गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़रशाह की सेना ने वि० सं० १५७७ (ई० स० १५२०) में वागड़ में प्रवेशकर डूंगरपुर को बरबाद किया। वहां से जब गुजरात की सेना सागवाड़े की तरफ़ होती हुई लौटी तो कुंवर जगमाल ने बांसवाड़े की तरफ़ से बढ़कर उसका मुक़ाबला किया।

अपने पिता मुज़फ्फ़रशाह से गुजरात के शाहज़ादे बहादुरशाह के रूठकर डूंगरपुर आने पर महारावल उदयसिंह ने उसे शरण दी। वह (उदयसिंह) गुजरात का राज्य बहादुरशाह को दिलाने का पक्षपाती था, इसलिए गुजरात के सरदारों ने जब बहादुरशाह के छोटे भाई नासिरखां को गुजरात का सुलतान बनाकर मुग़ल बादशाह बाबर से, जो उन दिनों भारत पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था, सहायता देने को पत्र भेजा, तो महारावल ने वह पत्र छिनवाकर बहादुरशाह के पास भेज दिया। फिर बहादुरशाह के सुलतान होने पर उसके विरोधी अफ़सर अज़दुलमुल्क

और मुहाफ़िज़खां भागकर डूंगरपुर चले गये। महारावल ने उनको अपने यहां रक्खा। इसपर नाराज़ होकर वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२६) में सुलतान बहादुरशाह ससैन्य बागड़ में आया, तब महारावल उस (सुलतान) के पास उपस्थित हो गया, जिससे वह अपना कोप शांत होने पर लौट गया।

वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२७) में मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) ने भारत में पुनः हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना करने की इच्छा से दिल्ली के मुग़ल बादशाह बाबर पर चढ़ाई की, उस समय महारावल उदयसिंह और उसका कुंवर जगमाल भी १२००० सेना सहित महाराणा के साथ रहे। भरतपुर राज्य में खानवे के पास युद्ध हुआ, जिसमें महारावल उदयसिंह वि० सं० १५८४ चैत्र सुदि १४ (ई० स० १५२७ ता० १७ मार्च) को वीर-गति को प्राप्त हुआ और कुंवर जगमाल घायल होकर गिर गया।

महारावल उदयसिंह के पृथ्वीराज और जगमाल नामक दो पुत्र हुए, जिनमें से ज्येष्ठ पृथ्वीराज के वंशज डूंगरपुर और छोटे जगमाल के वंशज बांसवाड़ा के स्वामी हैं।

बांसवाड़ा के दीवान के कथन की समीक्षा

महारावल उदयसिंह के इन दोनों पुत्रों में पृथ्वीराज बड़ा था, यह बात प्रायः सब इतिहास-लेखकों ने स्वीकार की है और बांसवाड़ा के स्वामी भी सदा से ऐसा ही मानते रहे हैं। यही नहीं, अंग्रेज़ सरकार में भी वे अब तक अपने को महारावल उदयसिंह के छोटे पुत्र जगमाल के वंशज होना ही लिखते रहे हैं, किन्तु अभी कुछ महीनों पूर्व हमारे पास बांसवाड़ा के दीवान का एक पत्र आया, जिसमें यह बतलाने की चेष्टा की गई है कि 'जगमाल, महारावल उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था और पृथ्वीराज छोटा, तथा अपने इस कथन की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण दिये हैं—

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात में जगमाल को महारावल उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है।

(२) जोधपुर के कविराजा बांकीदास के यहां की एक पुस्तक में भी जगमाल के महारावल उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र होने का उल्लेख है।

(३) सुन्नणपुर गांव के वि० सं० १५७५ पौष वदि १२ के शिलालेख में जगमाल को 'महाकुंवर' लिखा है, जिसका अर्थ ज्येष्ठ पुत्र होता है।

(४) नौगांवा के एक खेत पर के वि० सं० १५८४ के लेख में जगमाल को 'महाकुंवर' लिखा है, जो ज्येष्ठ होने का सूचक है।

उपर्युक्त दलीलों के आधार पर हमसे यह आग्रह किया गया कि जगमाल को महारावल उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र मानना चाहिये; परन्तु जगमाल के उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र होने की कथा लोक-प्रसिद्ध नहीं है और वह परंपरागत जनश्रुति एवं इतिहास के विरुद्ध पड़ती है, अतएव इतिहास की विशुद्धि के लिए बांसवाड़ा के दीवान के कथन की जांच करना आवश्यक है कि उसमें वास्तविकता का अंश कितना है?

(१) ई० स० १६३१ ता० ४ अगस्त (वि० सं० १६८८ श्रावण वदि ६) को बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से भेजी हुई बड़वे की ख्यात की प्रतिलिपि में लिखा है—

"महारावल उदयसिंह की राणी राजकुंवरी—वीरसिंह की पुत्री—से महाराजकुमार जगमाल हुआ, जो बांसवाड़े आया और दूसरी राणी सोनगरी पन्नाकुंवरी—विजयसिंह की पुत्री—से छोटा कुंवर पृथ्वीसिंह (पृथ्वीराज) उत्पन्न हुआ, जो डूंगरपुर रहा।

"महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) ने दिल्ली के बादशाह अकबर के चित्तोड़ पर आक्रमण करने के समय रायरायां महारावल उदयसिंह को बुलवाया, तब वह अपने छोटे कुंवर पृथ्वीसिंह को डूंगरपुर की रक्षा का भार देकर महाराजकुमार जगमाल सहित चित्तोड़ गया। फिर महाराणा सांगा और उदयसिंह ने पीले खाल पर जाकर उक्त बादशाह से युद्ध किया। महाराणा का मुक़ाम गांव सीकरी में रहा। उस युद्ध में उदयसिंह मारा गया और जगमालसिंह के ८४ घाव लगे। फिर रणक्षेत्र को सम्हाला गया तो घायलों में जगमाल नहीं मिला। इसके पीछे उसी मार्ग से बाबा मानभारती उज्जैन

के चढ़ाव के मेले से लौटता हुआ निकला। उसने जगमालसिंह को वट-वृक्ष के नीचे घायल पड़ा हुआ देखा। वह (मानभारती) उस(जगमाल)के पास गया और उसके पैरों में स्वर्ण के लङ्गर देखकर उसने विचार किया कि यह कोई अमीर है। तदनन्तर उसने उस(जगमाल)को पालकी में उठवा लिया और मार्ग में उसकी मरहम-पट्टी की। तब तीसरे दिन जाकर जगमाल मुंह से बोला। मानभारती ने पूछा कि तुम कौन हो? इसपर उसने अपना पता न बताया, परन्तु तीन महीने तक वह उसके साथ रहा और घावों की पीड़ा से अच्छा हुआ[1]।

"मानभारती गुजरात में भ्रमण करता हुआ ईडर पहुंचा। वहां जगमाल को कुंए पर स्नान करते हुए देख, उस(जगमाल)की वहां ससुराल होने से स्त्रियों ने उसको पहिचान लिया। उन्होंने जाकर राव इंद्रभाण से कहा—'आपके जंवाई (जामाता) तो कुंए पर बाबाजी की मंडली में हैं'। इसपर इंद्रभाण वहां जाकर जगमाल से मिला। फिर उसने साधु-मंडली-सहित उसको महलों में बुलवाया और वहां बड़ी खुशी की। यह समाचार राव इंद्रभाण ने जब डूंगरपुर भेजा तो पृथ्वीसिंह ने कहा कि 'यह सब फ़ितूर है'। उस(पृथ्वीसिंह)का ऐसा उत्तर पाकर इंद्रभाण ने महाराणा सांगा को लिखा। तब उदयपुर से महाराणा सांगा ईडर गया, जहां उस(महाराणा)की भी ससुराल थी, जिससे १३ या १५ दिन तक वह वहां ठहरा रहा। उसने जगमाल को पहिचानकर कहा कि 'यह काका जगमालसिंह ही है'। अनन्तर ईडर से महाराणा सांगा और राव इंद्रभाण जगमाल को लेकर डूंगरपुर गये, जिनको पृथ्वीसिंह ने डूंगरपुर में न आने दिया और कहा कि 'मेरा भाई जगमालसिंह हो तो आने दूं।' महाराणा और ईडर के राव ने उस(पृथ्वीसिंह)को बहुत कुछ समझाया, परन्तु उसने न माना। अन्त में ईडर का राव नाराज़ होकर लौट गया और महाराणा सांगा जगमाल को लेकर चावंड (मेवाड़) गया। वहां तीन वर्ष तक रहकर जगमाल लूट-मार करता रहा। फिर मंदसोर के शाहज़ादे

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात; पत्र १, पृ० २।

महमूदशाह ने आकर जगमालसिंह को कहा कि जितनी भूमि तुमने ली, उतनी ही अपने लिये रक्खो। तत्पश्चात् वागड़ का बटवारा हुआ[१]।

"संवत पनर पिचासिये, चैत तीज रविवार।
वागड़ वांटी खाग बल, नीश्चे (?) रावल जगमाल॥

"दोनों राज्यों अर्थात् वागड़ के दोनों किनारों में से माही नदी वांसवाड़ा की रही और उधर के तट की परली तरफ़ से डूंगरपुर की सीमा हुई। इस समझौते पर जगमाल ने 'सही' शब्द लिखा और पृथ्वीसिंह ने 'खरी' लिखा। इसका यह कारण है कि जिसने भूमि ली, उसके 'सही' (वहाल) रही और जिसके बच गई, उसके 'खरी' (शेष) ठीक रही। इस बटवारे के होने के पीछे वांसवाड़े के पट्टों परवानों पर 'टट्ट सही टट्ट' लिखा जाने लगा[२]।

"वागड़ का यह बटवारा संवत् १५८५ चैत सुदि ३ रविवार को हुआ। जगमाल के साथ उस समय मेड़तिया राठोड़ गोपीनाथ (तलवाड़े का) चौहान माधोसिंह (मेतवाले का) चौहान हाथी (अर्थूणे का) और चौहान सबलसिंह (मोलां का) डूंगरपुर से आये थे। जगमालसिंह चावंड से लोहारिये आया और उसने लोलाड़िया राठोड़ परवतसिंह को, जो कुआंणिये में रहता था, मारा[३]।"

ख्यात का उपर्युक्त सारा कथन बहुधा कपोल कल्पित है और इतिहास की अज्ञानता में लिखा गया है। अब तक जितने भी इतिहास के ग्रंथ लिखे गये हैं, उनमें से किसी में भी जगमाल को महारावल उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र नहीं लिखा है। यदि ख्यात में जगमाल को उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र लिखा होता तो अवश्य ही उन सब पुस्तकों में भी (जिनमें पृथ्वीराज को ज्येष्ठ लिखा है) जगमाल को उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र लिखा जाता।

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात; पत्र २, पृ० २।
(२) वही; पत्र २, पृ० २।
(३) वही; पत्र ३, पृ० १।

यह बात बांसवाड़ा राज्य के दीवान को भी स्वीकार है कि अंग्रेज़ी पुस्तकों में लिखा हुआ अधिकांश वृत्तांत, जिसमें जगमाल को महारावल उदयसिंह का छोटा पुत्र लिखा है, स्वयं रियासत ने ही भेजा था[1]। इससे सिद्ध है कि जगमाल के उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र होने की बात पहले ख्यात में लिखी हुई न थी। यदि पहले की लिखी हुई होती तो राज्य उसके विरुद्ध जगमाल को उदयसिंह का छोटा पुत्र कभी नहीं लिखता, क्योंकि बांसवाड़ा राज्य के इतिहास के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ विद्वानों ने उल्लेख किया है, उन सबका मूल आधार ख्यात ही है।

उपर्युक्त बड़वे की ख्यात में जो अन्य वृत्तान्त, महारावल जगमाल के सम्बन्ध में लिखा है, वह भी अधिकांश में विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि महाराणा सांगा के समय बादशाह अक्बर का जन्म ही नहीं हुआ था। पीलिया खाल (खानवा, भरतपुर राज्य) के पास महाराणा सांगा का युद्ध बादशाह अक़बर के साथ नहीं, अपितु उसके दादा बाबर बादशाह के साथ ई० स० १५२७ (वि० सं० १५८४) में हुआ था[2], जिसमें उदयसिंह मारा गया।

ईडर की गद्दी पर राव इंद्रभाण नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ और न महाराणा सांगा के समय उदयपुर बसा था। उदयपुर तो महाराणा सांगा के पुत्र उदयसिंह ने वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में बसाया[3] था।

महाराणा सांगा खानवे के युद्ध से अनुमान दस मास पीछे वि० सं० १५८४ में कालपी (आगरा ज़िला) में परलोक सिधारा था[4]। खानवे के

(१) बांसवाड़ा राज्य के दीवान का पत्र; संख्या ४७५ ता० ३० मार्च सन् १९३६ ई०, पृ० १०।

(२) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६८-७३। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६६-८।

(३) वीरविनोद भाग २, पृ० ७२।

(४) संग्रामसिंहः संग्रामं बब्बरेणविधाय सः।
कालपीमध्य आयातः संग्रामस्य तदाखिलैः॥

युद्ध के बाद वह पीछा मेवाड़ में आया ही नहीं और न वागड़ अथवा ईडर की तरफ़ गया। ऐसी अवस्था में उसका जगमाल के साथ चावंड में रहना सर्वथा असंभव है।

ख्यात में उल्लिखित पृथ्वीराज और जगमाल के बीच वागड़ के वंटवारे के समय मंदसोर में महमूदशाह नाम का कोई शाहज़ादा ही न था।

वागड़ का यह वंटवारा वि० सं० १५८५ में नहीं, किन्तु वि० सं० १५८७ (ई० स० १५३०) में हुआ था, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। ऐसे ही ख्यात में लिखे हुए वि० सं० १५८५ चैत्र सुदि ३ को रविवार होना भी निराधार है, क्योंकि चैत्रादि वि० सं० १५८५ में तो सोमवार था और आषाढादि वि० सं० १५८५ (चैत्रादि १५८६) में चैत्र सुदि ३ को शुक्रवार।

ख्यात का यह कथन कि वि० सं० १५८५ (ई० स० १५२८) में वागड़ को महारावल जगमाल ने वंटवा लिया, ठीक नहीं जंचता, क्योंकि उसी ग्रन्थ में जगमाल का तीन वर्ष (वि० सं० १५८४-८६=ई० स० १५२७-१५२६) तक चावंड में रहते समय विद्रोही रहना लिखा है। यदि वि० सं० १५८५ (ई० स० १५२८) में वागड़ का वंटवारा हो गया होता तो फिर जगमाल को अधिक दिनों तक लूट-मार करने की आवश्यकता ही क्या थी?

उपर्युक्त कुछ बातों पर विचार करने से ही ज्ञात हो जायगा कि बड़वा भाटों की लिखी हुई ख्यातें प्राचीन इतिहास के लिए प्रामाणिक नहीं हैं। यही नहीं, वे भ्रमोत्पादक होने के कारण सत्यमार्ग से वंचित भी करती हैं। यह सर्वमान्य सिद्धांत है कि इतिहास के अन्धकार की दशा में इन ख्यातों की सृष्टि हुई है और ख्यात-लेखकों को पुराने समय की ऐतिहासिक बातों का कुछ भी ज्ञान न था। फिर उन्होंने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न

गरदानं कृतं त्वैतैः संग्रामं तादृशं पुनः ॥
आनीय मंडलगढ़े मेदपाटे पुरक्रियाम् ॥

अमरकाव्यम्, पत्र २४।

रखने के लिए अपनी ख्यातों में समय-समय पर कई मनमानी बातें लिखकर उनको भ्रष्ट कर दिया है, जिससे उनमें वास्तविकता का जो अंश था, वह भी जाता रहा और अब वे प्राचीन इतिहास के लिए कुछ भी महत्त्व नहीं रखतीं। जब अन्य ऐतिहासिक साधनों से ख्यातों की जांच की जाती है तो उनमें लिखा हुआ वृत्त अधिकांश में प्रक्षिप्त ठहरता है। इसी कारण, विद्वान् लोग ख्यातों पर विश्वास नहीं करते और शोध से जो बात उचित जान पड़ती है उसी को ग्रहण करते हैं।

राजाओं की गद्दीनशीनी, विवाहोत्सव, पुत्र-जन्म आदि अवसरों पर बड़वा लोग राज्यों में बराबर जाते-आते रहते हैं। वे राजा तथा उसके पुत्रों आदि के नाम लिखते हैं और बड़ी धूमधाम से अपनी ख्यातों में उल्लिखित वंशावली सुनाते हैं; ऐसी दशा में ई० सन् १६३१ (वि० सं० १६८८) तक बांसवाड़ा राज्य के शासकों को जगमाल के ज्येष्ठ होने का कुछ भी ज्ञान न हो, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों का बड़वा एक ही है। डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात भी मेरे देखने में आई है, जिसमें जगमाल के उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र होने के विषय में कहीं भी उल्लेख नहीं है। ऐसी दशा में केवल बांसवाड़े से भेजी हुई बड़वे की ख्यात के अनुसार यह मान लेना कि जगमाल उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था, नितान्त अनुचित है।

अब यहां यह बतलाना उचित है कि जगमाल के ज्येष्ठ न होने के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों ने क्या लिखा है—

मेजर-जेनरल सर जॉन माल्कम अपनी 'ए मेमोयर ऑव् सेन्ट्रल इंडिया इनक्ल्युडिंग मालवा' नामक पुस्तक (तृतीय संस्करण; ई० स० १८३२) में लिखता है—"बांसवाड़े का राजा डूंगरपुर के राजा के छोटे भाई का वंशज है[1]।"

---

(१) माल्कम; ए मेमोयर ऑव् सेंट्रल इंडिया इनक्ल्युडिंग मालवा (ई० स० १८१२=वि० सं० १८८१), जि० १, पृ० ४०६।

जी० आर० एब्री मेके ने ई० स० १८७८ (वि० सं० १९३५) में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'दि नेटिव चीफ्स एण्ड देअर स्टेट्स' में जगमाल को उदयसिंह का छोटा पुत्र लिखा है[1]।

'राजपूताना गैज़ेटियर' (जो ई० स० १८७९=वि० सं० १९३६ में तीन जिल्दों में प्रकाशित हुआ) की प्रथम जिल्द में बांसवाड़ा राज्य के वृत्तान्त में (जो बांसवाड़े से ही भेजा गया था) लिखा है—"उदयसिंह के दो पुत्रों में बड़ा पृथ्वीराज और छोटा जगमाल था[2]।"

कर्नल ट्रेवर, एजेंट गवर्नर जेनरल राजपूताना ने पोलिटिकल अफ़सरों-द्वारा भिन्न-भिन्न राज्यों से वहां के नरेशों और सरदारों आदि का वृत्तान्त संग्रह कराकर मंगवाया तथा उसके आधार पर 'चीफ्स एण्ड लीडिंग फेमिलीज़ इन राजपूताना' नामक पुस्तक प्रकाशित होना आरम्भ हुआ (अब भी यह पुस्तक 'दि रूलिंग प्रिन्सेज़ चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजिज़ इन राजपूताना एण्ड अजमेर' नाम से प्रकाशित होती है)। उसमें भी यही लिखा है कि बांसवाड़ा डूंगरपुर की छोटी शाखा में है और महारावल उदयसिंह के दो पुत्रों में से ज्येष्ठ पृथ्वीराज तथा छोटा जगमाल था[3]।

उदयपुर राज्य के बृहत् इतिहास 'वीरविनोद' में बांसवाड़ा राज्य के वर्णन में महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने लिखा है कि जगमाल महारावल उदयसिंह का छोटा पुत्र था[4]।

प्रसिद्ध विद्वान् डा० हेंडली ने 'रूलर्स ऑव् इंडिया एण्ड दि चीफ्स ऑव् राजपूताना' नामक पुस्तक तैयार करने के लिए भिन्न-भिन्न राजाओं

---

(१) एब्री मैके; दि नेटिव चीफ्स एण्ड देअर स्टेट्स (द्वितीय संस्करण, ई० स० १८७८=वि० सं० १९३५); वंशवृक्ष पृ० १७, भाग दूसरा, पृ० २५।

(२) राजपूताना गैज़ेटियर के अन्तर्गत बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; जि० १, पृ० १०४-१०५।

(३) लिस्ट ऑव् रूलिंग प्रिंसेज़ चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजिज़ (छठा संस्करण, ई० स० १९३१); पृ० २४।

(४) वीरविनोद; भाग दूसरा, प्रकरण ग्यारहवां।

के चित्र तथा संक्षिप्त परिचय उनके राज्यों से मंगवाकर ई० स० १८९७ में अपने बहुमूल्य ग्रंथ को प्रकाशित किया था । उसमें भी जगमाल को उदयसिंह का छोटा पुत्र ही लिखा है[1] ।

भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड कर्ज़न ने हिन्दुस्तान का 'इंपीरियल गैज़ेटियर' तैयार कराने की योजना कर प्रत्येक विभाग के पृथक्-पृथक् गैज़ेटियर बनाने के लिए अफ़सर नियत किये। उस समय राजपूताना गैज़ेटियर के लिए मेजर के० डी० अर्सकिन की नियुक्ति हुई। उसने राजपूताना के राज्यों से वहां के वृत्तांत मंगवा कर उपरोक्त गैज़ेटियर के लिए राजपूताने का अंश तैयार कर भेजा, जो ई० स० १९०८ में प्रकाशित हुआ। उसमें जगमाल को महारावल उदयसिंह का छोटा पुत्र बतलाया है[2] ।

भारत सरकार की तरफ़ से देशी राज्यों के संबंध की आवश्यक बातें जानने के लिए 'मेमोरेन्डा ऑन दि नेटिव स्टेट्स' नामक पुस्तक समय-समय पर प्रकाशित होती रहती है। उसके ई० स० १९३४ के संशोधित संस्करण में लिखा है—"डूंगरपुर के स्वामी उदयसिंह की मृत्यु के पीछे ई० स० १५२८ में बांसवाड़ा पृथक् राज्य हुआ और उस(उदयसिंह)का ज्येष्ठ पुत्र डूंगरपुर का तथा छोटा बांसवाड़े का स्वामी हुआ[3] ।"

इनके अतिरिक्त अन्य कई इतिहासवेत्ताओं ने भी ख्यात के आधार पर ही जगमाल को उदयसिंह का छोटा पुत्र बतलाया है[4]। ऐसी स्थिति में

---

(१) हैंडली; दि रूलर्स ऑव् इंडिया एण्ड दि चीफ़्स ऑव् राजपूताना, पृ० ३९।

(२) इम्पीरियल गैज़ेटियर ऑव् इंडिया के अन्तर्गत राजपूताना गैज़ेटियर; पृ० १४७। अर्सकिन; बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर, पृ० १६२।

(३) मेमोरेण्डा ऑन इंडियन स्टेट्स (ई० स० १९३४); पृ० २०८।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जिल्द १, पृ० ८६। मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना (उर्दू); जि० १, पृ० २१४। जरनल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल (ई० स० १८९७=वि० सं० १९५४); भाग १, पृ० १६५-६६। मार्कंड एन. महता एण्ड मनु एन. महता; हिन्द राजस्थान, पृ० ६३१। ए० वेदि वेलु; दि रूलिंग चीफ़्स नोबुल्स एण्ड ज़मींदार्स ऑव् इंडिया; पृ० २०८। डूंगरपुर राज्य के रायभिंगा की ख्यात। चारण रामनाथ रत्नु; इतिहास राजस्थान, पृ० ७८।

बांसवाड़ा राज्य के दीवान का यह कथन कि बड़वे की ख्यात में जगमाल को उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है, कदापि मान्य नहीं हो सकता। यदि पहले से ख्यात में जगमाल को ज्येष्ठ लिखा होता तो अवश्य ही इन पुस्तकों में भी जगमाल को ही ज्येष्ठ लिखा जाता, न कि पृथ्वीराज को।

(२) जोधपुर के कविराजा बांकीदास के यहां की एक पुस्तक में जगमाल का ज्येष्ठ लिखा होना बांसवाड़ा राज्य के दीवान ने बतलाया है, परन्तु वह पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। कविराजा बांकीदास बड़ा ही सम्पन्न और इतिहासप्रेमी पुरुष था। उसकी संग्रहीत लगभग २८०० ऐतिहासिक बातों की पुस्तक मेरे यहां है, जिसमें कहीं भी जगमाल का बड़ा होना नहीं लिखा है। उसमें केवल यही लिखा है—

"डूंगरपुर का स्वामी रावल उदयसिंह राणा सांगा की सहायतार्थ सीकरी में काम आया। कुंवर जगमाल घायल हुआ। उसके वंश के बांसवाड़ा के रावल हैं[1]।"

कविराजा बांकीदास के यहां की उपर्युक्त पुस्तक, जिसमें जगमाल के ज्येष्ठ होने का उल्लेख है, बतलाने के लिए मैंने बांसवाड़ा राज्य के दीवान को लिखा, परन्तु वह पुस्तक नहीं भिजवाई गई, इसलिए उक्त पुस्तक के संबंध में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में वह बांकीदास की लिखित है या पीछे की संग्रहीत।

बांकीदास महारावल जगमाल से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ था। ऐसी अवस्था में उसके यहां के संग्रह में जगमाल के विषय में जो कुछ लिखा है वह बिलकुल ठीक नहीं माना जा सकता। एक ही जगह से प्राप्त वर्णन यदि भिन्न-भिन्न रूप से मिलते हैं तो उनमें कौनसी बात सत्य है इसका निर्णय करना कठिन होने से संदिग्ध बात प्रमाण में नहीं ली जा सकती।

(३) सुन्नणपुर गांव के वि० सं० १५७५ पौष वदि १२ (ई० स० १५१८) के जिस शिलालेख में जगमाल को महाकुंवर लिखा है, उसकी छाप बांसवाड़े से हमारे पास आई, जिसमें संवत् १५७५ पौष वदि १२ शुक्रवार (?)

---

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ३२।

पढ़ा जाता है; परन्तु बांसवाड़ा से आई हुई उसकी नक़ल में गुरुवार लिखा है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि उस दिन बुधवार था।

यह लेख प्रशस्ति नहीं है किन्तु खेत में गड़ी हुई सुरह है, जिसपर किसी अपढ़ पुरुष की लिखी हुई छोटी-छोटी नौ पंक्तियां हैं, जो बिगड़ी हुई होने से अधिकांश पढ़ी नहीं जातीं। इसमें कुछ भूमि देने का उल्लेख है[1]। यह लेख विश्वास के योग्य नहीं है; क्योंकि इसमें भूमि का परिमाण और पड़ोस आदि कुछ भी नहीं लिखा है और केवल 'आघाटदत्त' ही लिखा है, जिसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं होता।

बांसवाड़ा राज्य के दीवान को, उपर्युक्त संदिग्ध लेख में जगमाल को 'महाकुंअर' लिखा होने से, इस बात का दावा है कि 'जगमाल' के ज्येष्ठ होने से ही उसे 'महाकुंअर' लिखा है।

'महाकुंअर' का अर्थ ज्येष्ठ पुत्र नहीं होता। 'महा' शब्द केवल महत्व का सूचक है, जैसे राजा को महाराजा, राणा को महाराणा, रावल को महा-

---

(१) १ ॥ स्वस्ती संवत १५७५ वर्षे
२ पौपवदि १२ दिने गुरौ
३ म माहाराउल श्री उदयसिंघजी
४ महा कुअर श्री जगमलजी संमति
५ आघाटदत्त राउल वनासुत
६ नरहरिकेन संप्रदास्ये अस्ति
७ यस्य प्रदाभूमि तस्य त
८ स्य फला जनि............
९...आचन्द्रार्क मयापि दत्तामु

तथास्तु

[बांसवाड़ा से भेजे हुए अक्षरांतर (नक़ल) से]।

इस लेख की बांसवाड़ा से जो छाप आई, वह इतनी ख़राब है कि बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी उसका ठीक पाठ नहीं निकल सका। इसलिए वास्तविकता का ज्ञान होने के लिए जो अक्षरांतर बांसवाड़ा से आया है, वही यहां पर दे दिया गया है।

रावल, रावत को महारावल, राव को महाराव आदि लिखते हैं। वागड़ के कुछ लेखों के सिवाय 'महाकुंअर' शब्द का प्रयोग राजपूताने में कहीं नहीं मिलता। वर्तमान समय में राजा के प्रत्येक कुंअर को महाराजकुमार कहते हैं। उसी प्रकार वागड़ के पहले के लेखों में किसी भी कुंवर को कहीं-कहीं 'महा-कुंअर' लिखा मिलता है, जो महाराजकुमार का ही सूचक है। राजा के पुत्र को 'महाकुंअर', 'महाराजकुमार' या 'कुंवर' लिखने की पहले कोई रूढ़ि नहीं थी और लेखक लोग जैसा चाहते वैसा ही लिखते थे। प्राचीन समय के लेखों में राजाओं के नामों के साथ कुंवरों के नाम बहुत ही कम मिलते हैं और कभी मिल जाते हैं तो उनमें ज्येष्ठ पुत्र को भी 'कुंवर' ही लिखा मिलता है[1]; परन्तु वागड़ के लेखों में छोटे कुंवर को भी 'महाकुंअर' लिखा है, जिसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

---

(१) स्वस्ति श्रीचित्रकोटगढ़महादुर्गे महाराजाधिराजमहाराणा श्रीरायमलसुतकुंअरश्रीसांगोजी आदेशात्...... ।

[वि० सं० १५६५ के मऊड़ा गांव (मेवाड़) के ताम्रपत्र के फ़ोटो से]।

......संवत् १५८३ वर्षे मागसिर सुदि ११ दिने श्रीजेसलमेरु-महादुर्गे राउलश्रीचाचिगदेवपट्टे राउलश्रीदेवकर्णपट्टे महाराजाधिराज-राउलश्रीजयतसिंहविजयिराज्ये कुंमरश्रीलूणकर्ण...... ।

(जैसलमेर के शांतिनाथ के मंदिर की प्रशस्ति से)।

पूर्णचंद्र नाहर; जैन-लेख-संग्रह, तृतीय खंड, पृ० ३६ ।

॥ संवत् १६७२ वर्षे वैशाख सुदि ६. दिने सोमवारे श्रीजेसलमेरु-वास्तव्यराउलश्रीकल्याणदासजीविजयराज्ये कुंअरश्रीमनोहरदासजी......।

॥ ॐ ॥ संवत् १६७८ फाल्गुण सित ५ दिने श्रीजेसलमेरु-महादुर्गे ॥ महाराजाधिराजमहाराजमहाराउलश्रीकल्याणदासजी विजयि-राज्ये ॥ कुमारश्रीमनोहरदासजी...... ।

(जैसलमेर की दादावाड़ी के स्तंभ के लेख से)।

पूर्णचंद्र नाहर; जैन-लेख-संग्रह, तृतीय खंड, पृ० १२२-२३ ।

(क) डूंगरपुर से अनुमान दो मील दूर सूरपुर गांव के माधवराय के मंदिर में (जिसके निकट डूंगरपुर के राजाओं का पुराना दग्ध-स्थान है) एक लेख वि० सं० १६५० (अमांत) पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि ११ (ई० स० १५६४ ता० ७ जनवरी) का खुदा है, जिसमें महारावल सैंसमल (वि० सं० १६३७-१६६३=ई० स० १५८०-१६०६) के छोटे पुत्र सूरजमल को 'महाकुंवर' लिखा है[1]। डूंगरपुर की नौलखा वावड़ी की वि० सं० १६४३ (चैत्रादि १६४४) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १५८७ ता० ३ अप्रेल) की प्रशस्ति में उस (सैंसमल) के दस कुंवरों के नाम हैं। उनमें सूरजमल का नाम नहीं है, परन्तु बड़वे की ख्यात में उसका नाम दिया है, जिससे अनुमान होता है कि उसका जन्म वि० सं० १६४३ (ई० स० १५८७) के पीछे हुआ होगा।

(ख) डूंगरपुर के महारावल रामसिंह (वि० सं० १७५६-१७८६=ई० स० १७०२-१७३०) के दूसरे कुंवर वख़्तसिंह का एक ताम्रपत्र और कुछ सनदें हमारे देखने में आई हैं। उन सनदों पर उस (वख़्तसिंह) की मुद्रा

सं० १८०३ वर्षे शाके १६६८ प्रवर्त्तमाने मगशिर सुदि २ दिने सोमवारे महाराजराजराजेश्वरमहाराजाजीश्रीअभयसिंहजी कुंवरश्रीरामसिंहजी विजयराज्ये······।

(बीलाड़ा के जैनमंदिर के लेख से)।

पूर्णचंद नाहर; जैन-लेख-संग्रह, जि० १, पृ० २५०।

स्वस्ति (?) श्रीराजराजेश्वरमहाराजाश्रीवि[जै]सिंघजी कंवर फतेसिंघ······। सं० ॥ १८०६ रा माहा वद १······।

(फलोदी के गढ़ के लेख से)।

ज० बंगाल ए० सो०, न्यू सिरीज़, सं० १२ (ई० स० १९१६), पृ० १००।

(१) महाकुंअर श्रीसूरिजमलजी पधारीया हता संवत १६५० वरषे पोस वदि ११ लिखतं मुहता रूपसी सदारंग

(मूल शिलालेख की छाप से)।

भी लगी हुई है । इन दोनों में तथा सनद पर लगी हुई मुद्रा में उसे 'महा-कुंवर' लिखा है[1] ।

महारावल रामसिंह के उदयसिंह, बख़्तसिंह, उम्मेदसिंह और शिव-सिंह नामक चार पुत्र हुए, ऐसा बड़वे की ख्यात से पाया जाता है।

वागड़ के अतिरिक्त छोटे पुत्र को 'महाकुंवर' (महाकुमार) लिखने का प्रचार मालवे के परमारों में भी था, ऐसा उनके प्राचीन दानपत्रों से पाया जाता है। मालवे के परमार राजा यशोवर्मा के तीन पुत्र—जयवर्मा, अजयवर्मा और लक्ष्मीवर्मा—हुए[2] । लक्ष्मीवर्मा 'महाकुमार' कहलाया[3] । उसका पुत्र

---

(१) स्वस्त (स्ति) श्रीडुंगरपोर शुभस्थाने माहाकुंअरजी श्री वखत-सेंघजी······ ।

भोवरी गांव के (आषाढादि) वि० सं० १७७२ (चैत्रादि १७७३, अमांत) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि १० (ई० स० १७१६ ता० ४ जून) के जोशी सहदेव के नाम के ताम्रपत्र की छाप से ।

मा
हा कोउर
श्री वखत
सघजी

॥१॥ माहाकुओर श्रीवखतसेघजी वचनात गाम भचरडीआ ग्रामे समस्त लोकां जोग्य······ ।

वि० सं० १७७९ (अमांत) मार्गशीर्ष (पूर्णिमांत पौष) वदि ७ की सनद से।

(२) इंडियन ऐंटिक्केरी; जि० १६, पृ० ३४८ ।

(३) ······परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीयशोवर्म्मदेव-पादानुध्यातसमस्तप्रशस्तोपेतसमधिगतपंचमहाशब्दालंकारविराजमानमहा-कुमारश्रीलक्ष्मीवर्म्मदेवः ॥

(महाकुमार लक्ष्मीवर्मदेव का वि० सं० १२०० का उज्जैन से मिला हुआ ताम्रपत्र)।

इंडियन ऐंटिक्केरी; जि० १६, पृ० २५२ ।

हरिश्चंद्रवर्मा और पौत्र उदयवर्मा[1] भी 'महाकुमार' कहलाते थे, जैसा कि उनके ताम्रपत्रों से पाया जाता है।

(ग) नौगावां का वि० सं० १५८४ का लेख, जिसमें जमल (जगमाल) को 'महाकुंवर' लिखा है, एक खेत पर गड़ी हुई सुरह (सुरभि) है, जिसमें मास पक्ष और तिथि नहीं है।

(आषाढादि) वि० सं० १५८३ (चैत्रादि १५८४) चैत्र सुदि १४ (ई० स० १५२७ ता० १७ मार्च) को महारावल उदयसिंह खानवे के युद्ध में काम आया और जगमाल घायल हुआ, यह निश्चित है। फिर जगमाल (आषाढादि) वि० सं० १५८४ में कुंवर कैसे हो सकता है। इसके अतिरिक्त उसका साधुओं की मंडली में रहना और पृथ्वीराज से विरोध होकर वि० सं० १५८४

······समस्तप्रसस्तोपेतसमधिगतपञ्चमहाशब्दालंकारविराजमान-महाकुमारश्रीहरिश्चन्द्रदेवः नीलगिरिमण्डलेऽमडापद्रप्रतिजागरणके······ श्रीविक्रमकालातीत १२३५ पञ्चत्रिंशदधिकद्वादशशतसम्वत्सरान्तः पाति पौशवदि अमावास्यायां सञ्जातसूर्यपर्वणि चतुर्म्मुखमार्कण्डेश्वरदेवोपकण्ठे ································ ।

स्वहस्तोऽयं महाकुमारश्रीलक्ष्मीवर्मदेवसुतमहाकुमारश्रीहरिश्चन्द्रदेव-परमारकुलकमलवन्धोः ॥

(उक्त ताम्रपत्र की नकल से)।

(१) परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीमद्यशोवर्म्मदेवपादानु-ध्यातपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीमज्जयवर्म्मदेवराज्ये व्यतीते निजकरकृतकरवालप्रसादावाप्तनिजाधिपत्यसमस्तप्रशस्तोपेतसमधिगतपञ्च-महाशब्दालंकारविराजमानमहाकुमारश्रीमल्लक्ष्मीवर्म्मदेवपादानुध्यातसमस्त-प्रशस्तोपेतसमधिगतपंचमहाशब्दालंकारविराजमानमहाकुमारश्रीहरिश्चंद्रदेव-सुतश्रीमदुदयवर्म्मदेवोविजयोदयी ॥····· ।स्वहस्तोयं महाकुमारश्रीउदय-वर्म्मदेवस्य ॥

(उदयवर्मा का भोपाल का वि० सं० १२५६ का ताम्रपत्र)। इंडियन ऐंटिक्वेरी; जिल्द १६, पृ० २५४ और फ़ोटो।

में उसका वागड़ पर अधिकार न होना भी निश्चित है। अतएव उक्त लेख के कृत्रिम होने में कोई संदेह नहीं है।

ऊपर लिखी हुई बातों को दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि जगमाल के ज्येष्ठ कुंवर होने के प्रमाण, जो दीवान बांसवाड़ा ने भेजे हैं, सब निर्मूल हैं। बांसवाड़े ही से मिली हुई एक प्राचीन पुस्तक में वहां के डेढ़सौ वर्ष पूर्व तक के राजाओं की वंशावली और समय आदि लिखे हैं। उसमें भी जगमाल को स्पष्टतः उदयसिंह का छोटा पुत्र लिखा है। इसकी पुष्टि उदयपुर राज्य के बड़वा हरिराम के यहां की पुरानी ख्यात से भी होती है, जिसमें जगमाल को ही उदयसिंह का दूसरा पुत्र बतलाया है। उक्त ख्यात में जगमाल से महारावल भवानीसिंह तक की वंशावली दी हुई है, जो उस समय बांसवाड़ा राज्य को मान्य थी, इसलिए उस(भवानीसिंह)ने बड़वा हरिराम के पूर्वज वेणीराम आदि के नाम (आषा-ढादि) वि० सं० १८८१ (चैत्रादि १८८२) वैशाख सुदि ६ (ई० स० १८२५ ता० २७ अप्रेल) को परवाना भी कर दिया था, जो हरिराम के पास विद्यमान है।

बांसवाड़ा राज्य का डूंगरपुर से पृथक् होना

महारावल उदयसिंह ने अपनी जीवित अवस्था में ही वागड़ का पूर्वी भाग जगमाल को देकर उसे पृथक् कर दिया था; जिसके विषय में विद्वानों के नीचे लिखे अनुसार कथन हैं—

जी० आर० एबी मैके का लिखना है—"उदयसिंह ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में वागड़ को दो भागों में बांटकर माही नदी से पश्चिम का भाग ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज को और माही से पूर्व का भाग छोटे पुत्र जगमाल को दिया था[1]।"

ई० स० १८७९ के छपे हुए राजपूताना गैज़ेटियर में बांसवाड़ा राज्य के प्रसङ्ग में लिखा है—"उदयसिंह के दो पुत्र—बड़ा पृथ्वीराज और छोटा जगमाल—थे। उदयसिंह चित्तोड़ के राणा सांगा के साथ बादशाह बाबर से लड़ने को गया और खानवे की लड़ाई में मारा गया। उसकी मृत्यु के पीछे उसका राज्य उसके दो पुत्रों में विभक्त हुआ, जिनके वंशज वर्तमान डूंगर-

(१) एबी मैके; दि नेटिव चीफ़्स एण्ड देअर स्टेट्स (दूसरा संस्करण, ई० स० १८७८), भाग दूसरा, पृ० २५।

पुर और बांसवाड़ा राज्य के स्वामी हैं। ये विभाग शांतिपूर्वक हुए या बलपूर्वक, यह स्पष्ट नहीं है। जन-श्रुति यह है कि उदयसिंह ने अपने जीतेजी राज्य के दो विभाग कर दिये थे। यह भी कथन है कि जगमाल खानवे की लड़ाई में घायल हुआ था, परन्तु मरा हुआ माना गया और उसके दुरुस्त होकर लौटने पर वह कृत्रिम समझा जाकर उसको अपने प्रदेश पर अधिकार नहीं करने दिया। इसपर वह बांसवाड़ा के उत्तर (जगमेर) की पहाड़ियों में जा रहा और सेना एकत्रकर अपने पिता के देश पर आक्रमण करने लगा। अन्त में धार के राजा[1] की मध्यस्थता में वागड़ के दो विभाग होकर एक पृथ्वीराज व दूसरा जगमाल के लिए रहा तथा माही नदी दोनों राज्यों की सीमा हुई[2]।"

प्रसिद्ध विद्वान् डा० हैंडली ने लिखा है—"उदयसिंह ने अपनी जीवित अवस्था में, अपने राज्य को बांटकर माही नदी का पश्चिमी भाग ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज को तथा पूर्वी भाग छोटे पुत्र जगमाल को दे दिया था। तब से ही वागड़ में डूंगरपुर और बांसवाड़ा नामक दो रियासतें हुई[3]।"

महारावल उदयसिंह ने अपने जीतेजी राज्य के दो विभाग किये यह कथा निर्मूल नहीं है, क्योंकि बांसवाड़ा राज्य के चींच (छींछ) गांव के ब्रह्मा के मंदिर में खड़े हुए स्तम्भ के वि० सं० १५७७ कार्तिक सुदि २ (ई० स० १५२० ता० १३ अक्टोबर) के लेख में जगमाल को 'महारावल' लिखा है[4]। इससे पाया जाता है कि उक्त संवत् से पहले ही उदयसिंह ने अपने

(१) 'धार' से अभिप्राय 'मांडू' होना चाहिये।

(२) राजपूताना गैज़ेटियर के अन्तर्गत बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर, जि० १, पृ० १०८-९ (ई० स० १८७९ का संस्करण)।

(३) डा० हैंडली; दि रूलर्स ऑव् इंडिया एण्ड दि चीफ़्स ऑव् राजपूताना; पृ० २९।

(४) संवत् १५७७ वरषे (वर्षे) काती सुद (कार्तिक सुदि) २ दने (दिने) महारावलश्रीजगमालवचनात…………… ।

(मूल लेख की छाप से)।

रा० म्यू० अजमेर की ई० स० १९१७ की रिपोर्ट, पृ० ३।

राज्य का पूर्वी हिस्सा, जो इस समय बांसवाड़ा राज्य कहलाता है, जगमाल को दे दिया था। इस कथन की पुष्टि फ़ारसी तवारीख़ 'मिराते सिकंदरी' से भी होती है। उसमें लिखा है-"वागड़ का राजा (उदयसिंह) राणा सांगा (संग्रामसिंह, प्रथम) से मिल गया था, इसलिए हि० सन् ९२७ (वि० सं० १५७७=ई० स० १५२०) में गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह (दूसरा) ने उसपर सेना भेजी, जिसने उसकी राजधानी डूंगरपुर को जलाकर ख़ाक कर दिया और उसके देश को बरबाद करना आरंभ किया। फिर वह सेना सागवाड़े होती हुई बांसवाड़े की तरफ़ चली। शुजाउल्मुल्क और सफ़दरख़ां, मुजाहिदुल्मुल्क के साथ हरावल में रहे, जिनके साथ दो सौ सवार थे। जब उन्हें यह सूचना मिली कि बांसवाड़े का राजा दो कोस पर है, तब वे तुरन्त रवाना हुए। मुसलमानों को थोड़ी संख्या में देखकर राजपूतों ने उनपर हमला किया। उन (राजपूतों) की संख्या दसगुनी थी तो भी मुसलमानों की विजय हुई[1]।"

'मिराते सिकंदरी' के उपर्युक्त अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से भी स्पष्ट है कि उस समय डूंगरपुर का राजा तो उदयसिंह था और बांसवाड़े का राजा कोई अन्य, जिसका नाम नहीं दिया, परन्तु यह घटना उसी संवत् की है, जिस संवत् का उपर्युक्त चींच गांव का लेख है और जिसमें जगमाल को महारावल लिखा है। इसलिए उस समय बांसवाड़े का राजा जगमाल ही होना चाहिये अर्थात् उक्त संवत् से पूर्व जगमाल को उदयसिंह ने बांसवाड़े का स्वामी बना दिया था।

अब तक के शोध से ज्ञात होता है कि वि० सं० १५७१ (ई० स० १५१४) के पीछे किसी समय महारावल उदयसिंह ने अपने राज्य के दो विभागकर माही नदी से पश्चिम का हिस्सा, जिसकी राजधानी डूंगरपुर है, कुंवर पृथ्वीराज के लिए रक्खा और पूर्वी हिस्सा, जिसकी राजधानी बांसवाड़ा है, जगमाल को दिया। वि० सं० १५७१ (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि २ (ई० स० १५१४ ता० ४ नवम्बर) शनिवार

(१) बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात, पृ० २७२।

के नूतनपुर (नौगावां, बांसवाड़ा राज्य) के लेख में उदयसिंह को ही राजा लिखा है[1] और किसी कुंवर का नाम नहीं दिया। इससे निश्चित है कि उस समय तक वागड़ के दो विभाग नहीं हुए थे। वि० सं० १५७५ (अमांत) पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि १२ (ई० स० १५१८ ता० २९ दिसम्बर) के सुन्नणपुर गांव (बांसवाड़ा राज्य) के खेत पर गड़ी हुई एक सुरह में महारावल उदयसिंह के साथ 'महाकुंवर' (महाराजकुमार) जगमाल का नाम है[2]। इसी प्रकार पश्चिमी-विभाग अर्थात् राजधानी डूंगरपुर के महाकालेश्वर के मंदिर के (आषाढादि) वि० सं० १५८१ (चैत्रादि १५८२) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १५२५ ता० २७ अप्रेल) गुरुवार के लेख में, जो उदयसिंह की मृत्यु से केवल दो वर्ष पूर्व का ही है, महारावल उदयसिंह के साथ कुमार पृथ्वीराज का नाम है[3]। उपर्युक्त दोनों लेखों से अनुमान होता है कि वि० सं० १५७५ (ई० स० १५१८) के लगभग महारावल उदयसिंह ने जगमाल को वागड़ का पूर्वी हिस्सा देकर पृथक् कर दिया था।

तदनन्तर जगमाल बांसवाड़े में रहने लगा और अपने पिता की जीवित अवस्था में ही अपने को उस प्रदेश का स्वामी मानने लगा, जैसा कि चींच गांव के लेख और 'मिराते सिकंदरी' से ऊपर बतलाया जा चुका है। अपनी वंशपरंपरा के विरुद्ध महारावल उदयसिंह ने ऐसा क्यों किया, इसका कारण कुछ भी लिखा नहीं मिलता। संभव है कि जगमाल की माता पर अधिक प्रेम होने के कारण उस(उदयसिंह)को ऐसा करना पड़ा

(१) संवत् १५७१ वर्षे कार्तिक वदी (दि) २ शनौ वाग्वरदेशे राजाधिराजराउलश्रीउदयसिंहविजयराज्ये नूतनपुरे······ ।

(बांसवाड़ा राज्य के नौगांवां गांव के जैनमंदिर की प्रशस्ति से)।

(२) देखो ऊपर पृ० ५४।

(३) संवत् १५८१ वर्षे वैशाखमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ गुरुदिने अद्येह वागडदेशे डुंगरपुरशुभस्थाने महाराजाधिराजराउलश्री-उदयसिंहविजयराज्ये कुमारश्रीपृथ्वीराजजी तस्य······ ।

(मूल लेख की छाप से)।

हो। राजा का किसी राणी पर अधिक प्रेम होने के कारण अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य से वंचित रखकर प्रेमपात्री राणी के कुंवर को छोटा होने पर भी अपने सारे राज्य तक का मालिक बना देने के उदाहरण राजपूताने के इतिहास में भरे पड़े हैं।

वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में खानवे के युद्ध में महारावल उदयसिंह के मारे जाने और जगमाल के घायल होकर लौटने पर पृथ्वीराज ने बांसवाड़े का इलाक़ा जगमाल से छीन लिया, जिसपर बड़ी लड़ाइयां हुईं और अन्त में पृथ्वीराज को माही नदी के पूर्व का इलाक़ा पीछा जगमाल को देना पड़ा, जिसका विस्तृत वर्णन आगे के अध्याय में किया जायगा।

चौथा अध्याय

महारावल जगमाल से समरसिंह तक

जगमाल

अपने जीवित काल में महारावल उदयसिंह ने वागड़ का पूर्वी भाग छोटे पुत्र जगमाल को दे दिया था, जिससे उस (उदयसिंह) का ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज अप्रसन्न रहता था। जब खानवे के युद्ध में (आषाढादि) वि० सं० १५८३ (चैत्रादि १५८४=ई० स० १५२७) में उदयसिंह की मृत्यु हो गई तब पृथ्वीराज ने डूंगरपुर की गद्दी पर बैठकर वागड़ के पूर्वी भाग पर भी अधिकार कर लिया। युद्ध में लगे हुए घावों से स्वस्थ होकर जब जगमाल वागड़ में आया तो पृथ्वीराज ने उसको वहां से निकालने के लिए अपने सरदारों को भेजा, जिन्होंने उसको वहां से निकाल दिया। इसपर जगमाल पहाड़ों में जा रहा और कुछ सरदार उससे जा मिले। फलतः पृथ्वीराज और जगमाल में लड़ाई-झगड़ा होने लगा। अन्त में पृथ्वीराज को वागड़ का पूर्वी भाग पीछा जगमाल को देना पड़ा। इस विषय में मुंहणोत नैणसी की ख्यात तथा फ़ारसी तवारीख़ों में नीचे लिखे हुए वर्णन मिलते हैं—

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह का वागड़ का आधा भाग पुनः जगमाल को दिलाना

(१) नैणसी ने लिखा है—"रावल उदयसिंह के पृथ्वीराज और जगमाल दो पुत्र हुए। पिता का देहांत होने पर पृथ्वीराज डूंगरपुर के सिंहासन पर बैठा और जगमाल बाग़ी हो गया। फिर उस (पृथ्वीराज) ने अपने सरदार वागड़िये चौहान मेरा और रावत परवत लोलाड़िये को सेना सहित इसलिए भेजा कि वे जगमाल को राज्य से बाहर निकाल आवें। उन्होंने जाकर उसकी गाड़ियां लूटीं। अपने कई राजपूतों के मारे जाने से जगमाल

पराजित होकर भागा और पहाड़ों में जा रहा। खोई हुई भूमि को पीछी लेकर जब वे दोनों सरदार डूंगरपुर पहुंचे, उस समय उन्होंने यह समझा था कि हम बड़ा काम कर आये हैं, सो हमारी मान-मर्यादा और जागीरों में वृद्धि होगी, परंतु रावल पृथ्वीराज का एक खवास, जो सेना में सम्मिलित था, पहले से घर पहुंच गया और उसने एकान्त में रावल को कहा कि ये लोग मरने-मारने में तो कुछ समझते नहीं। जगमाल ऐसी घात में आ गया था कि मार लिया जाता, परंतु चौहान मेरा व रावत परवत लोलाड़िया ने उसे छोड़ दिया। रावल ने यह झूठी बात सच्ची समझली और जब वे डूंगरपुर आये तो आप महल के भीतर जा बैठा और उनका मुजरा तक स्वीकार न किया। इसपर वे खिन्न होकर घर चले गये तो पीछे से रावल ने अपने विश्वासपात्र मनुष्य को भेजकर उन्हें बहुत उपालंभ दिलाया और कहलाया कि तुम नमकहरामी हो। जगमाल को तुमने जाने दिया, यह बहुत बुरा किया, अब मैं तुमको रखना नहीं चाहता। ठाकुरों ने कहा कि हमने तो तन-मन से सेवा की है, यदि रावलजी उसका मूल्य न समझें तो उनकी इच्छा। फिर उस हजूरी ने उनको रावल के भेजे हुए पान के बीड़े (सीख के) दिये, जिनको लेकर वे क्रोधित हो तत्काल ही वहां से चल दिये और सीधे उन पर्वतों में पहुंचे, जहां जगमाल रहता था। जगमाल के डेरे से एक कोस दूर वे ठहर गये और अपने भरोसे के प्रतिष्ठित पुरुषों को जगमाल के पास भेजकर कहलाया कि तुम्हारे दिन फिरे हैं, यदि भूमि लेने की इच्छा हो तो शीघ्र हमसे आकर मिलो। जब जगमाल को उनके कथन पर विश्वास न हुआ तो शपथ-द्वारा उसका संशय निवृत कर दिया गया। फिर वह उनके साथ मेरा व परवत के पास गया जहां सब तरह के क़ौल-क़रार हुए। तत्पश्चात् उन सरदारों ने अपने भाई बंधुओं को भी बुला लिया और वे सब मिलकर देश में उपद्रव मचाने लगे। जगह-जगह पर रावल पृथ्वीराज के थानों को मारकर चार-पांच मास में उन्होंने राज के बड़े विभाग को वीरान कर दिया। तब रावल घबराया और उसने अपने मंत्रियों को बुलाकर सलाह ली, तो वे बोले कि हम कुछ नहीं जानते, जिस मनुष्य ने आपसे

बातचीत कर सरदारों को निकलवाया है, उसी से पूछिये। रावल कहने लगा कि जो होना था सो तो हुआ, बिना विचारे जो काम किया, उसका फल मैंने पाया। अब उचित समझो वैसा करो, मुझसे तो राज्य की रक्षा नहीं हो सकती। इसपर मंत्री लोग मेरा, परवत और जगमाल के पास गये और कहा कि अब आन मिलो, जो तुम कहोगे वही करेंगे। जितनी तुम्हारी इच्छा हो उतनी भूमि जगमाल को दे दी जायगी और तुम्हारी जागीर भी बढ़ा दी जायगी। उन्होंने उत्तर दिया कि अब तो मामला ही दूसरा है। यदि तुमको संधि करना है तो इस शर्त पर हो सकती है कि वागड़ के दो बराबर विभाग कर दिये जावें और दो रावल होवें। अन्य किसी भी प्रकार संधि होने की नहीं। इसपर मंत्री रावल पृथ्वीराज के पास गये और सारा हाल कह सुनाया। तब रावल बोला कि क्या करना चाहिये? मंत्रियों ने कहा, यह बड़ी बात है, आज से पहले ऐसा हुआ नहीं। यह बात केवल हमारे विचारने योग्य नहीं, राज्य के बड़े सरदारों और अन्य विश्वस्त सेवकों से भी इसमें सलाह लीजिये तथा स्वयं आप भी दस पांच दिन विचारिये, ताकि पीछे किसी को उपालम्भ देना न पड़े। मंत्रियों के मतानुसार रावल ने सबको पूछा तो यही उत्तर मिला कि बात क़ाबू से बाहर हो गई, जिस तरह बने परस्पर मेल कर लेना ही उचित है। तब रावल ने अपने प्रधानों को कह दिया कि जितना उचित समझो, उतना जगमाल को देकर संधि कर आओ। मंत्री पीछे मेरा के पास गये और वागड़ के ३५०० गांवों में से आधे गांव जगमाल को देकर मेल कर लिया। उसी समय से वागड़ में दो रावल हो गये और बांसवाड़े के स्वामी की बात ऊंची रही[१]।"

(२) 'तारीख़ फ़िरिश्ता' में लिखा है—"जब गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने डूंगरपुर और बांसवाड़े की तरफ़ जाकर बहुत लूट-मार मचाई, तब उस प्रदेश का राजा परशुराम (? पृथ्वीराज) लाचार होकर सुलतान की सेवा में हाज़िर हो गया। पृथ्वीराज का भाई जग्गा (जगमाल),

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जिल्द १, पृ० ८६-८।

जो पहाड़ों में भागा फिरता था, निराश होकर चित्तोड़ के राणा रत्नसिंह के पास चला गया, ताकि उसके द्वारा अपराध क्षमा कराकर सुलतान की सेवा में उपस्थित हो। बहादुरशाह शिकार खेलता हुआ बांसवाड़े में आकर ठहरा, उस समय राणा सांगा के बेटे रत्नसिंह ने उसके पास वकील भेजकर जग्गा के अपराधों की क्षमा चाही। सुलतान ने उसे स्वीकार कर जग्गा को अपनी सेवा में बुला लिया और वागड़ का तमाम इलाक़ा पृथ्वीराज तथा उसके भाई जग्गा को आधा-आधा बांट दिया। फिर वह (बहादुरशाह) कुछ दिन शिकार खेलकर मालवे की तरफ़ चला गया[1]।"

(२) 'मिराते सिकंदरी' में लिखा है—"हि० स० ९३७ (वि० सं० १५८७=ई० स० १५३०) में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने वागड़ पर चढ़ाई की और खानपुरे गांव से, जो माहिंद्री (माही) नदी के किनारे पर है, उसने खानेआज़म आसफ़खां और खुदावंदखां को सेना के साथ आगे रवाना किया। एक बड़ी सेना सहित ता० २० मोहर्रम (आश्विन वदि ७= ता० १३ सितम्बर) को वह स्वयं खंभात पहुंचा और वहां से नावों के द्वारा दीव बंदर को गया। उसने वहां का प्रबंध मलिक तोगाई को सौंपकर वहां से प्रस्थान किया और ता० ५ सफ़र (आश्विन सुदि ७=ता० २८ सितम्बर) को वह पीछा खंभात पहुंचा। वहां से वह महमूदाबाद गया, जहां फ़तहखां, कुतुबखां और उमरखां लोदी ने उसका स्वागत किया। फिर वह वहां से लौटकर मोड़ासे में अपनी सेना से आ मिला और वागड़ की तरफ़ रवाना हुआ। उधर डूंगरपुर का राजा पृथ्वीराज सीतल गांव में सुलतान के पास आकर उपस्थित हुआ। वहां से सुलतान बांसवाड़े की तरफ़ जाने लगा तो करखी (करजी) के घाटे में चित्तोड़ के राणा रत्नसिंह के वकील डूंगरसी और आजराय ने उपस्थित होकर नज़राना किया। फिर सुलतान वागड़ का

---

(१) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० ११२-१३। जरनल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल (ई० स० १८९७), जि० ६६, भाग १, पृ० ११५-१८।

आधा हिस्सा पृथ्वीराज को और आधा जगमाल को दिलाकर वहां से लौटा[1]।"

(४) 'तबक़ाते अकबरी' का कथन है—"सुलतान की उस (बागड़ की) चढ़ाई का कारण सरहद्दी छोटे-छोटे राजाओं को सज़ा देकर दुरुस्ती पर लाने का था। जहां-जहां वह विजय करता गया, वहां-वहां उसने अपने थाने बिठा दिये। जब डूंगरपुर के राजा ने देखा कि अब बचाव की कोई आशा नहीं है, तब अधीनता स्वीकार कर सुलह कर ली। राजा का भाई जग्गा (जगमाल) कई विश्वासपात्र आदमियों सहित भागकर पहले तो पहाड़ों में जा रहा, फिर चित्तोड़ के राणा रत्नसिंह की शरण गया। राणा की सिफ़ारिश से सुलतान ने बागड़ का आधा राज्य जग्गा को दे दिया[2]।"

(५) 'तारीख़े अलफ़ी' का बयान है—"राणा ने अपने वकील सुलतान (बहादुरशाह) के पास भेजे, जिसके तीन कारण थे। पहला—सुलतान महमूद (मालवे का) राणा से बिगड़ा हुआ था; दूसरा—मालवे का वह इलाक़ा, जो राणा ने दबा लिया था, उसे वह पीछा लेना चाहता था; तीसरा—राजपूत सिलहदी से, जो राणा से जा मिला था, वह (सुलतान) नाराज़ था; महमूद मालवी का इरादा था कि सिवास के हाकिम सिकंदरखां और सिलहदी दोनों को मरवा डालें, इसलिए वे दोनों भागकर राणा रत्नसिंह की शरण में जा रहे थे। सिकंदरखां तथा सिलहदी का पुत्र भूपत बहादुरशाह के पास गये और सिलहदी को लेकर राणा रत्नसिंह भी सुलतान (बहादुरशाह) से जाकर मिला। राणा तो पीछा लौट गया, परंतु सिकंदरखां, सिलहदी, ईडर का राजा दलपतराय, राणा के वकील और डूंगरपुर का राजा उस समय सुलतान के साथ रहे, जब कि उसने मांडू फ़तह किया[3]।"

(१) बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात (मिराते सिकंदरी), पृ० ३४६-४८। जरनल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल (ई० स० १८६७), भाग १, पृ० १६६-६६।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑव् गुजरात, पृ० ३४७, टिप्पण ३।

(३) वही, पृ० ३४८, टिप्पण १।

उपर्युक्त पुस्तकों में से नैणसी की ख्यात में ही पुनः वागड़ राज्य को बांटने का सविस्तर उल्लेख है। फ़ारसी तवारीख़ों में जगमाल के पहाड़ों में भाग जाने और मेवाड़ के महाराणा रत्नसिंह की सिफ़ारिश से गुजरात के सुलतान बहादुरशाह-द्वारा वागड़ को बंटवारा होने का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि जब जगमाल को पृथ्वीराज ने बांसवाड़े में न रहने दिया और उसकी भूमि छीन ली, तब वह पहाड़ों में जाकर रहने लगा। जिन सरदारों ने पृथ्वीराज की आज्ञा से जगमाल को एक बार निकाल दिया था, उनका पृथ्वीराज ने अपमान किया, जिसपर वे पृथ्वीराज से नाराज़ होकर जगमाल से जा मिले। फिर उन्होंने कितने एक और सरदारों को अपने शामिल कर लिया, जिससे जगमाल का पक्ष प्रबल हो गया और उन्होंने पृथ्वीराज को ऐसा तङ्ग किया कि उसे जगमाल को पहले के अनुसार वागड़ का आधा राज्य देने के लिए विवश होना पड़ा। इसी बीच गुजरात का सुलतान बहादुरशाह भी वागड़ में आ पहुंचा। तब पृथ्वीराज उसके पास हाज़िर होकर अपना पक्ष प्रबल करने का यत्न करने लगा। उस समय महाराणा रत्नसिंह ने इन दोनों भाइयों के बीच का झगड़ा मिटा देने के लिए अपने वकील भेजकर सुलतान बहादुरशाह से सिफ़ारिश की। बात तो पहले तय हो ही चुकी थी, तदनुसार बहादुरशाह ने वागड़ का आधा-आधा राज्य, फिर वि० सं० १५८७ (ई० स० १५३०) में पृथ्वीराज और जगमाल के बीच बंटवाकर इस झगड़े का अंत किया। पृथ्वीराज और जगमाल के बीच यह विरोध अनुमान दो वर्ष से अधिक समय तक रहना पाया जाता है। वागड़ के पीछे दो विभाग होने पर पृथ्वीराज अपनी पुरानी राजधानी डूंगरपुर में रहा और जगमाल बांसवाड़े में जाकर रहने लगा। पहाड़ों में रहते समय उसने वहां एक गढ़ भी बनाया था, जो जगमेरु कहलाता है। उसके खंडहर अब तक विद्यमान हैं। वहां एक लेख हनुमान की मूर्ति के पीछे एक स्तम्भ पर खुदा है, जिसमें वि० सं० १५८५ (ई० स० १५२८) में महारावल जगमाल के वहां रहने और उस स्थान को बनवाने का उल्लेख है। यह लेख पुराना नहीं, किन्तु

उस स्थान का महत्त्व बतलाने के लिए नया खुदवाकर खड़ा किया गया है[1]।

वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में बूंदी के हाड़ा राव सूरजमल को मारकर उसके हाथ से महाराणा रत्नसिंह भी मारा गया और मेवाड़ के सिंहासन पर उसका छोटा भाई विक्रमादित्य बैठा; जो चित्तोड़ जैसे विशाल-राज्य के शासन के लिए बिल्कुल अयोग्य था। उसके समय में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की दो बार चित्तोड़ पर चढ़ाइयां हुईं। दूसरी चढ़ाई में बहुत समय तक भीषण युद्ध होने के बाद दुर्ग राजपूतों के हाथ से निकलकर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। उन्हीं दिनों दिल्ली के मुग़ल बादशाह हुमायूं ने बहादुरशाह पर चढ़ाई कर दी, जिसमें बहादुरशाह की हार हुई। चित्तोड़ पर अधिकार करने का यह अच्छा अवसर देखकर राजपूतों ने मुसलमानों को चित्तोड़ से निकाल दिया और दुर्ग पर पीछा अधिकार कर लिया। इतने पर भी विक्रमादित्य ने अपना आचरण न सुधारा और सरदारों का अपमान करने लगा, जिससे वे सब नाराज़ होकर अपने अपने ठिकानों को चले गये। फिर महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के बड़े भाई पृथ्वीराज के दासी-पुत्र बणवीर (जो विक्रमादित्य का मुसाहिब था) ने उस(विक्रमादित्य)को एक दिन रात्रि के समय तलवार से मार डाला। यही नहीं, उसने महाराणा संग्रामसिंह के वंश को बिलकुल ही नष्ट करने के विचार से चित्तोड़ के सिंहासन के हक़दार उदयसिंह (जो विक्रमादित्य का छोटा भाई था) को मारकर निष्कंटक राज्य करना चाहा, परन्तु धाय पन्ना ने बणवीर के पहुंचने से पूर्व ही सावधानी-पूर्वक उसको वहां से दुर्ग के बाहर निकाल दिया। राज-मद में डूबा हुआ बणवीर उदयसिंह के महल में पहुंचा और उसने धाय से

बणवीर को निकालकर चित्तोड़ दिलाने में महारावल का महाराणा उदयसिंह की सेना में सम्मिलित होना

(१) रायां राय महाराजाधिराज महारावलजी श्रीजगमालसिंहजी ए आ जगमेरु ऊपर निवास करी आ देश सर करयो संवत् १५८५।
(मूल लेख की छाप से)।

उस(उदयसिंह)के लिए पूछा। धाय ने अपने सोये हुए पुत्र की तरफ़, जो उदयसिंह के समान वय का ही था, इशारा किया, जिसको मारकर वह चलता बना। अपने पुत्र की मृत्यु से पन्ना तनिक विचलित न हुई और शीघ्र ही अपने पुत्र का मृत-शरीर लेकर संकेत के अनुसार दुर्ग के बाहर चली गई। अपने पुत्र का दाह-संस्कार कर वह उदयसिंह को लेकर देवलिया और डूंगरपुर होती हुई कुंभलगढ़ पहुंची, जहां उदयसिंह को उसने क़िलेदार आशाशाह देपुरा (माहेश्वरी महाजन) को सौंप दिया[1]।

तदनन्तर उदयसिंह के सही सलामत निकल जाने का समाचार मिलने पर मेवाड़ के बड़े-बड़े सरदार कुंभलगढ़ पहुंचे और वहीं वि० सं० १५६४ (ई० स० १५३७) में उन्होंने उदयसिंह को गद्दी पर बैठाकर अपना स्वामी माना। इसके पीछे उन्होंने चित्तोड़ से वणवीर को निकालने के लिए चढ़ाई की तैयारी की तथा महारावल जगमाल को भी अपनी सेना लेकर आने के लिए लिखा। इसपर महारावल जगमाल बांसवाड़े से अपने राजपूतों को लेकर मेवाड़ की सेना में सम्मिलित हुआ और वणवीर को मेवाड़ से निकालने में सदा महाराणा की सेना के साथ रहा[2]।

महारावल की मृत्यु और सन्तति

ख्यातों में महारावल जगमाल का मृत्यु-संवत् नहीं मिलता, परन्तु उसके उत्तराधिकारी जयसिंह का एक ख्यात में वि० सं० १५९६ (ई० स० १५३९) के मार्गशीर्ष में व दूसरी में वि० सं० १५९८ (ई० स० १५४१) में बांसवाड़े का राजा होना लिखा मिलता है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि उस(जगमाल)का सबसे अन्तिम लेख वि० सं० १६०१ भाद्रपद सुदि ६ (ई० स० १५४४ ता० २८ अगस्त) रविवार का मिला है, जिससे यह निश्चित् है कि वह उक्त संवत् तक विद्यमान था और उसके बाद किसी समय उसका देहान्त हुआ होगा।

(१) वीरविनोद; भाग दूसरा, पृ० ६१। मेरा; राजपूताने का इतिहास (प्रथम संस्करण) जिल्द २, पृ० ७१३।

(२) वीरविनोद; भाग दूसरा, पृ० ६१।

उसके किशनसिंह (कानड़दे) और जयसिंह[1] नामक दो पुत्र हुए, जिनमें से जयसिंह उस(जगमाल)के पीछे बांसवाड़े का स्वामी हुआ।

महारावल के समय के शिलालेख

महारावल जगमाल के समय के वि० सं० १५७५-१६०१ (ई० स० १५१८-१५४४) तक के लेख मिले हैं[2], जिनमें से कुछ में संवत् आदि नहीं हैं और कितनेक में संवत् संशययुक्त हैं। हमने केवल उन लेखों को ग्रहण किया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक माने जा सकते हैं। उसके समय के मिलनेवाले वि० सं०

---

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात में जयसिंह को महारावल जगमाल का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है और किशनसिंह (कानड़दे) को छोटा, किन्तु मुंहणोत नैणसी की ख्यात (हस्तलिखित; पत्र २१, पृष्ठ २) में जगमाल के पुत्र किशनसिंह तथा उस-(किशनसिंह)के पुत्र के लिए लिखा है कि उनको राज्य नहीं मिला। इसका यही आशय हो सकता है कि किशनसिंह, जगमाल का ज्येष्ठ पुत्र था। यदि वह छोटा पुत्र होता तो नैणसी को उपर्युक्त वाक्य लिखने की आवश्यकता ही क्या थी? राजगद्दी प्रायः ज्येष्ठ पुत्र को ही मिलती है और छोटे पुत्र सामंत बनकर निर्वाह करते हैं। नैणसी की अनेक वंशों की विस्तृत वंशावलियों में छोटे पुत्रों के लिए अन्यत्र कहीं ऐसा नहीं लिखा कि वे गद्दी पर नहीं बैठे। किशनसिंह और उसके पुत्र को राज्य न मिलने का कारण यही अनुमान किया जासकता है कि जगमाल का प्रेम अपनी राणी लाछबाई पर अधिक रहा होगा, जिससे उसने उसके पुत्र जयसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया हो।

(२) बांसवाड़ा राज्य से आई हुई ताम्रपत्रों की नकलों में महारावल जगमाल से लगाकर पृथ्वीसिंह तक 'श्रीराम' शब्द (राजा का निज हस्ताक्षित) लिखा हुआ मिलता है और राणियों के ताम्रपत्रों में 'स्वस्तिक चिह्न'। ये 'श्रीराम' और 'स्वस्तिक चिह्न,' ताम्र-पत्र के ऊपरी भाग में खाली जगह के बीचोबीच खोदे जाते थे। महारावल उदयसिंह के समय के वि० सं० १७८६ (ई० स० १७२६) के पीछे के ताम्रपत्रों में 'श्रीराम' शब्द न होकर 'सही' शब्द मिलता है। ऐसी स्थिति में ख्यात का ऊपर पृ० ४७ में लिखा हुआ कथन कि महारावल जगमाल के समय से ही वहां से दी जानेवाली सनदों में 'टट सही टट' लिखा जाने लगा, मिथ्या मालूम होता है। ऐसे ही उक्त ख्यात का यह कथन कि डूंगरपुर के लेखों में वागड़ का बंटवारा होने के बाद 'सही' शब्द लिखा जाने लगा, कल्पित है; क्योंकि वहां से प्राप्त महारावल पृथ्वीराज से लगाकर पिछले ताम्रपत्रों में प्रायः 'सही' शब्द ही लिखा मिलता है।

१५७५[1], १५७७[2] और १५८४[3] (ई० स० १५१८, १५२० और १५२७) के तीन शिलालेखों का वर्णन पहले हो चुका है। शेष दो शिलालेखों का, जो ठीक हैं, नीचे उल्लेख किया जाता है—

(१) चींच गांव के ब्रह्मा की मूर्ति के चरणों का (आषाढादि) वि० सं० १५६[३] (चैत्रादि १५६४, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि १ (ई० स० १५३७ ता० २६ अप्रेल) गुरुवार का लेख[4]।

(२) छोटी पाड़ी गांव के समीप कानोर माता के मस्तक के पास का वि० सं० १६०१ भाद्रपद सुदि ६ (ई० स० १५४४ ता० २४ अगस्त) रविवार का लेख[5]।

महारावल जगमाल के समय का और कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होता। ख्यात में लिखा है कि उसने वांसवाड़ा में भीलेश्वर महादेव का मन्दिर और फूल-महल बनवाये। उसकी राणी लाछकुंवरी ने नीलकंठ महादेव के पंचायतन-मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया[6] तथा तेजपुर गांव के पास एक तालाब भी बनवाया था, जो बाई का तालाब कहलाता है।

महारावल के समय के अन्य कार्य

---

(१) देखो ऊपर पृ० ५४।

(२) वही; पृ० ६०।

(३) वही; पृ० ५८।

(४) स्वस्ति श्रीनृपविक्रमार्कसमयातीत संवत् १५९[३]वर्षे वैशाखवदि १ गुरौ अनुराधानक्षत्रे शिवनामयोगे वैयागड़देशे राजश्री-रावलजगमालजीविजयराज्ये...... ।

(मूल लेख से)।

(५) संवत् १६०१ वर्षे भादवासुदि ६ रवे......श्रीजगमालजी .... ।

(मूल लेख की छाप से)।

(६) यह शिवालय राजधानी बांसवाड़ा से कुछ मील दूर विठ्ठलदेव के समीप बना हुआ है। वहां महारावल जगमाल की राणी लाछबाई-द्वारा उक्त मंदिर के

जयसिंह

महारावल जगमाल का देहांत होने पर उसका छोटा पुत्र जयसिंह, जो उस(जगमाल)की राठोड़ राणी लाछबाई से उत्पन्न हुआ था, वि० सं० १६०१ (ई० स० १५४४) के पश्चात् किसी वर्ष राजगद्दी पर बैठा।

उस(जयसिंह)ने थोड़े ही वर्ष राज्य किया। शिलालेखों और ख्यातों में उसके सम्बन्ध का कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता। उसके उत्तराधिकारी प्रतापसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १६०७ (ई० स० १५५०) का मिला है[1] और वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५६) के लगभग महाराणा उदयसिंह के साथ महारावल प्रतापसिंह का हाजीखां से युद्ध के लिए जाने का उल्लेख मिलता है[2]; अतः वि० सं० १६०७ (ई० स० १५५०) के पूर्व किसी समय जयसिंह की मृत्यु हुई होगी[3]।

जीर्णोद्धार होने का एक लेख स्तंभ पर खुदा है, जो नीचे लिखे अनुसार है, परन्तु उसमें संवत् और मिती नहीं है—

···महाराउलश्रीजगमालदेसीघजीग्रहे भारजा[भार्या] बाई श्रीलाशनामनी[म्नी] अत्र पंचप्रासाद उध्रते······ ।

(मूल लेख से)।

रा० म्यू० अजमेर की ई० १९३० की रिपोर्ट; पृष्ठ ४, संख्या ८।

(१) संवत् १६०७ वरषे(र्षे) आषाढसुदि ११ रविवासरे रावलजी परतापजीआदेसात्··················· ।

(बांसवाड़ा राज्य के पारोदरा गांव के लेख की नकल से)।

(२) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें, संख्या १२९९। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा उदयसिंहजी का जीवनचरित्र, पृ० ६३।

(३) बांसवाड़ा से मिली हुई एक हस्तलिखित पुस्तक में बांसवाड़ा के राजाओं की वंशावली में जयसिंह का वि० सं० १५९८ तक राज्य करना लिखा है, जो ठीक नहीं है; क्योंकि वि० सं० १६०१ (ई० स० १५४४ तक) के तो महारावल जगमाल के शिलालेख मिल चुके हैं।

प्रतापसिंह

महारावल प्रतापसिंह अपने पिता की मृत्यु होने पर वि० सं० १६०७ (ई० स० १५५०) के पूर्व किसी समय वांसवाड़े का स्वामी हुआ।

वि० सं० १६९० (ई० स० १६३३) के आसपास गंगाराम कवि ने देवलिया (प्रतापगढ़) के स्वामी रावत हरिसिंह की प्रशंसा में 'हरिभूषण-काव्य' वनाया, जिसमें लिखा है—"आसकरण (डूंगरपुर का स्वामी) और वांसवाड़ा के स्वामी प्रतापसिंह के बीच युद्ध होने पर देवगिरि (देवलिया) का राजा बीका वांसवाड़ावालों की सहायतार्थ गया। माही नदी के तट पर युद्ध हुआ, जिसमें चौहान वीर भालों से लड़े। उस युद्ध में बीका ने काठियावाड़ी घोड़े पर बैठकर शत्रु-दल का संहार किया और अन्त में रावल आसकरण परास्त होकर लौटा तथा प्रतापसिंह बांसवाड़े पर सुखपूर्वक राज्य करने लगा[1]।"

डूंगरपुर के स्वामी आसकरण से युद्ध

(१) अभूदथ क्षत्रकुलाभिमानी वीकाभिधेयः किल तस्य सूनुः।
यत्खड्गधाराऽभिहतोऽरिवर्गो महीतटे खेलति भूतवर्गैः ॥१॥
पुराऽसकर्णः किलरावलोऽभूत्प्रतापसिंहेन युयोध यत्र।
वंशालयाधीश्वरधर्मबन्धुः समागतो देवगिरेर्महीशः ॥ ३ ॥
महाहवं तत्र तयोर्बभूव महीतटेषु प्रसभं समेषु।
परस्परं प्रासफलैः प्रजघ्नुश्चौहानभूपा रणगीतगीताः ॥ ४ ॥
समुच्छलत्कच्छतुरङ्गमस्थः स्फुरत्स्फुलिङ्गावलिखड्गघातैः।
त्रुट्यत्तनुत्रान् लसदश्ववारान् रणेऽरिवीरानकरोत्सवीकः ॥५॥
भिन्नाः पतन्तः करवालिकाभिः समुच्छलद्रक्तचलत्प्रवाहाः।
चौहान-बेहोल(?)गणा रणेऽसिन्नन्योन्यमेषां घटितं प्रचक्रुः ॥७॥
तीरेषु मह्याः पतिताः कबन्धा भीमा विरेजुः करवालहस्ताः।
सुखंशयानाः किलनीरमध्याद्विनिर्गतामद्गुरबालकाः किम् ॥१२॥
रणस्थलीर्भूपतिरासकर्णस्तत्याज वीकाभुजदण्डभीरुः।
चलत्किरीटः स्फुरदश्ववारश्चौहानवर्गोऽभिमुखी बभूव ॥१४॥

वांसवाड़ा और डूंगरपुर के बीच यह लड़ाई क्यों हुई, इस विषय में उक्त दोनों राज्यों की ख्यातों में कुछ भी उल्लेख नहीं है। ऊपर बतलाया गया है कि महारावल जगमाल के दो पुत्र—किशनसिंह और जयसिंह—थे, जिनमें से जयसिंह वांसवाड़े की गद्दी पर बैठ गया और किशनसिंह या उसका पुत्र कल्याणमल राज्य के हक़ से वंचित रहा। ऐसी दशा में संभव है कि डूंगरपुर के स्वामी आसकरण ने, वांसवाड़ा के वास्तविक हक़दार को राज्य दिलाने के लिए, प्रतापसिंह पर चढ़ाई की हो।

शेरशाह सूर का गुलाम हाजीखां, एक सेनापति था और अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर इलाका) पर अधिकार था।

हाजीखां की सहायतार्थ महाराणा उदयसिंह के साथ महारावल का जाना

वहां से उसे निकालने के लिए बादशाह अकबर ने पीरमुहम्मद सरवानी (नासिरुलमुल्क) को उस पर भेजा। उसके पहुंचने के पहिले ही हाजीखां भागकर अजमेर चला गया[1]। राव मालदेव ने उसे लूटने के लिए पृथ्वीराज (जैतावत) की अध्यक्षता में सेना भेजी। अकेले हाजीखां की उसका सामना करने की सामर्थ्य न थी इसलिए उसने महाराणा उदयसिंह के पास

जघ्नुः शितैः प्रासफलैः सखेटाश्चौहानभूपा रणरङ्गमत्ताः।
समुल्लसद्बाहुकरालखड्गाः सुशोणनेत्रा धृतवर्मदेहाः ॥१५॥
सन्त्रासयन्त्यः किल दिग्गजालीर्दम्मामकानां ध्वनिभिः प्रवृद्धैः।
चौहानभूपैश्चतुरङ्गसैन्यो वीकानरेन्द्रोऽपि युयोध भूयः ॥१६॥
क्षेत्रं प्रतापाय ददौ प्रततो वीकाभुजादण्डलसत्प्रतापैः।
इत्युक्तवान् सन्निहितः स्ववर्गो मह्याः परं पारमुपाससाद ॥२०॥
महान् प्रतापस्य जयस्तदाऽऽसीदभूत्सुरेभ्यो जयपुष्पवृष्टिः।
सुखं स वंशालयमध्यवर्ती निर्विघ्नमन्तःपुरमन्दिरेषु ॥२१॥

हरिभूषणकाव्य; सर्ग ६।

हरिभूषण काव्य के कर्ता ने इस युद्ध के प्रसङ्ग में चौहानों का, जो वर्णन किया है, वह बागड़ के चौहानों की वीरता का सूचक है।

(१) अकबरनामा—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया, जि० ६, पृ० २१-२।

अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें। महाराणा ने उसको सहायता देना स्वीकार किया और अपनी सेना सहित उसकी सहायतार्थ रवाना हुआ। इस अवसर पर अन्य सामंतों एवं मित्र राजाओं के अतिरिक्त बांसवाड़े का रावल प्रताप-सिंह भी उस सेना के साथ था[1]। हाजीखां ने बीकानेर के राव कल्याणमल

---

(१) बांकीदास की 'ऐतिहासिक बातें' (संख्या १२६६) तथा मुंशी देवीप्रसाद के 'महाराणा उदयसिंह का जीवनचरित्र' (पृ० ६६) में पीछे से हाजीखां के विरुद्ध भेजी गई महाराणा की सेना में इन राजाओं आदि का शामिल रहना लिखा है। मुंह-णोत नैणसी ने इनके नाम न देकर केवल दस देशपति लिख दिया है; पर यह ठीक नहीं प्रतीत होता। ये सब मालदेव की सेना की चढ़ाई होने पर हाजीखां की सहायतार्थ भेजी हुई महाराणा उदयसिंह की सेना के साथ होने चाहियें, जिसमें बीकानेर के राव कल्याणमल की सेना भी थी। दयालदास की ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १५५७ ता० २४ जनवरी) दिया है (जि० २, पृ० २३)। दूसरी ख्यातों आदि में लगभग यही समय महाराणा की हाजीखां एवं मालदेव के साथ की लड़ाई का दिया है। मुंहणोत नैणसी समय के विषय में केवल इतना लिखता है कि राणा ने हरमाड़े के मुक़ाम पर पठाण हाजीखां से युद्ध किया, जिसका वर्णन दधिवाड़िया खींवराज ने वि० सं० १७१४ के वैशाख (ई० स० १६५७ मार्च) में लिख भेजा (नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० ५८)। ख्यातों में इस विषय में मतभेद होने के कारण यह स्थिर करना कठिन है कि कौनसी चढ़ाई किस समय हुई, पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दोनों लड़ाइयां थोड़े समय के अन्तर से ही हुई होंगी।

महाराणा का दस देशपतियों के साथ रहकर हाजीखां तथा मालदेव की सेना से लड़ना और हारना, जैसा कि मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है, असम्भव कल्पना प्रतीत होती है। यदि महाराणा के हारने की बात ठीक हो, तो यही मानना पड़ेगा कि दस देशपति महाराणा के साथ हाजीखां की सहायतार्थ गये थे, पर उस समय जोधपुर की सेना के बिना लड़े लौट जाने से लड़ाई नहीं हुई। कर्नल पाउलेट ने भी महाराणा की हाजीखां के साथ की लड़ाई में राव कल्याणमल का उस (महा-राणा) के साथ शामिल रहना नहीं लिखा है (बीकानेर गैज़ेटियर; पृ० २१-२)।

हमने राजपूताना के इतिहास, जि० २, पृ० ७२० में राव कल्याणमल आदि का पिछली लड़ाई में महाराणा के साथ रहना लिख दिया है, पर बाद के शोध से

से भी इस चढ़ाई के अवसर पर सहायता मंगवाई, जिसपर उसने कई सरदारों के साथ उसकी सहायतार्थ सेना भेजी[1]। इस बड़े सम्मिलित कटक को देखकर जोधपुर के सरदारों ने पृथ्वीराज से कहा कि राव मालदेव के अच्छे-अच्छे सरदार पहले की लड़ाइयों में मारे जा चुके हैं, यदि हम भी मारे गये तो राव का बल बहुत घट जायगा। इतनी बड़ी सेना का सामना करना कठिन है, इसलिए लौट जाना ही उचित होगा। इसपर मालदेव की सेना बिना लड़े ही लौट गई[2]।

महारावल का बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार करना

आंबेर का कुंवर मानसिंह कछवाहा हल्दी-घाटी की लड़ाई में मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह को अधीन न कर सका और शाही सेना की बड़ी दुर्दशा हुई, जिसपर नाराज़ होकर बादशाह अकबर ने मानसिंह और आसफ़खां की ड्योढ़ी बन्द कर दी। शाही सेना के लौट जाने पर महाराणा, ईडर के राव नारायणदास तथा सिरोही के राव सुरताण आदि को मिलाकर अर्वली पहाड़ के दोनों तरफ़ का शाही प्रदेश लूटने लगा और गुजरात के शाही थानों पर भी उसने हमला करना शुरू कर दिया। गुजरात पर जमते हुए महाराणा के आतङ्क को हटाने के लिए बादशाह ने सोचा कि जो काम मैं स्वयं कर सकता हूं, वह मेरे नौकरों से नहीं हो सकता। यह

यही अनुमान दृढ़ होता है कि वे हाजीखां की सहायतार्थ महाराणा के जाने पर उसके साथ गये होंगे, जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

(१) दयालदास की ख्यात; जिल्द २, पृ० २३। पाउलेट; बीकानेर गैज़ेटियर; पृ० २१।

बीकानेर के राव कल्याणमल के पिता राव जैतसी को मारवाड़ के राव मालदेव ने मारा था, जिससे उसका मालदेव से वैर था। शेरशाह ने उसको पीछा बीकानेर का राज्य दिलवाया था, जिससे वह (कल्याणमल) उसका अनुग्रहीत था। ऐसी दशा में उसका शेरशाह के गुलाम की सहायतार्थ ही सेना भेजना अधिक संभव है।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पृ० २३। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६८-९। पाउलेट; बीकानेर गैज़ेटियर, पृ० २१। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जिल्द १, पृ० ५८।

विचारकर वह स्वयं वि० सं० १६३३ कार्तिक वदि ६ (ई० स० १५७६ ता० १३ अक्टोवर) को अजमेर से गोगूंदा को रवाना हुआ। इसपर महाराणा पहले से ही पहाड़ों में चला गया। बादशाह उधर गोगूंदा आदि स्थानों में छः मास तक रहा, परंतु महाराणा को अधीन न कर सका। जहां-जहां शाही फ़ौजें गईं, वहां उनकी हानि ही हुई। अंत में बादशाह बांसवाड़े की तरफ़ चला गया, जहां का स्वामी रावल प्रतापसिंह और डूंगरपुर का स्वामी आसकरण बादशाह की प्रबलता के कारण उसके पास उपस्थित हो गये और उसकी अधीनता स्वीकार करली[1]।

मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह का बांसवाड़े पर सेना भेजना

स्वतंत्रता के प्रेमी महाराणा प्रतापसिंह को अपने ही कुल के डूंगरपुर और बांसवाड़ा के राजाओं का अकबर के अधीन हो जाना असह्य हुआ और वि० सं० १६३५ (ई० स० १५७८) में उसने उन दोनों राज्यों पर दवाव डालने के लिए सेना भेजी। सोम नदी पर लड़ाई हुई, जिसमें मेवाड़ की सेना का मुखिया रावत भाण सारंगदेवोत (कानोड़वालों का पूर्वज) बुरी तरह से घायल हुआ और दोनों तरफ़ के कई राजपूत मारे गये[2]।

महारावल प्रतापसिंह का जोधपुर के राव चंद्रसेन को अपने यहां रखना

मारवाड़ के राव मालदेव ने अपनी झाली राणी स्वरूपदे पर अधिक प्रेम होने से उसके पुत्र चंद्रसेन को, जो तीसरा कुंवर था, अपना उत्तराधिकारी बनाया, परंतु उस(चंद्रसेन)ने राज्य पाने पर अपने बुरे व्यवहार से कुछ सरदारों को अप्रसन्न कर दिया, जिससे मारवाड़ में गृहकलह का सूत्रपात हो गया और मालदेव के पुत्र—राम, उदयसिंह तथा रायमल—चंद्रसेन से लड़ने लगे। मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र राम, चंद्रसेन से हारकर बादशाह अकबर के पास पहुंचा और वहां से सैनिक सहायता

(१) बेवरिज; अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० २७७। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ८६।

(२) महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास; वीरविनोद; प्रकरण चौथा, पृ० १५६। मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७६१।

लेकर आया। वि० सं० १६२१ (ई० स० १५६४) में शाही-सेना ने चंद्रसेन से जोधपुर खाली करा लिया[1], जिससे वह भाद्राजूण में जाकर रहने लगा।

जब वादशाह अकबर वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में अजमेर से नागोर गया, उस समय जोधपुर राज्य के हक़दार राम और उदयसिंह वादशाह के पास पहुंचे। चंद्रसेन भी राज्य पाने की आशा से अपने पुत्र रायसिंह सहित वादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और कई दिनों तक उसकी सेवा में रहा, किन्तु जब उसे पुनः जोधपुर मिलने की आशा दिखाई न पड़ी, तब वह अपने पुत्र रायसिंह को वादशाह की सेवा में छोड़कर भाद्राजूण को लौट गया। फिर शाही सेना-द्वारा भाद्राजूण से निकाले जाने पर वह सिवाणे के क़िले में जा रहा, परन्तु वहां भी शाही-सेना ने उसका पीछा न छोड़ा। सिवाना के छूटने पर विवश होकर वह पिपलूंद के पहाड़ों में जाकर रहने लगा। फिर डेढ़ वर्ष तक सिरोही के इलाक़े में रहने के बाद वह वहां से अपने वहनोई आसकरण के पास डूंगरपुर में जा रहा। उसके डूंगरपुर में रहते समय जब शाही-सेना डूंगरपुर के निकट के मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश में पहुंच गई, तब वह वहां से बांसवाड़े चला गया। महारावल प्रतापसिंह ने उसके निर्वाह के लिए तीन चार गांव देकर उसको अपने यहां रक्खा[2]। वहां कुछ समय तक रहकर फिर वह मेवाड़ के भोमट इलाक़े में जा रहा।

महारावल के समय के शिलालेख

महारावल प्रतापसिंह के समय के वि० सं० १६०७[3] से १६३२[4] (ई० स० १५५०-१५७५) तक के शिलालेख मिले हैं, जिनसे उसका समय निश्चित् करने के अतिरिक्त कोई ऐतिहासिक वात नहीं पाई जाती।

(१) बेवरिज; अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० ३०५।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात (हस्तलिखित); जिल्द १, पृ० १२०।

(३) देखो ऊपर पृ० ७४।

(४) संवत् १६३२ वरषे मागसरसुद (वर्षे मार्गशीर्षसुदि) १४ द(दि)ने राउलप्रतापराज्ये............. ।

(बांसवाड़ा राज्य के इटाउवा गांव के लेख की नक़ल से)।

ख्यात में महारावल प्रतापसिंह का देहांत वि० सं० १६३० में होना लिखा है, किन्तु वि० सं० १६३२ (ई० स० १५७५) तक के तो उसके शिलालेख मिल चुके हैं अतः वि० सं० १६३० में उसकी मृत्यु होने का कथन विश्वसनीय नहीं है। इसके अतिरिक्त अबुलफ़ज़ल के 'अकबरनामे' से उसका वि० सं० १६३३ (ई० स० १५७६) तक विद्यमान होना स्पष्ट है तथा मेवाड़ के इतिहास 'वीरविनोद' और 'जोधपुर राज्य की ख्यात' से भी उसका वि० सं० १६३५ (ई० स० १५७८) के आस पास तक जीवित रहना पाया जाता है। वांसवाड़ा से एक प्राचीन पुस्तक, वि० सं० १६३६ पौष सुदि ५ (ई० स० १५७९ ता० २२ दिसंबर) भौमवार[1] की महारावल प्रतापसिंह के समय की लिखी हुई, मेरे देखने में आई है, जिससे निश्चित है कि वि० सं० १६३६ (ई० स० १५७९) तक वह विद्यमान था। उसके केवल एक पुत्र मानसिंह ही था। ख्यात में लिखा है कि महारावल प्रतापसिंह ने सरा, खांधू, झाबुआ और सूंथ राज्यों की भूमि दबा ली थी। उसने प्रतापपुरा (परतापुर) गांव बसाया और खांधू के डोडिये सरदार को नमकहराम हो जाने के कारण मारकर उसका पट्टा ज़ब्त कर लिया। उसका नवाब वज़ीरखां[2] से युद्ध हुआ था, जिसमें वज़ीरखां मारा गया।

महारावल का देहांत और संतति

मानसिंह

महारावल प्रतापसिंह के पीछे उसका पुत्र मानसिंह वांसवाड़े की गद्दी पर बैठा[3]। उसके सम्बन्ध के लिए चौहानों के यहां से नारियल आये और

(१) संवत् १६३६ वर्षे पौषमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ भौमवासरे अद्येह श्रीवागड़देशे महाराउलश्रीप्रतापजीविजयराज्ये...... ।

(मूल पुस्तक के अंतिम भाग से)।

(२) नवाब वज़ीरखां कहां का था, ख्यात से स्पष्ट नहीं होता। यदि यह कथन ठीक हो तो यही संभव हो सकता है कि वह गुजरात का कोई अफ़सर रहा हो।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; भाग १, पृ० ८९।

जब वह उनके यहां विवाह करने गया उस समय खांधू के भीलों ने राज्य में उपद्रव शुरू किया। इसपर महारावल के प्रधान ने थोड़े से आदमियों के साथ जाकर भीलों से लड़ाई की पर उसमें उसकी विजय न हुई। भीलों ने प्रधान की प्रतिष्ठा बिगाड़कर उसका घोड़ा छीन लिया और उसे वहां से निकाल दिया। विवाह करके लौटने पर जब महारावल ने यह समाचार सुना तो मारे क्रोध के उसका खून उबलने लगा। अभी विवाह के कंकन भी न खुलने पाये थे, पर वह उसी तरह खांधू पर चढ़ दौड़ा। वहां पहुंचकर उसने उस गांव को घेर लिया, कई भीलों को मारा और वहां के मुखिया (गमेती) को बन्दी बनाकर उसके पांवों में बेड़ी डाल वह अपने साथ ले चला। वहां से दस कोस दूर एक स्थान पर पहुंचकर वह (महारावल), उस-(भील)को धमकाने लगा। भील लज्जाशील था। उसने समझ लिया कि महारावल मेरी प्रतिष्ठा बिगाड़ेगा और गढ़ में पहुंचते ही मुझको बुरी तरह मारेगा। अतएव जब डेरा-डंडा उठ रहा था, उस समय अवसर पाकर उपर्युक्त गमेती (भील) ने चुपके से किसी की तलवार उठा ली और पीछे से जाकर महारावल पर प्रहार किया, जिससे उसकी वहीं मृत्यु हो गई। उस समय महारावल के साथ चौहान मान[1] (मेतवाला का) और रावत

नैणसी ने मानसिंह का महारावल प्रतापसिंह की खवास पन्ना के उदर से उत्पन्न होना और प्रतापसिंह के कोई संतान न होने से मानसिंह में अच्छी योग्यता होने के कारण सरदारों का उसको गद्दी पर बिठाना लिखा है, जो ठीक नहीं है। बड़वे की ख्यात से ज्ञात होता है कि मानसिंह, प्रतापसिंह की राठोड़ राणी गुमानकुंवरी के उदर से उत्पन्न हुआ था। यदि वह प्रतापसिंह का अनौरस पुत्र होता तो चौहान जैसे कुलीन क्षत्रिय उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कदापि न करते।

(१) चौहान मानसिंह सांवलदासोत, वागड़िया चौहान बाला के पुत्र डूंगरसी का प्रपौत्र था। डूंगरसी का एक पुत्र लालसिंह और लालसिंह के दो बेटे सांवलदास तथा वीरभाण थे। वीरभाण के दो पुत्र मानसिंह और सूजा (सूरजमल) हुए (नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० १७०), जिनमें से मानसिंह सांवलदास का उत्तराधिकारी हुआ होगा, इसी से नैणसी ने अपनी ख्यात में एक स्थान पर (भाग १, पृष्ठ ६०) उस(मानसिंह)को सांवलदासोत लिखा है। मानसिंह के वंशधरों का

सूरजमल जैतमालोत[1] विद्यमान थे, जिन्होंने उस गमेती को मार डाला[2]।

महारावल मानसिंह की वि० सं० १६४० (ई० स० १५८३) में मृत्यु होने का उल्लेख मिलता है, जो संभव हो सकता है, क्योंकि उसके पश्चात् बांसवाड़े की गद्दी पर बैठनेवाले महारावल उग्रसेन का पहला शिलालेख वि० सं० १६४६ पौष सुदि १५ (ई० स० १५९० ता० १० जनवरी) शनिवार का मिला है[3]।

उग्रसेन (अगरसेन)

नैणसी लिखता है—"महारावल मानसिंह निःसंतान था, इसलिए अवसर पर पाकर मान (मानसिंह) चौहान बांसवाड़े का स्वामी बन बैठा। तब डूंगरपुर के स्वामी सैंसमल ने उस (मानसिंह) को कहलाया कि तू राज का मालिक होनेवाला कौन है? परन्तु मान ने उसपर कुछ भी ध्यान न

चौहान मानसिंह का उपद्रव करना और उग्रसेन का उसको बांसवाड़े से निकालना

बांसवाड़ा राज्य में मुख्य ठिकाना मेतवाला है और सूजा के वंशधरों का मुख्य ठिकाना बनकोड़ा है, जो डूंगरपुर राज्य में है।

(१) रावत सूरजमल जैतमालोत, मारवाड़ के राठोड़ों की चांपावत शाखा का सरदार था। मारवाड़ के राव रणमल का एक पुत्र चांपा था, जिसके नाम से उसके वंशज चांपावत कहलाये। चांपा का पुत्र भैरूंदास और उसका जैसा था। जैसा के चार पुत्र—मांडण, जगमाल, गोविंददास और जेतमाल—हुए। उनमें से जेतमाल का पुत्र सूरजमल हुआ। संभव है कि सूरजमल या उसका कोई पूर्वाधिकारी वागड़ में चला गया हो, जहां उसने बांसवाड़ा राज्य से जागीर पाई हो।

(२) बांसवाड़ा के राजाओं की एक प्राचीन वंशावली में लिखा है कि महारावल मानसिंह ने वि० सं० १६४० तक राज्य किया और उसको इटाउवा के महादेव के मंदिर में चौहानों ने मारा, परन्तु नैणसी की ख्यात में, जो अधिक पुरानी है, मानसिंह की मृत्यु खांदू के भीलों के मुखिया के हाथ से होना लिखा है, जो विश्वसनीय है।

(३) महारावल श्रीअग्रसेनजी आदेसात (शात्)······संवत् १६४६ वरषे (वर्षे) पोस (पौष) सु (शु) दि १५ शनौ ····· ।

(बांसवाड़ा राज्य के अमरपुरा गांव के लेख की छाप से)।

दिया, जिससे क्रुद्ध हो महारावल (सैंसमल) ने उसपर चढ़ाई करदी। दोनों में युद्ध हुआ, परंतु विजय चौहानों की हुई। जब महाराणा प्रतापसिंह ने सुना कि चौहान मानसिंह बांसवाड़ा राज्य का स्वामी हो गया है, तो उसने अपने सरदार सीसोदिया रावत रामसिंह[१] (खंगारोत) और रत्नसिंह[२] (कांधलोत) को चार हज़ार सवारों की सेना सहित बांसवाड़े पर विदा किया। उनसे चौहान मानसिंह की लड़ाई हुई। अंत में रावत रामसिंह मारा गया और महाराणा की सेना लौट गई। मानसिंह इस विजय से निःशंक हो गया, परंतु उसको वागड़ के सब चौहानों ने मिलकर कहा कि तेरी बात रह गई, चौहान बांसवाड़े के स्वामी कभी नहीं हो सकते, अपने तो राज्य के 'भड़-किंवाड़' (रक्षक) हैं, इसलिए उचित यही है कि जगमाल के वंशधरों में से किसी राजकुमार को गद्दी पर बिठावें। तब उसने कल्याणमल[३] के पुत्र उग्रसेन को उसके ननिहाल से बुलाकर बांसवाड़े का राजा बना दिया[४]। आधे

(१) सीसोदिया रामसिंह (रायसिंह, खंगारोत), मेवाड़ के सुप्रसिद्ध रावत चूंडा के पुत्र कांधल के बेटे रत्नसिंह का प्रपौत्र था। रत्नसिंह का खंगार और खंगार का कृष्णदास हुआ, ऐसा सलूंबर ठिकाने की वंशावली से प्रकट है।

(२) चूंडावत शाखा का रावत रत्नसिंह कांधलोत, मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के साथ वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में बाबर बादशाह के मुक़ाबले में लड़कर खानवे में काम आया। अतएव महाराणा प्रतापसिंह का इस रत्नसिंह कांधलोत को सेना देकर बांसवाड़े पर भेजना कदापि संभव नहीं हो सकता। नैणसी ने अपनी ख्यात (भाग १, पृ० ३४) में रावत चूंडा लाखावत की वंशावली दी है, जिससे प्रकट है कि रावत खंगार का एक पुत्र प्रतापसिंह था, जो बांसवाड़े में काम आया। प्रतापसिंह खंगारोत, महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) का समकालीन था, इसलिए उक्त महाराणा का चूंडावत प्रतापसिंह खंगारोत को, चौहान मानसिंह को बांसवाड़े से निकालने के लिए भेजना संभव हो सकता है।

(३) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात में लिखा है कि कल्याणसिंह का दूसरा पुत्र चंदनसिंह था, जिसके वंशज कुवाणिया के सरदार हैं। उस(कल्याणसिंह)के तीसरे पुत्र सुंदरसिंह के वंशज बसी के सरदार हैं।

(४) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात में महारावल मानसिंह के पीछे कानड़दे का वि० सं० १६३५ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १५७८) को महारावल होना

महलों में उग्रसेन रहता और आधे में मानसिंह। इसी प्रकार राज्य की आधी आय भी मानसिंह लेता रहा, जिससे रावल उग्रसेन की आज्ञा सारे राज्य में नहीं चलती थी।

"चौहान मानसिंह किसी को कुछ नहीं समझता और बहुत ही अनीति करने लगा। इससे रावल उग्रसेन मन ही मन में कुढ़ता, परंतु उसका कुछ वस नहीं चलता था। जोधपुर के राव चंद्रसेन के पुत्र आसकरण का विवाह बांसवाड़े हुआ था, इससे आसकरण की मृत्यु हो जाने के बाद उसकी दूसरी विधवा राणी हाड़ी आसकरण की पत्नी से मिलने आई तो उस (हाड़ी) पर चौहान मानसिंह बुरी दृष्टि डालने लगा, क्योंकि हाड़ी बड़ी सुंदर और किशोर वय की थी, परंतु वह जैसी रूपवती थी, वैसी ही शीलवती भी। इसलिए जब उसको मानसिंह की नीयत का हाल ज्ञात हुआ, तब उसने अपनी धाय को भेजकर कहलाया कि तूने रावल के घर का नाश किया सो तो किया, परन्तु मेरी तरफ़ कभी दृष्टि मत डालना और वह सतर्क रहने लगी। मानसिंह को तो मन्मथ ने अन्धा कर रक्खा था, जिससे मौक़ा पाकर वह उस (हाड़ी) के निवास-गृह में घुस गया। उस समय जब हाड़ी ने देखा कि मेरे सतीत्व की रक्षा करनेवाला कोई नहीं है, तो वह तत्काल कटार खाकर मर गई।

और उसके बाद कल्याणसिंह का वि० सं० १६४० आषाढ वदि ५ (ई० स० १५८३) को गद्दी बैठना एवं वि० सं० १६५० कार्तिक वदि १० (ई० स० १५९३) को उग्रसेन का बांसवाड़े का स्वामी होना लिखा है, किन्तु उग्रसेन के उपर्युक्त वि० सं० १६४१, पौष सुदि १५ (ई० स० १५९० ता० १० जनवरी) के शिलालेख से ख्यात का यह कथन कपोलकल्पित ठहरता है।

बांसवाड़े के राजाओं की प्राचीन वंशावली में किशनसिंह के पौत्र और कल्याणमल के पुत्र उग्रसेन को मानसिंह का उत्तराधिकारी बतलाया है, जो ठीक है। उसकी पुष्टि नैणसी की ख्यात से भी होती है (नैणसी की ख्यात; भाग १, पृ० ८९)। उपर्युक्त वंशावली में यह भी उल्लेख है कि महारावल मानसिंह की मृत्यु के पीछे साढ़े तीन वर्ष तक चौहान मान ने राज्य भोगा। अनन्तर उग्रसेन राजा हुआ। इससे स्पष्ट है कि वि० सं० १६४३ के आस पास उग्रसेन बांसवाड़े का स्वामी हुआ होगा।

"रावल उग्रसेन के सरदारों में चांपावत राठोड़ रावत सूरजमल (जैतमालोत) बड़ा सरदार था, जिसकी ६००० नौ हज़ार वार्षिक की जागीर थी। जब उसने इस प्रकार राठोड़ आसकरण की स्त्री हाड़ी के प्राण त्यागने की बात सुनी तो मन में दुखी होकर उग्रसेन से कहा कि तुम हाथ में हथियार पकड़ते हो, फिर तुम्हारे घर में यह क्या उपद्रव मच रहा है? उग्रसेन ने कहा कि क्या किया जावे। सब जानते हैं, देखते हैं, परन्तु ज़ोर कुछ भी नहीं चलता और न कोई दाव लगता है। इसपर सूरजमल ने कहा कि अब तो अपना बल बढ़ाकर हिम्मत के साथ उसको यहां से निकालेंगे। फिर उग्रसेन से उसने सब बात पक्की कर चोली माहेश्वर के राठोड़ केशोदास[1] भीमोत को अपना सहायक बनाकर उसके साथ उग्रसेन की छोटी बहिन का विवाह करना निश्चय किया। इधर नियत समय पर रावल उग्रसेन और सूरजमल सुसज्जित हो गये तथा उसी दिन केशवदास ने अपने १५०० योद्धाओं सहित आकर गांव की सीमा पर नक़ारा बजाया। मानसिंह को इस विवाह की कुछ भी ख़बर नहीं थी, इसलिए उसने नक़ारे की आवाज़ सुनते ही अपने आदमी को उग्रसेन के पास भेजा। उसने जब रावल के साथियों को सजे-सजाये तैयार देखा तो मानसिंह के पास पहुंचकर कहा कि आप पर चूक होनेवाली है। इसपर भयभीत हो मानसिंह गढ़ की खिड़की में से कूदकर भागा। उग्रसेन के राजपूतों ने उसका पीछा किया, जिसमें उसके कई आदमी मारे गये[2], परन्तु वह बच गया। उसका माल असबाब महारावल के हाथ लगा और बांसवाड़े पर महारावल का पूर्ण अधिकार हो गया। उस (महारावल) ने इस सेवा के उपलक्ष्य में सूरजमल को २५००० हज़ार रुपये वार्षिक आय की जागीर दी।

---

(१) राठोड़ केशोदास भीमोत, मारवाड़ के राठोड़ राव जोधा के पुत्र वरसिंह का वंशधर था, जिसके वंशजों के अधिकार में मालवे में झाबुआ राज्य है।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; भाग १, पृ० ९२।

"इसपर मानसिंह बादशाह अकबर के पास पहुंचा[1] और वहां विपुल द्रव्य खर्चकर बांसवाड़े का फ़रमान अपने नाम लिखाकर शाही सेना के साथ लौटा। तब महारावल उग्रसेन पहाड़ों में चला गया और सूरजमल अपनी जागीर में जा रहा। एक दिन दोपहर के समय अकस्मात् महारावल के सरदारों ने भीलवण के थाने पर आक्रमण किया, जिसमें उस (मानसिंह)-के ८० कुटुम्बी मारे गये। जब यह सम्वाद मानसिंह के पास बांसवाड़े पहुंचा तो शाही सेनानायक के साथ घटनास्थल पर पहुंचकर उसने खेत संभाला। वहां उसने सब अपने ही आदमी मरे हुए पाये। इसपर शाही सेनाध्यक्ष ने कहा—'तू नमकहरामी हुआ, जिसकी यह सज़ा तुझे मिली है।' फिर वह सेनाध्यक्ष अपनी सेना सहित लौट गया[2]।" इससे मानसिंह का बल टूट गया और वह बांसवाड़ा छोड़ पीछा बादशाह के पास पहुंचा। तब रावल उग्रसेन ने पहाड़ों से आकर वहां पर पीछा अपना अधिकार कर लिया।

मानसिंह का शाही दरबार में जाकर बादशाह से बांसवाड़े का फ़रमान प्राप्त करना

"मानसिंह के पुनः शाही दरबार में जाने पर रावल उग्रसेन और सूरजमल भी बादशाह के पास गये, परन्तु द्रव्य-बल से मानसिंह ने शाही कर्मचारियों को अपनी ओर कर लिया था, जिससे रावल उग्रसेन की बात वहां पर किसी ने न सुनी। तब सूरजमल ने रावल से कहा कि आप बांसवाड़े जावें और ब्राह्मणों से जो कर वहां लिया जाता है, उसे छोड़ दें। मैं यहीं रहता हूं, यदि हो सका तो मानसिंह को मारकर आऊंगा। निदान उग्रसेन बांसवाड़े गया और सूरजमल वहीं रहा।" फिर सूरजमल ने अपने आदमी गांगा गोड़ को मानसिंह की घात में लगाया। वि० सं० १६५८ (ई० स० १६०१)

महारावल का चौहान मानसिंह को राठोड़ सूरजमल के द्वारा मरवाना

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; भाग १, पृ० ९२। नैणसी ने इस घटना का वि० सं० १६२१ (ई० स० १५६४) में होना लिखा है (भाग १, पृ० १७०)।

(२) वही; पृ० ९२।

में एक दिन बुरहानपुर[1] में सूरजमल ठाकुरसी कल्लावत[2] के साथ वह मान के डेरे पर गया, जहां पहुंचते ही उसने उसको मार डाला[3]। "मानसिंह ने भी मरते-मरते ठाकुरसी के ऐसी लात मारी कि वह भी वहीं मर गया[4]।"

फिर बादशाह अकबर ने उग्रसेन को सज़ा देने के लिए अपने राज्य के अड़तालीसवें[5] वर्ष, ई० स० १६०३ (वि० सं० १६६०) में मिर्ज़ा शाहरुख़

---

(१) फ़ारसी तवारीख़ों से ज्ञात होता है कि इन दिनों बादशाह अकबर दक्षिण के सुलतानों को अपनी अधीनता में लाने के कार्य में व्यग्र था। पहले उसने अपने शाहज़ादे मुराद को वहां भेजा (जो वहीं मर गया)। फिर वह स्वयं वहां पहुंचा और आसीरगढ़ का क़िला विजय होने के समय दक्षिण में विद्यमान था। ऐसी अवस्था में मानसिंह का वि० सं० १६५८ (ई० स० १६०१) में बुरहानपुर में शाही-शिविर के साथ रहते समय सूरजमल के हाथ से मारे जाने का नैणसी का कथन ठीक जान पड़ता है।

(२) ठाकुरसी कल्लावत, राव जोधा के पुत्र वरसिंह के बेटे खेतसी का पौत्र था। जब अकबर बादशाह के सेनाध्यक्ष मिर्ज़ा शर्फ़ुद्दीन ने मेड़ते पर अधिकार करने के लिए वि० सं० १६१९ (ई० स० १५६२) में चढ़ाई की, उस समय सातलियावास के युद्ध में ठाकुरसी घायल हुआ, जिसको राठोड़ जयमल मेड़तिया उठवाकर ले गया। मेड़ता छूटने पर वह (ठाकुरसी) बांसवाड़े में जाकर रावल उग्रसेन का नौकर हुआ था।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; भाग १, पृ० ९२।

(४) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६५, १००५ और १५४१।

(आषाढादि) वि० सं० १६४८ (चैत्रादि १६४९) वैशाख सुदि ७ (ई० स० १५९२ ता० ८ अप्रेल) शनिवार के घाटोदि (घांटशीय) गांव के अजितनाथ के जैन मंदिर की प्रशस्ति में रावल उग्रसेन और चौहान मानसिंह दोनों का बांसवाड़े पर राज्य करना लिखा है—

............घांटशीयनगरे राजाधिराजराउलश्रीउग्रसेनचहुआण श्रीमानजीराज्यप्रवर्त्तमाने...... ।

(मूल लेख की छाप से)।

(५) एच० बेवरिज; अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० ३, पृ० १२३२। इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया (इनायतुल्ला के 'तक्मील अकबरनामे' का अंग्रेज़ी अनुवाद), जि० ६; पृ० १०९–१०। जोधपुर निवासी प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद ने

बादशाह का मिर्ज़ा शाहरुख को सेना देकर बांसवाड़े पर भेजना

को सेना देकर बांसवाड़े पर रवाना किया। उग्रसेन कुछ समय तक लड़ने के पश्चात् पहाड़ों में जा रहा, जिससे बांसवाड़े पर शाही सेना का अधिकार हो गया। महारावल अपने सरदारों को लेकर मालवे में लूटमार करने लगा। इसपर मिर्ज़ा को बांसवाड़ा छोड़कर मालवे को जाना पड़ा। ज्योंही मिर्ज़ा मालवे में पहुंचा, त्योंही महारावल ने अपने मुल्क पर फिर अधिकार कर लिया[1]।

डूंगरपुर के स्वामी कर्मसिंह के साथ महारावल उग्रसेन का युद्ध

बांसवाड़े की ख्यात में लिखा है कि माही नदी पर डूंगरपुर के स्वामी महारावल कर्मसिंह और उग्रसेन के बीच युद्ध हुआ, जिसमें बांसवाड़े की विजय हुई। डूंगरपुर राज्य की ख्यात में यद्यपि इस युद्ध का वर्णन नहीं है, तो भी कर्मसिंह के उत्तराधिकारी पुंजराज के समय की (आषाढादि) वि० सं० १६७९ (चैत्रादि सं० १६८०) वैशाख सुदि ६ (ई० स० १६२३ ता० २५ अप्रेल) शुक्रवार की डूंगरपुर के गोवर्धननाथ के मंदिर की प्रशस्ति से प्रकट है कि कर्मसिंह ने माही नदी के तट पर युद्ध कर पूर्ण पराक्रम प्रदर्शित किया था[2]। नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है कि रावल कर्मसी और उग्रसेन के बीच की लड़ाई में चौहान वीरभाण काम आया[3]।

अपने 'अकबरनामे' में इस घटना का बादशाह अकबर के पचासवें वर्ष में होना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

(१) एच० बेवरिज; अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० ३, पृ० १२३२। इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इण्डिया (इनायतुल्ला का 'तकमिले अकबरनामा') जि० ६, पृ० १०९–१०।

(२) तदात्मजः सागरधीरचेताः सुकर्मसिंहेत्यभिधानयुक्तः।
जघान यो वैरिगणं महान्तं महीतटे शक्रसमानवीर्यः ॥६४॥
(मूल प्रशस्ति से)।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; भाग १, पृ० १७०।

यह युद्ध क्यों और कब हुआ, इस विषय में उक्त दोनों राज्यों की ख्यातों से कुछ भी ज्ञात नहीं होता, परन्तु डूंगरपुर के महारावल कर्मसिंह ने वि० सं० १६६३-१६६६ (ई० स० १६०६-१६०९) तक राज्य किया, अतएव यह युद्ध इन दोनों संवतों (वि० सं० १६६३-१६६६=ई० स० १६०६-१६०९) के बीच किसी समय होना चाहिये। बांसवाड़ा राज्य से मिली हुई एक प्राचीन पुस्तक में इस युद्ध का वि० सं० १६६५ (ई० स० १६०८) में होना लिखा है, जो ठीक मालूम होता है।

महारावल उग्रसेन के वि० सं० १६४६-१६७० (ई० स० १५९०-१६१३) तक के तीन शिलालेख और दो ताम्रपत्र मिले हैं[1]। उसके पौत्र महारावल समरसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१५) का मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि महारावल उग्रसेन का वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में देहांत हुआ।

महारावल के समय के शिलालेख और उसकी मृत्यु

यद्यपि उग्रसेन के राज्य के प्रारंभ काल में चौहान मानसिंह का उपद्रव रहा, तो भी उस (मानसिंह) के मारे जाने के पश्चात् उग्रसेन ने अपनी सत्ता दृढ़ कर ली और शाही सेना की चढ़ाइयां होने पर भी वह क़ाबू में न आया, जिसका मुख्य कारण यही ज्ञात होता है कि इन्हीं दिनों बादशाह अकबर का देहांत हो गया और उस (अकबर) के उत्तराधिकारी जहांगीर का ध्यान मुख्यतया मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह (प्रथम) को विजय करने में ही लगा रहा, जिससे इस ओर वह ध्यान न दे सका।

---

(१)—उपर्युक्त लेखों का विवरण इस प्रकार है—

[क] वि० सं० १६४६ पौष सुदि १५ (ई० स० १५९० ता० १० जनवरी) शनिवार का अमरपुरा गांव का लेख।

[ख] वि० सं० १६५० पौष सुदि ७ (ई० स० १५९३ ता० २० दिसम्बर) का कुंवर के जातकर्म के अवसर पर गळ्हू (गरहा) गांव दान देने का ताम्रपत्र।

उदयभाण

वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में महारावल उदयभाण अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु छः मास के पश्चात् उसका देहांत हो गया।

बांसवाड़ा राज्य के वड़वे की ख्यात में उग्रसेन की मृत्यु होने पर (आषाढादि) वि० सं० १६६९ (चैत्रादि १६७०) वैशाख सुदि १० (ई० स० १६१३ ता० १९ अप्रेल) को उदयभाण का राजा होना लिखा है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि महारावल उग्रसेन के समय का सबसे अंतिम लेख वि० सं० १६७० कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १६१३ ता० १५ अक्टोबर) का मिल चुका है[1], जिससे स्पष्ट है कि उस समय तक तो वह जीवित था। उग्रसेन के पौत्र महारावल समरसिंह का वि० सं० १६७१ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १६१५ ता० २२ फ़रवरी) बुधवार[2] का पहला लेख मिला है,

[ग] वि० सं० १६६६ (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ३ (ई० स० १६१० ता० २ मार्च) शुक्रवार का लोहारिया गांव का लेख।

[घ] (आषाढादि) वि० सं० १६६८ (चैत्रादि १६६९, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ७ (ई० स० १६१२ ता० १२ मई) का ठीकरिया गांव में दो हल भूमि दान करने का ताम्रपत्र।

[ङ] वि० सं० १६७० कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १६१३ ता० १५ अक्टोबर) का गांगी (गांगरी) गांव के हनुमान की मूर्ति की चरण-चौकी का लेख।

(१) संवत (त्) १६७० वर्षे कारतक (कार्तिक) सु(शु)दि १२ शुक्रे रावल अग्रसेनजी.................. ।
[गांगी (गांगरी) गांव के हनुमान की मूर्त्ति की चरणचौकी के लेख की छाप से]।

(२) मा(म)हारावला(ल)श्रीसमरसीजी.............. संवत् १६७१ वरषे (र्षे) मास फागण (फाल्गुन) सुदी ५ दिने बुधवासरे भुअसा ग्रामे................ ।

(भुआसा गांव के लेख की प्रतिलिपि से)।

जिससे उक्त संवत् में समरसिंह का वांसवाड़े का स्वामी होना निश्चित् है। ऐसी स्थिति में उदयभाण का राज्यारंभ वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) के कार्तिक महीने के वाद ही माना जा सकता है।

एक पुरानी पुस्तक में लिखा है कि उदयभाण ने केवल छः मास राज्य किया। इसकी पुष्टि समरसिंह के वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१५) के लेख के मिलजाने से भली भांति हो जाती है। ऐसी स्थिति में उदयभाण का देहांत वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१५) में मानना युक्तिसंगत है।

समरसिंह (समरसी)

महारावल की गद्दीनशीनी

महारावल समरसिंह, जिसको ख्यातों में समरसी भी लिखा है, वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१५) में वांसवाड़ा राज्य का स्वामी हुआ[1]।

महारावल का वादशाह जहांगीर के पास मांडू जाना

वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१५) में मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह से संधि हो जाने पर जव उसका कुंवर कर्णसिंह शाही दरवार में गया, तब वादशाह जहांगीर ने मेवाड़ से छूटे हुए इलाक़े फिर वहाल करने के अतिरिक्त डूंगरपुर, वांसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि वाहरी इलाक़ों का भी फ़रमान उस- (कर्णसिंह)के नाम कर दिया, परन्तु वांसवाड़ावाले शाही दरवार से अपना संवंध स्थिर रखना चाहते थे, इसलिए जव वादशाह (जहांगीर) मालवे की तरफ़ हि० स० १०२६ (वि० सं० १६७४=ई० स० १६१७) में गया तो मांडू के मुक़ाम पर महारावल समरसिंह ने आषाढ सुदि ३ (ता० २५ जून) को उपस्थित हो वादशाह को तीस हज़ार रुपये, तीन हाथी, एक जड़ाऊ पानदान और एक जड़ाऊ कमरपट्टा भेंट किया[2]।

---

(१) एक ख्यात में गद्दी बैठने के समय महारावल समरसिंह की आयु ढाई वर्ष की होना लिखा है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा, पृ० २६६। एच० बेवरिज; तुज़ुके जहांगीरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, जिल्द १, पृ० ३७१।

वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२७) में बादशाह जहांगीर का देहांत होने पर शाहज़ादा खुर्रम शाहजहां नाम धारणकर तख़्तनशीन हुआ। उसने अपनी गद्दीनशीनी के आरंभ में ही महारावल समरसिंह को ख़िलअ़त तथा एक हज़ार ज़ात और एक हज़ार सवार का मनसब दिया[1]।

बादशाह शाहजहां का महारावल को मनसब देना

महाराणा कुंभा ने वागड़ के स्वामी गोपाल (रावल गेपा) पर चढ़ाई कर डूंगरपुर को तोड़ा था। उधर वागड़ के निकट गुजरात और मालवे में मुसलमानी राज्य होने से मौक़ा पाकर वहां के सुलतान भी वागड़ के स्वामियों को दबाते थे, इसलिए वागड़वाले जैसा अवसर देखते, वैसा व्यवहार करते थे। मेवाड़वालों का ज़ोर विशेष होता तो उन्हें अपना सर-परस्त समझते और यदि गुजरात व मालवा के सुलतानों की प्रबलता देखते तो ख़िराज आदि देकर उनसे मेल कर लेते थे। महाराणा रायमल के समय जब मालवे के सुलतान की सेना ने मेवाड़ पर चढ़ाई की उस समय वागड़ में गंगादास का कुंवर उदयसिंह महाराणा के साथ था। इसी प्रकार महाराणा संग्रामसिंह की ईडर पर की चढ़ाई और खानवे के युद्ध में भी वह (महारावल उदयसिंह) महाराणा के सैन्य में सम्मिलित था। फिर गुजरात के सुलतान बहादुरशाह तथा दिल्ली के बादशाह अकबर-द्वारा चित्तोड़ विजय हुआ, जिससे वागड़ पर मेवाड़ के महाराणाओं का आतङ्क कम हो गया, पर महाराणा उदयसिंह के समय मेल ही बना रहा। महाराणा प्रतापसिंह के समय बादशाह अकबर ने बांसवाड़े जाकर डूंगरपुर और बांसवाड़ा के राजाओं को अपने अधीन किया था, जिससे महाराणा प्रतापसिंह, उनके अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेने के कारण, उनसे अप्रसन्न ही रहा। अकबर के पीछे बादशाह जहांगीर ने अपने साम्राज्य की सारी शक्ति लगाकर महाराणा अमरसिंह (प्रथम) को अपने अधीन किया। उससे सुलह हुई उस समय मेवाड़ के जो इलाक़े बादशाह के हाथ में चले गये थे वे सब पीछे बहाल व

मेवाड़ के महाराणाओं से बांसवाड़ा के नरेशों का राजनैतिक सम्बन्ध

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा, पृष्ठ ११।

दिये गये तथा डूंगरपुर, बांसवाड़ा आदि अन्य इलाक़े भी मेवाड़ के अन्तर्गत कर लेने का हि० स० १०२४ (वि० सं० १६७२=ई० स० १६१५) में फ़रमान कर दिया गया[1], परंतु बांसवाड़ा के स्वामी को मेवाड़ के साथ अपना सम्बन्ध स्थिर रखने में यह भय था कि उसका इलाक़ा मेवाड़ के समीप होने से मेवाड़वाले हर किसी बहाने उसे दबाकर उसकी आंतरिक स्वाधीनता भी नष्ट कर देंगे, इसलिए महारावल समरसिंह ने बादशाह जहांगीर के पास मांडू में उपस्थित हो शाही दरबार से अपना संबंध बढ़ाने का प्रयत्न किया और बादशाह शाहजहां की तख़्तनशीनी के दिनों उसकी सेवा में उपस्थित होकर उसने मनसब प्राप्त किया, जिससे मेवाड़ से उसका सम्बन्ध छूट गया।

महाराणा कर्णसिंह के उत्तराधिकारी जगतसिंह ने इस प्रकार बांसवाड़ा राज्य को अपने हाथ से निकलता देख दमन नीति से काम लिया।

महाराणा जगतसिंह का बांसवाड़े पर सेना भेजना

इसपर महारावल समरसिंह ने मेवाड़ के दाण (चुंगी) के अहलकारों को अपने इलाक़े से निकाल दिया। इसपर क्रुद्ध होकर महाराणा ने अपने प्रधान कायस्थ भागचंद को सेना देकर बांसवाड़े पर भेजा। यद्यपि अधिक समय तक शाही सेना से युद्ध होते रहने के कारण मेवाड़ की शक्ति का ह्रास हो गया था, तो भी बांसवाड़ा राज्य को दबाने की सामर्थ्य उसमें विद्यमान थी। भागचंद के सेना सहित बांसवाड़े पहुंचने पर महारावल पहाड़ों में चला गया। प्रधान भागचंद ने उक्त नगर को घेर लिया और उसे लूटा, एवं छः महीने तक वह वहां रहा। अंत में अपने राज्य की बरबादी देखकर महारावल वहां आया और उसने दो लाख रुपये दंड के देकर मेवाड़ की अधीनता स्वीकार की[2]।

मेवाड़ की इस चढ़ाई के सम्बन्ध में बांसवाड़ा राज्य की ख्यात में कुछ भी नहीं लिखा है, तो भी उदयपुर से पूर्व ५ मील दूर की बेड़वास

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २३६-४१। मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ८१४-१५।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण सातवां, पृष्ठ ३२१।

नामक ग्राम की वावड़ी की वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) की प्रशस्ति में (जो मंत्री भागचंद के पुत्र फ़तहचंद ने लगवाई थी) इस चढ़ाई का उल्लेख है और मेवाड़ के राजसमुद्र नामक तालाव पर पच्चीस शिलाओं पर खुदे हुए 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य' से भी इसकी पुष्टि होती है। वेड़वास की प्रशस्ति में रावल समरसिंह से दस गांव, दाण (चुंगी) की लागत लेना[1] और 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य' में रावल समरसिंह से दो लाख रुपये दंड के लेने का वर्णन है[2], जो विश्वास के योग्य है; क्योंकि ये दोनों प्रशस्तियां महाराणा जगतसिंह के पुत्र महाराणा राजसिंह के समय की वनी हुई हैं। इसलिए इनमें लिखा हुआ वर्णन कपोलकल्पित नहीं हो सकता।

अमरकाव्य से ज्ञात होता है कि यह चढ़ाई वि० सं० १६९२ (ई० स० १६३५) में हुई थी तथा महारावल की तरफ़ से दो लाख रुपये दंड के लेकर प्रधान भागचंद उस(महारावल)को महाराणा के अधीन बनाकर वहां से लौटा था[3]।

---

(१) ······राणाजी श्रीजगत्सिंहजी रा हुकम थी वांसवाला ऊपरे विदा हुवा। वडा वडा उमराव लोग साथे दिया, जाय वांसवालो भाज्यो। मास छः सुधी उठे रह्या, जदी रावल समरसीजी आवे मिल्या। इतरो दंड माथे करे अणे राणाजी श्रीजगत्सिंहजी र पांवे लगाया वांसवाला रा देश रो दांण तथा गांम दश············।

(वेड़वास गांव की वावड़ी की प्रशस्ति से)।

(२) जगत्सिंहनृपाज्ञातो वांसवालापुरे गतः ॥
प्रधानो भागचन्द्राख्यो रावलः सवलो गिरौ ॥ २७ ॥
गतः समरसीनामा ततो लक्षद्वयं ददौ।
दंडं रजतमुद्राणां भृत्यभावं सदादधे ॥ २८ ॥

(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५)।

(३) शते षोडशाग्रे सुवर्षे द्वियुक्ते
नवत्याह्वये श्रीजगत्सिंहवाक्यात्।

महाराणा अमरसिंह और बादशाह जहांगीर के बीच की संधि में एक शर्त यह भी रक्खी गई थी कि चित्तोड़ के क़िले की मरम्मत न कराई

प्रधानोत्तमो भागचंद्रो नृचंद्रः
प्रतस्थे बली बांसवालेक्षणाय ॥
महासेनया संयुतं भागचन्द्रं
ततो बांसवालाप्रविष्टं समीक्ष्य ।
तदा बांसवालाधिपो रावलोऽथा-
भवच्चाबलोप्युद्यतो गन्तुमद्रौ ॥
ततो समरसीनामा रावलो नावलोकितः ।
जयश्रियाभियायुक्तो ह्रियासक्तोभवद्भृशम् ॥
ततो रावलस्य स्वतंत्राः सुमंत्राः
स्वतंत्रस्य रक्षाकरा मंत्रिमुख्याः ।
द्विलक्षप्रमाणस्फुरद्रूप्यमुद्रा-
मितं दंडमेतेऽर्पयंति स्म तस्मै ॥
ततो दंडमुदण्डशौर्यो गृहीत्वा
बलाद्रावलाद् भागचंद्रप्रधानः ।
समाश्वास्य तं चाविलंबा···
तनोत् श्रीजगत्सिंहभूपस्य भृत्यं ॥
बलाद्बांसवालाधिपं रावलं तं
स जित्वा जवाद्भागचंद्रः प्रधानः ।
महाराजराजज्जगत्सिंहभूपं ।
प्रणम्य प्रमोदं तदा तस्य तेने ॥

(अमरकाव्यम्, पत्र ४४, पृ० २) ।

बांसवाड़ा राज्य के अर्थूणा ठिकाने के चौहान सरदार के यहां की पुरानी वंशावली में मेवाड़ की इस चढ़ाई में वहां के ठाकुर भीमसिंह का मारा जाना लिखा है और उसकी साक्षी में एक प्राचीन गीत भी प्रसिद्ध है, जिसमें उसका महाराणा जगतसिंह (प्रथम) की सेना से लड़कर मारा जाना बतलाया है ।

बादशाह शाहजहां का मेवाड़ से बांसवाड़े को पृथक् करना

जावें, परन्तु बादशाह शाहजहां के समय महाराणा जगतसिंह ने उक्त संधि के विरुद्ध कार्यवाही कर चित्तोड़ की मरम्मत कराना आरम्भ किया और डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ एवं सिरोही पर सेनाएं भेजीं तथा उसकी माता जांबुवती की द्वारिका तथा सूकर-क्षेत्र (सोरों) की यात्रा के समय शाही सेवकों के साथ मेवाड़वालों का कहीं-कहीं झगड़ा हो गया, जिससे बादशाह अप्रसन्न हुआ और आगरा से ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के बहाने वि० सं० १७०० (ई० स० १६४३) में अजमेर को रवाना हुआ। इसपर महाराणा ने बादशाह से लड़ाई करना ठीक न समझ अपने कुंवर राजसिंह को शाही सेवा में भेज दिया। इससे उस समय बादशाह शांत हो गया। अजमेर से बादशाह के लौट जाने पर महाराणा ने पूर्ववत् चित्तोड़ की मरम्मत का कार्य जारी रक्खा, किन्तु इसी बीच वि० सं० १७०९ (ई० स० १६५२) में उसका परलोकवास हो गया। फिर महाराणा राजसिंह ने गद्दी पर बैठकर अपने पिता के आरम्भ किये हुए चित्तोड़ की मरम्मत के कार्य को ज़ोर-शोर से आगे बढ़ाया। तब बादशाह (शाहजहां) ने वि० सं० १७११ (ई० स० १६५४) में अजमेर आकर वहां से अपने वज़ीर सादुल्लाख़ां को बड़ी सेना सहित चित्तोड़ की मरम्मत गिराने के लिए भेजा। महाराणा ने जब वहां से अपने राजपूतों को हटा लिया तो वज़ीर चित्तोड़ की मरम्मत को गिराकर लौट गया। फिर महाराणा ने मुंशी चंद्रभान के समझाने से उसी वर्ष अपने कुंवर सुलतानसिंह को बादशाह के पास भेज दिया। महाराणा के इन विरोधी कार्यों का परिणाम यह हुआ कि बादशाह ने पुर, मांडल, ख़ैराबाद, मांडलगढ़, जहाज़पुर, सावर, फूलिया, बनेड़ा, बदनोर आदि परगने मेवाड़ से अलग कर दिये। इसी प्रकार डूंगरपुर, बांसवाड़ा एवं प्रतापगढ़ के इलाक़े भी पृथक् हो गये[1]।

---

(१) डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के इलाक़ों का कुंवर कर्णसिंह के नाम फ़रमान हुआ, जिसका उल्लेख यथाप्रसङ्ग हो चुका है, परन्तु बादशाह शाहजहां की

चित्तोड़ के दुर्ग की मरम्मत गिराने और पुर, मांडल आदि परगने मेवाड़ से पृथक् करने के कारण महाराणा राजसिंह का क्रोध भड़क उठा।

औरंगजेब का महाराणा राजसिंह के नाम बांसवाड़े का फ़रमान भेजना

उसने शाही इलाक़े के संपन्न नगर मालपुरे को लूट लिया। उस समय बादशाह शाहजहां के चारों पुत्र बादशाह बनने के विचार से लड़ने को उद्यत हो रहे थे। इससे बादशाह महाराणा के मालपुरा लूटने पर कुछ न बोला। मुग़ल सल्तनत की कमज़ोरी ही महाराणा को अभीष्ट थी, जिसकी पूर्ति चारों शाहजादों के पारस्परिक संघर्ष से होने लगी। पहले तो महाराणा चुप साध बैठा रहा और उसने किसी को कुछ सहायता न दी। फिर जब देखा कि पासा औरंगज़ेब की तरफ़ पड़ेगा, तब उसने अपने कुंवर सरदारसिंह को जमीयत के साथ उस (औरंगज़ेब) के पास भेज दिया, जो शुजा के साथ की लड़ाई में विद्यमान था।

इस पारस्परिक युद्ध का परिणाम यह हुआ कि बुड्ढे बादशाह शाहजहां को क़ैद कर औरंगज़ेब बादशाह बना तथा दाराशिकोह, शुजा और मुराद मारे गये। इस सहायता के बदले में औरंगज़ेब ने बादशाह बनने पर महाराणा को छः हज़ार का मनसब दिया और जो परगने शाहजहां के समय मेवाड़ से अलग कर दिये गये थे, वे सब डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के इलाक़ों सहित महाराणा के नाम फिर बहालकर ता० १७ ज़िलकाद सन् १०६८ हिज़री (वि० सं० १७१५ भाद्रपद वदि ४ = ई० स० १६५८ ता० ७ अगस्त) को उसका फ़रमान भेज दिया[1]।

नाराज़गी होने से ये इलाक़े वापस ज़ब्त हो गये। इसका वर्णन उदयपुर राज्य के इतिहास में स्पष्टरूप से नहीं मिलता है। संभव है कि महाराणा जगतसिंह के विरोधी कार्यों से उपर्युक्त इलाक़े फिर छीन लिये गये हों। अन्यथा फिर इन इलाक़ों का फ़रमान महाराणा राजसिंह के नाम जारी होने की आवश्यकता न थी।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४२५-३२। मेरा; राजपूताने का इतिहास; जिल्द २, पृ० ८४८।

बादशाह का वह फ़रमान वांसवाड़े के स्वामी को अनुकूल न हुआ, जिससे उस(महारावल समरसिंह)ने महाराणा की अधीनता स्वीकार करना न चाहा। तब महाराणा ने (श्रावणादि) वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) वैशाख वदि ६ (ई० स० १६५९ ता० ५ अप्रेल) मंगलवार को अपने प्रधान फ़तहचंद कायस्थ को पांच हज़ार सवारों की सेना देकर वांसवाड़े पर भेजा। इस सेना में रावत रुक्मांगद (कोठारिये का), राठोड़ दुर्जनसाल (घाणेराव का), रावत रघुनाथसिंह (सलूंबर का), शक्तावत मुहकमसिंह (भींडर का), रावत राज़सिंह चूंडावत (वेगूं का), माधवसिंह सीसोदिया, रावत मानसिंह सारंगदेवोत (कानोड़वालों का पूर्वज), राठोड़ माधवसिंह, सोलंकी दलपत (देसूरी का), चौहान उदयकर्ण (कोठारिये के रावत का पुत्र), शक्तावत गिरधर, शक्तावत सूरसिंह, ईडरिया राठोड़ जोधसिंह, झाला महासिंह, रावल रणछोड़दास आदि मुख्य थे। फ़तहचंद के सेना सहित वांसवाड़े पहुंचने पर रावल समरसिंह उससे मिला और एक लाख रुपये, देश दाण (चुंगी), दस गांव, एक हाथी तथा हथनी महाराणा को देना स्वीकार कर[1] उसने उस(महाराणा)से सुलह करली। 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य' में यह भी लिखा है कि उक्त महाराणा ने (जब समरसिंह उदयपुर आया तब) दस गांव और दाण का स्वत्व तथा वीस हज़ार रुपये छोड़ दिये[2]। इसका परिणाम यह हुआ कि उस समय उक्त दोनों राज्यों में मेल हो गया।

महाराणा राजसिंह का वांसवाड़े पर अपने प्रधान फतहचंद को भेजना

---

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण आठवां, पृ० ४३४-३५। मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ८५०।

(२) शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे पंचदशाभिधे।
वैशाखे कृष्णनवमीदिवसे भौमवासरे ॥ १६ ॥
महाराजसिंहाज्ञया वांसवाले
रणार्थं फतेचंद्रमंत्री प्रतस्थे।

महारावल समरसिंह के समय के नीचे लिखे शिलालेख, दानपत्र आदि मिले हैं—

महारावल के समय के शिलालेख व दानपत्र आदि

(१) भूआसा गांव का वि० सं० १६७१ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १६१५ ता० २२ फ़रवरी) बुधवार का शिलालेख।

(२) भांवरिया गांव का वि० सं० १६७५ मार्गशीर्ष सुदि १५ (ई० स० १६१८ ता० २१ नवम्बर) का दानपत्र, जिसमें महारावल के उज्जैन तथा मालवे से पीछे लौटने पर महारावल की माता श्यामबाई-द्वारा किये हुए उत्सव पर एक गांव दान करने का उल्लेख है।

(३) नागावाड़ा गांव का (आषाढादि) वि० सं० १६७५ (चैत्रादि १६७६, अमांत) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि १२ (ई० स० १६१९ ता० ३० मई) का शिलालेख, जिसमें बादशाह सलीम (जहांगीर) की सेना लेकर राठोड़ मनोहरदास के पुत्र पेमा के आने पर राठोड़ केशोदास के साथी पन्द्रह व्यक्तियों के मारे जाने का उल्लेख है[1]।

(४) बांसवाड़े से प्राप्त मत्स्यपुराण की (आषाढादि) वि० सं० १६७६ (चैत्रादि १६७७) वैशाख सुदि १ (ई० स० १६२० ता० २३ अप्रेल)

चमूं पंचराजत्सहस्राश्ववारै-
र्महाठक्कुरैर्गुठितां तां गृहीत्वा ॥ १७ ॥
ततः समरसिंहस्य रावलस्याबलस्य वै।
लक्षसंख्यारूप्यमुद्रादेशदानं च हस्तिनीम् ॥ १८ ॥
गजं दंडं दशग्रामान् कृत्वा पातयदंघ्रिषु।
राणेन्द्रस्य फतेचंद्रो भृत्यं कृत्वैव रावलम् ॥ १९ ॥
दशग्रामान् देशदानं रूप्यमुद्रावलेर्नृपः (?)।
सद्विंशतिसहस्राणि रावलाय ददौ मुदा ॥ २० ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८।

(१) यह सेना कहां की थी, यह निश्चितरूप से पाया नहीं जाता। संभव है कि बांसवाड़ा के निकट के मालवे के इलाक़े की कोई सेना इधर आई हो।

रविवार की लिखी हुई पुस्तक, जिसमें उसके महारावल समरसिंह के समय में लिखी जाने का उल्लेख है[1]।

(५) गढ़ी पट्टे के आंजणा गांव के शांतिनाथ के जैनमंदिर का वि० सं० १६८२ आश्विन सुदि ६ (ई० स० १६२५ ता० ३० सितम्बर) का शिलालेख।

(६) चींच गांव के आमलिया तालाव की पाल पर का वि० सं० १६८४ वैशाख सुदि १० (ई० स० १६२७ ता० १५ अप्रेल) रविवार का लेख।

(७) बांसवाड़ा के वासुपूज्य के दिगंबर जैनमंदिर का वि० सं० १६८६ (अमांत) श्रावण (पूर्णिमांत भाद्रपद) वदि ५ (ई० स० १६२६ ता० ३० जुलाई) गुरुवार का शिलालेख।

(८) सायण गांव के शिवमंदिर के स्तंभ पर का वि० सं० १६६३ शाके १५५८ पौष सुदि ५ (ई० स० १६३६ ता० २२ दिसंबर) गुरुवार का शिलालेख।

(९) पीपलूआ गांव का वि० सं० १६६३ माघ सुदि १५ (ई० स० १६३७ ता० ३० जनवरी) सोमवार का दानपत्र, जिसमें वह गांव देवीदास मुकुंद को दान करने का उल्लेख है।

(१०) वेड़वास गांव में एक हल भूमि दान करने का वि० सं० १७०० मार्गशीर्ष सुदि ७ (ई० स० १६४३ ता० ८ नवंबर) बुधवार का दानपत्र।

(११) बड़ी बसी (गांव) का वि० सं० १७०२ (अमांत) आषाढ

---

(१) संवत् १६ वर्षे षट्सप्ततितमे मासे वैशाखसंज्ञिके।
शुक्लपक्षप्रतिपदि लिखितं रविवासरे ॥ १ ॥
मात्स्यं पुराणमखिलं श्यामदासद्विजन्मना।
रावलश्रीसमरसिंहे राज्यं कुर्वति मानदे ॥ २ ॥

(मूलपुस्तक का अंतिम भाग)।

(पूर्णिमांत श्रावण) वदि १२ (ई० स० १६४५ ता० १० जुलाई) का शिलालेख।

(१२) वांसवाड़ा की महासतियों में वि० सं० १७०७ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १६५० ता० १८ नवंबर) रविवार का शिलालेख, जिसमें श्यामबाई (समरसिंह की माता) की छत्री बनवाये जाने का उल्लेख है।

(१३) घंटाला गांव का (आषाढादि) वि० सं० १७०७ (चैत्रादि १७०८, अमांत) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि १३ (ई० स० १६५१ ता० ५ जून) का दानपत्र।

महारावल का देहांत

वि० सं० १७१७ (अमांत) भाद्रपद (पूर्णिमांत आश्विन) वदि १४ (ई० स० १६६० ता० २३ सितंबर) को महारावल समरसिंह का परलोकवास हुआ[1]। उसके पुत्र महारावल कुशलसिंह ने उस-(समरसिंह)के स्मारक स्वरूप वांसवाड़े में छत्री बनवाकर (आषाढादि) वि० सं० १७३६ (चैत्रादि १७३७, अमांत) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि ५ (ई० स० १६८० ता० ७ जून) सोमवार को उसकी प्रतिष्ठा करवाई।

महारावल की राणियां और संतति

समरसिंह के १२ राणियां थीं। उनमें से किशनगढ़वाली राठोड़ राणी आनंदकुंवरी के गर्भ से कुंवर कुशलसिंह का जन्म हुआ, जो वांसवाड़े की गद्दी पर बैठा और सूंथवाली परमार राणी प्रेमकुंवरी के गर्भ से कुंवर केसरीसिंह का जन्म हुआ, जिसकी मृत्यु बाल्यकाल ही में हो गई।

---

(१) स्वस्ति श्रीसंवत् १७१७ वर्षे शाके १५८२ प्रवर्त्तमाने भादरवा (भाद्रपद) वदि १४ दिने महाराजाधिराज महाराऋोल (महारावल) श्रीसमरसिंहजी श्रीवैकुंठलोक पधारा.............तेनी महाराऋो(व)ल श्रीकुशलसिंहजी ये करावी संवत् १७३६ वर्षे जेठ (ज्येष्ठ) वदि ५ सोमवार ने दिवसे छत्री करावी ने प्रतिष्ठा कीधी।

(महारावल समरसिंह की छत्री के स्मारक लेख से)।

महारावल का व्यक्तित्व

महारावल समरसिंह दानी राजा था। उसने अपने राज्यकाल में कई गांव दान किये। उसका दिल्ली के मुगल दरबार से राजनैतिक संबंध दृढ़ हुआ और उसे मनसब भी प्राप्त हुआ, परन्तु उसने अपनी शक्ति का विकास न किया, जिससे उसके मनसब में वृद्धि नहीं हुई। इसका कारण यही ज्ञात होता है कि मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह और राजसिंह ने बांसवाड़े पर चढ़ाई कर उसकी बढ़ती हुई शक्ति को रोक दिया था।

पांचवां अध्याय

महारावल कुशलसिंह से उम्मेदसिंह तक

कुशलसिंह

महारावल समरसिंह का देहान्त होने पर वि० सं० १७१७ (ई० स० १६६०) में उसका कुंवर कुशलसिंह राज्य-सिंहासन पर बैठा।

महाराणा राजसिंह का डांगल ज़िले के २७ गांव खालसा करना

महारावल कुशलसिंह ने अपने पिता समरसिंह के समय मेवाड़ से की हुई संधि के विरुद्ध आचरण करना आरम्भ किया। इसपर उसके और मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के बीच पुनः विरोध की आग भड़क उठी, जिससे महाराणा ने बांसवाड़े पर अपनी सेना रवाना की। उस(महाराणा)-की परमार राणी रामरसदे की बनवाई हुई देवारी दरवाज़े के निकटवर्त्ती त्रिमुखी बावड़ी की वि० सं० १७४३ वैशाख सुदि २ (ई० स० १६८६ ता० १४ अप्रेल) बुधवार की प्रशस्ति में लिखा है कि महाराणा ने महारावल कुशल-सिंह से दंड वसूल किया[1]।

मेवाड़ के इतिहास 'वीरविनोद' में बांसवाड़ा राज्य के इतिहास के प्रसङ्ग में कविराजा श्यामलदास ने लिखा है—

"महारावल कुशलसिंह ने भी मेवाड़ से आज़ाद होने का प्रयत्न किया। उसपर महाराणा राजसिंह ने उसके डांगल ज़िले के २७ गांव ज़ब्त कर लिये और महारावल कुशलसिंह से मुचलका लिखवा लिया[2]।"

---

(१) ......दंडं च बांसवाला स्थितेरुपरिकुशलसिंहस्य ॥२७॥

वीरविनोद; भाग २, पृ० ६११।

(२) प्रकरण ग्यारहवां।

'वीरविनोद' के इस कथन से ज्ञात होता है कि डांगल ज़िले के सत्ताईस गांव महाराणाओं की तरफ़ से बांसवाड़ावालों की जागीर में होंगे। यही कारण है कि

वांसवाड़े पर महाराणा राजसिंह की चढ़ाई कब हुई, यह उपर्युक्त त्रिमुखी वावड़ी की प्रशस्ति से स्पष्ट नहीं होता, किन्तु वांसवाड़ा राज्य के नरवाली गांव के एक स्मारक लेख में चौहान नारू का वि० सं० १७३० ज्येष्ठ वदि ७ (ई० स० १६७४ ता० १५ जून) को महाराणा की सेना से लड़कर काम आना लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि महारावल कुशलसिंह पर महाराणा राजसिंह की चढ़ाई उक्त संवत् में हुई थी[1]।

वांसवाड़ा राज्य का महारावल के नाम फ़रमान होना

रूपनगर की राठोड़ राजकुमारी से विवाह करने, श्रीनाथजी आदि की मूर्तियों को मेवाड़ में रखने, जज़िया के वारे में वादशाह को कठोर पत्र भेजने एवं जोधपुर के शिशु महाराजा अजीतसिंह को अपने यहां रखने के कारण नाराज़ होकर औरंगज़ेव ने महाराणा राजसिंह पर चढ़ाई कर दी। यही नहीं, उसने वांसवाड़ा आदि राज्यों को (जिनका फ़रमान उक्त महाराणा के नाम पर हुआ था) मेवाड़ से पृथक् कर वांसवाड़े का फ़रमान महारावल कुशलसिंह के नाम कर दिया, जिससे पुनः उस (कुशलसिंह)का शाही दरवार से सम्वन्ध स्थापित होकर वांसवाड़ा राज्य गुजरात के सूवे से जोड़ दिया गया तथा उसके ख़िराज के १००००० रुपये प्रतिवर्ष मालवे के नाज़िम-द्वारा वसूल होकर वादशाह के यहां पहुंचने लगे[2]।

महारावल कुशलसिंह-द्वारा उस(महाराणा राजसिंह)की आज्ञाओं की उपेक्षा होने पर महाराणा ने उनपर पीछा अपना अधिकार कर लिया हो।

(१) संवत् १७३० वरीषे (वर्षे) जेठवदि ७ दी(दि)ने वार सुकरा (शुक्रे) सवण (चौहाण) नरू (नारू) जी राणाजी नी फोज काम् आव्या............।

(मूल लेख की छाप से)।

(२) नवावअली और सेडन; 'मिराते-अहमदी' के ख़ातिमे का अंग्रेज़ी अनुवाद (गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज़, संख्या ४३), पृ० १६०।

बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात में लिखा है—"वि० सं० १७३४ (ई० स० १६७७) में बादशाह (औरंगज़ेब) की सेना ने उदयपुर पर चढ़ाई की, तब महाराणा के बुलाने पर वह (कुशलसिंह) उदयपुर गया। जब शाही-सेना उदयपुर के प्रसिद्ध जगन्नाथराय (जगदीश) के विशाल मंदिर को गिराने लगी, तब महारावल ने युद्ध कर उस मंदिर को बचाया[1]।" ख्यात का यह कथन विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि

ख्यात और महारावल कुशलसिंह

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात; पत्र ७, पृ० १।

महारावल समरसिंह और कुशलसिंह के समय बांसवाड़े पर महाराणा जगतसिंह और राजसिंह की चढ़ाइयां होने से स्पष्ट है कि बांसवाड़ा के स्वामी, महाराणा के नाम बांसवाड़ा का फ़रमान होने पर भी अपना राजनैतिक सम्बन्ध मुग़ल साम्राज्य से रखना चाहते थे, जो मेवाड़वालों को अभीष्ट न था। इसलिए वे समय-समय पर अपनी सेना भेज बांसवाड़ावालों को दबाते रहे। जब मेवाड़ की प्रबल सेना जाकर बांसवाड़ा को घेर लेती, उस समय महारावल अपने राज्य की बरबादी देख उनसे मेल कर लेते और जब शाही दरबार की मेवाड़वालों पर नाराज़गी होती, तब वे पीछे शाही सेवा में जा पहुंचते तथा वहां रहकर मेवाड़ के पंजे से छूटने का उद्योग करते रहते। ऐसी दशा में मेवाड़ के साथ उनका विरोध रहना स्वाभाविक ही था। महाराणा राजसिंह ने महारावल से डांगल ज़िले के २७ गांवों को छोड़ देने का मुचलका लिखा लिया था। ऐसी स्थिति में जब महाराणा राजसिंह पर बादशाह औरंगज़ेब ने वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७९) में चढ़ाई की तब उदयपुर जाकर महारावल का शाही सेना से युद्ध करना असंभव है। यदि वह (कुशलसिंह) बादशाह की चढ़ाई के समय महाराणा के पक्ष में लड़ता तो 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य' और 'राजविलास' नामक ग्रन्थों में उसका उल्लेख अवश्य होता। मेवाड़ के महाराणाओं के साथ सद्व्यवहार न होने पर भी महारावल कुशलसिंह, उस समय के बड़े शक्तिशाली बादशाह औरंगज़ेब से अकारण ही विरोध कर शाही सेना से लड़े, यह बात मानी नहीं जा सकती।

महारावल कुशलसिंह का महाराणा से मेल नहीं था। यदि उसका मेवाड़ से अच्छा व्यवहार होता तो वह डूंगरपुर के स्वामी जसवन्तसिंह की भांति राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर वहां जाकर सम्मिलित होता और अन्य नरेशों की भांति उसके पास भी सिरोपाव, हाथी और घोड़े भेजे जाते, किन्तु उस अवसर पर महारावल का वहां न जाना और उसके पास उपहार का न पहुंचना, इस बात का

मेवाड़ पर बादशाह औरंगज़ेब की चढ़ाई वि० सं० १७३४ में नहीं, किन्तु वि० सं० १७३६ (ई० स० १६७६) में हुई थी, जिसका वर्णन कई स्थलों पर लिखा हुआ मिलता है। उनमें कहीं भी इस युद्ध में बांसवाड़े के महारावल का सम्मिलित होना नहीं लिखा है। उसका तो महाराणा राजसिंह से विरोध था। फिर बादशाह-द्वारा बांसवाड़ा राज्य उस(कुशलसिंह)के नाम बहाल होने से द्वेषाग्नि और भी बढ़ गई थी।

उस(कुशलसिंह)के लखनऊ के नवाब से लड़ने, वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७५) के लगभग उज्जैन में मुसलमानों और बूंदी के हाड़ा क्षत्रियों से युद्ध होने पर हाड़ा राजपूतों के काम आने तथा उनके शव मुसलमानों-द्वारा रोके जाने पर कुशलसिंह का युद्ध कर उन शवों को ले आने, देवलिया (प्रतापगढ़) और मालवेवालों तथा डूंगरपुर के महारावल जसवन्तसिंह से युद्ध करने आदि की और भी बातें ख्यात में लिखी हैं[1], किन्तु उनका अन्य किसी इतिहास से मिलान नहीं होता। ऐसी अवस्था में ख्यात में लिखी हुई ये बातें भी कपोलकल्पित ही हैं।

ई० स० १६०८ (वि० सं० १६६५) में प्रकाशित राजपूताना गैज़ेटियर के अन्तर्गत बांसवाड़ा राज्य के गैज़ेटियर में लिखा है—"महारावल कुशलसिंह ने भीलों का दमन कर कुशलगढ़ आबाद किया और उसे ठाकुर अखेराज को जागीर में दे दिया[2]", परन्तु उसी पुस्तक में ऐसा भी लिखा है कि कुशलगढ़ ठाकुर अखेराज ने कुशला भील को मारकर उसके नाम पर आबाद किया[3]। इन दोनों में कौनसा कथन ठीक है इसके विषय में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं

कुशलगढ़ का आबाद होना

प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मेवाड़वालों से उसका वैमनस्य था। संभव तो यह है कि बादशाह की तरफ़ से बांसवाड़ा का फ़रमान प्राप्त होने पर महारावल, महाराणा के विरुद्ध शाही सेना में सम्मिलित होकर लड़ने गया हो।

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात; पत्र ७, पृ० १।

(२) बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; पृ० १६०।

(३) वही; पृ० १६०।

कहा जा सकता, परन्तु अधिकांश नगरों और गांवों के नाम उनके बसानेवालों के नाम पर रक्खे जाते हैं, ऐसी स्थिति में कुशलगढ़ का महारावल कुशलसिंह-द्वारा बसाया जाना अधिक संभव हो सकता है।

जोधपुर राज्य के कविराजा बांकीदास ने लिखा है—"रावल कुशलसिंह ने रामावत राठोड़ों को अपनी सेवा में रखकर पौने दो सौ गांव पट्टे में दिये, जो महियड़ का इलाक़ा कहलाता है[1]।"

मालवे मे राठोड़ों की जागीरें मुग़ल बादशाहों की तरफ़ से चली आती थीं और वे शक्तिशाली हो गये थे। ऐसी दशा में कुशलसिंह का महियड़ इलाक़े के १७५ गांव (जिनके नाम आदि कुछ नहीं दिये हैं) ठाकुर अखेराज को जागीर में देने की बात कहां तक उपयुक्त है, यह निश्चय रूप से कहा नहीं जा सकता। संभव है, महारावल कुशलसिंह ने ठाकुर अखेराज को कुशलगढ़ इलाक़े की जागीर दी हो, परन्तु यह निश्चित है कि तांबेसरा का पट्टा बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से कुशलगढ़ को जागीर में दिया गया था, जैसा कि मेजर के० डी० अर्सकिन ने अपने बांसवाड़ा राज्य के गैज़ेटियर में लिखा है[2]।

धार राज्य के ऐतिहासिक पत्रों में कुछ ऐसे पत्र भी विद्यमान हैं, जिनसे कुशलगढ़ का बांसवाड़े से पृथक् मरहठों को खिराज़ देना प्रकट होता है[3]।

कुशलसिंह के समय के वि० सं० १७१८ से ३७ (ई० स० १६६१ से ८०) तक के नीचे लिखे हुए लेखादि मिले हैं—

महारावल के समय के शिलालेखादि

(१) बांसवाड़ा से प्राप्त (आषाढादि) वि० सं० १७१७ (चैत्रादि १७१८) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६६१ ता० २३ अप्रेल) भौमवार की लिखी हुई, 'ब्राह्मणभाग अग्निरहस्यकांड' नामक पुस्तक। यह पुस्तक महारावल

(१) ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६।

(२) बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; पृ० ११०।

(३) लेले व ओक; 'धारच्या पवारां चे महत्व व दर्जा', पृ० ३६ और ४०।

कुशलसिंह के समय में ही लिखी गई थी[1]।

(२) वड़ा सालिआ गांव का (आषाढादि) वि० सं० १७२१ (चैत्रादि १७२२, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ५ (ई० स० १६६५ ता० २४ अप्रेल) का दानपत्र, जिसमें जोशी केशवा, पूंजा आदि को एक हल भूमि सूर्यग्रहण के अवसर पर दान करने का उल्लेख है।

(३) सीलवण गांव का (आषाढादि) वि० सं० १७२३ (चैत्रादि १७२४) वैशाख सुदि १३ (ई० स० १६६७ ता० २८ अप्रेल) का दानपत्र जिसमें व्यास उद्धव को भूमिदान करने का उल्लेख है।

(४) सरवाणिया गांव का वि० सं० १७२४ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १६६७ ता० २५ जुलाई) का दानपत्र जिसमें महारावल कुशलसिंह की राणी अनूपकुंवरी (तंवर) का चंद्रग्रहण के अवसर पर सरवाणिया गांव में दवे लाला को भूमिदान करने का वर्णन है।

(५) बांसवाड़ा से प्राप्त वि० सं० १७२४ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि ३० (ई० स० १६६७ ता० ७ अक्टोबर) सोमवार की लिखी हुई 'ब्राह्मणभागएकपादकाख्यकांड' नामक पुस्तक, जो महारावल कुशलसिंह के समय में ही लिखी गई थी[2]।

(६) बांसवाड़ा से प्राप्त (आषाढादि) वि० सं० १७२५ (चैत्रादि १७२६ अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि १० (ई० स० १६६६

---

(१) संवत् १७१७ वर्षे वैशाख शुदि ५ भौमे अद्येह श्रीवंशपुरवास्तव्य महाराउलश्रीकुशलसिंहजीविजयराज्ये आभ्यंतरनागरज्ञातीय याज्ञिकनानासुतपूंजालिखितं आत्मपठनार्थं तथा परोपकारार्थं लिखितं।

(२) स्वस्ति संवत् १७२४ वर्षे आश्विनमासे कृष्णपक्षे अमावास्यायां तिथौ सोमवासरे अद्येह श्रीवागड़देशे वंशपुराधीश्वरमहीमहेन्द्रमहाराजाधिराजमहाराउलश्री ५ कुशलसिंहविजयराज्ये आभ्यंतरनागरज्ञातीय दवे नानाठीकरियासुतेन दामोदरेण विनायकपुरस्थेन लिखितं पूरितं।

ता० १५ अप्रेल) गुरुवार की लिखी हुई 'ब्राह्मणभागअग्निरहस्यकांड नामक पुस्तक, जो महारावल कुशलसिंह के समय में ही लिखी गई थी'[1]।

(७) बांसवाड़े का वि० सं० १७२७ माघ सुदि ५ (ई० स० १६७१ ता० ५ जनवरी) का दानपत्र, जिसमें महारावल कुशलसिंह की माता आनंद-कुंवरी-द्वारा गंगाजी के महोत्सव पर भूमिदान किये जाने का उल्लेख है।

(८) नरवाली गांव में माही नदी के किनारे की छत्रियों में (आषाढादि) वि० सं० १७३० (चैत्रादि १७३१ अमांत) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि ७ (ई० स० १६७४ ता० १५ जून) का शिलालेख, जिसमें चौहान नारू के महाराणा की सेना से लड़कर काम आने और उसके पुत्र कणजी(करणजी)-द्वारा उस(नारू)का स्मारक बनाये जाने का उल्लेख है[2]।

(९) बांसवाड़े का वि० सं० १७३४ आषाढ सुदि ५ (ई० स० १६७७ ता० २५ जून) का दानपत्र, जिसमें राजधानी बांसवाड़ा में कुशलबाग़ की तरफ़ का एक कुआँ वैशाखी पूर्णिमा पर चंद्रग्रहण में व्यास उद्धव को दान दिये जाने का उल्लेख है।

(१०) तलवाड़ा गांव का वि० सं० १७३६ भाद्रपद सुदि १ (ई० स० १६७९ ता० २७ अगस्त) का ताम्रपत्र, जिसमें पंडा सुखा, सवा आदि को भूमिदान करने का उल्लेख है।

(११) बांसवाड़ा की माही नदी के तटपर की महारावल समरसिंह की छत्री बनवाने का (आषाढादि) वि० सं० १७३६ (चैत्रादि १७३७, अमांत) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि ५ (ई० स० १६८० ता० ७ जून) सोमवार का लेख।

---

(१) संवत् १७२५ वर्षे चैत्रवदि १० गुरावद्येह श्रीवंशपुरवास्तव्य महाराउलश्रीकुशलसिंहविजयराज्ये आभ्यन्तरनागरज्ञातीययाज्ञिककाका-सुतवासुदेवलिखितं स्वभातृपठनार्थं।

(२) देखो ऊपर पृ० १०५।

(१२) सुन्नणपुर गांव से मिला हुआ (आषाढादि) वि० सं० १७४२ (चैत्रादि १७४३) वैशाख सुदि २ (ई० स० १६८६ ता० १४ अप्रेल) का शिलालेख, जिसमें मेवाड़ के महाराणा की सेना के साथ के युद्ध में कुंवर अजबसिंह के सेनापतित्व में गोहिल मलक के काम आने का उल्लेख है[1]।

वि० सं० १७४४ माघ सुदि १ (ई० स० १६८८ ता० २३ जनवरी) को महारावल कुशलसिंह का देहांत हो गया[2]।

महारावल का देहांत और संतति

उसके ८ राणियां थीं, जिनसे अजबसिंह, सोभागसिंह,[3] अमरसिंह[4] तथा कीर्तिसिंह[5] नामक चार कुंवर हुए। बांसवाड़ा राज्य की पश्चिमी सीमा पर कुशलकोट[6] और

---

(१) संवत् १७४२ वर्षे वेसाक सुदि [५] दिने गोहिल मलकजी दिवाणजीरि फोज माहे काम आव्या कवर अजबसिघजी आगल।

(मूल लेख की प्रतिलिपि से)।

वि० सं० १७४२ और १७४३ में मेवाड़ में महाराणा जयसिंह राज्य करता था, इसलिए यह लड़ाई महाराणा जयसिंह के समय कुंवर अजबसिंह से होना चाहिये, परन्तु मेवाड़ के इतिहास में इस युद्ध का कोई वर्णन नहीं है।

(२) ॥ श्रीसंवत् १७४४ वर्षे माघशुदि १ दिने महाराउलश्रीकुशलसिंघजी देवलोक पधारा········।

(महारावल की छत्री के लेख की छाप से)।

(३) कुंवर सोभागसिंह का जन्म महारावल कुशलसिंह की राणी अनूपकुंवरी (तंवर) के उदर से हुआ था। बड़वे की ख्यात में लिखा है कि सोभागसिंह के वंशधर डांगरडूंगर के जागीरदार हैं।

(४) अमरसिंह को तेजपुर जागीर में मिला था, परन्तु फिर खालसा होकर उस (अमरसिंह) के पांचवें वंशधर को जागीर में हेवदा गांव मिला।

(५) कीर्तिसिंह को आमका व बोरीगामा मिला था, इसलिए उसके वंशज वहां पर निवास करते हैं।

(६) यह गांव डूंगरपुर राज्य की सीमा के निकट है।

उत्तरी सीमा पर कुशलपुरा[1] गांव महारावल कुशलसिंह के बसाये हुए तथा बांसवाड़े में कुशलबाग भी उसी का बनवाया हुआ माना जाता है।

अजबसिंह

वि० सं० १७४४ माघ सुदि १ (ई० स० १६८८ ता० २३ जनवरी) को महारावल अजबसिंह का राज्याभिषेक हुआ।

उस समय दिल्ली के सिंहासन पर बादशाह औरंगज़ेब आरूढ था। वह मेवाड़ के महाराणाओं से नाराज़ था, इसलिए बांसवाड़े के स्वामी मेवाड़वालों की उपेक्षा करने लगे। तब महाराणा जयसिंह ने बांसवाड़े पर चढ़ाई कर महारावल को जा दबाया[2]। बांसवाड़ा राज्य के लोहारिया गांव के वि० सं० १७४८ (ई० स० १६६१) के लेख से जान पड़ता है कि उक्त संवत् में मेवाड़ के महाराणा की यह चढ़ाई हुई थी[3]। महाराणा जयसिंह और महारावल अजबसिंह के बीच भी यह विरोध बना ही रहा, जिससे

महाराणा जयसिंह का बांसवाड़े पर सेना भेजना

(१) कुशलपुरा सीसोदिया शक्तावतों की जागीर में है और बांसवाड़ा राज्य में प्रथम वर्ग का ठिकाना है, जो राज्य की उत्तरी सीमा में प्रतापगढ़ के इलाक़े की तरफ़ है।

(२) वंशपत्रपुरं भंक्त्वा जित्वा चाजवरावलम्।
तमेवास्थापयत्तत्र कृत्वा दंडं यथाविधि ॥ १२७ ॥

(अमरसिंहाभिषेक काव्य)।

(३) संवत् १७४८ वर्षे आषाढ़ सुद ५ डोलीआ सामजी दीवाणजी नी फोज काम आवा......... ।

(मूल लेख की छाप से)।

बांसवाड़े पर महाराणा जयसिंह की इस चढ़ाई का एक कारण यह भी हो सकता है कि महारावल अजबसिंह ने उक्त महाराणा और उसके कुंवर अमरसिंह के बीच विरोध हो जाने का अवसर पाकर उपर्युक्त छांगल ज़िले के गांवों पर पुनः अपना अधिकार कर लिया हो।

वि० सं० १७५५ (ई० स० १६९८) में महाराणा को फिर वहां सेना भेजनी पड़ी[1]।

इसी वर्ष के आश्विन मास (सितम्बर) में महाराणा जयसिंह का देहांत हो गया और उसका पुत्र अमरसिंह (दूसरा) गद्दी पर बैठा। मेवाड़ के इतिहासकर्त्ताओं का कथन है कि उस(अमरसिंह)की गद्दीनशीनी के अवसर पर बांसवाड़े का स्वामी अजबसिंह टीका लेकर न आया, जिससे उक्त महाराणा ने अपनी गद्दीनशीनी के प्रारंभ में ही बांसवाड़े पर सेना भेजने की आज्ञा दी। इसपर बांसवाड़े के वकील ने बादशाह की सेवा में यह शिकायत पहुंचाई कि महाराणा की सेना बांसवाड़े के इलाक़े का नुक़सान कर रही है। तब वज़ीर असदखां आदि शाही अफ़सरों ने महाराणा को ऐसी कार्रवाई न करने के लिए लिखा। महाराणा ने उत्तर दिया कि बांसवाड़े के डांगल ज़िले के २७ गांव महाराणा राजसिंह ने महारावल कुशलसिंह से ज़ब्त कर लिये थे, उनपर पीछा अजबसिंह ने अधिकार कर लिया है। बहुत कुछ तहक़ीक़ात के बाद वज़ीर असदखां ने महारावल (अजबसिंह) को ता० २५ ज़िल्क़ाद सन् ४६ जुलूस आलमगीरी (हि० स० १११३= वि० सं० १७५९ वैशाख वदि १२=ई० स० १७०२ ता० १२ अप्रेल) को उक्त गांवों पर किसी तरह का दख़ल न करने के लिए लिखा[2]।

मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह (दूसरा) की चढ़ाई

---

(१) संवत् १७५४ वरषे वइसाख (वैशाख) वदि २ दिने नायक सरदारू काम आव्या दिवाणजा (जी) नी फोज आवी तारे।

(बांसवाड़े के सतीपोल नामक दरवाज़े के पास के लेख की छाप से)।

(२) वीरविनोद (भाग २, प्रकरण ग्यारहवां) में म० म० कविराजा श्यामलदास ने इस ख़त को उद्धृत किया है, जो नीचे लिखे अनुसार है—

"बराबरीवालों में उम्दह रावल अजबसिंह नेकनीयत रहै। इन दिनों में बुज़ुर्ग ख़ानदान राणा अमरसिंह के लिखने से अर्ज़ हुआ कि उस सरदार ने भीलवाड़ा वग़ैरह २७ गांवों पर जो डांगल ज़िले में राणा के सरहद्दी इलाक़े पर हैं और जिनकी बाबत राणा एक महज़र उनके बाप कुशलसिंह और डूंगरपुर के ज़मींदार रावल खुमाणसिंह के

ख्यात में लिखा है कि महारावल अजबसिंह का बादशाही सेना से वि० सं० १७५१ में युद्ध हुआ, जिसमें शाही सेना की हार हुई और नवाब रण-बाज़खां मारा गया। उस(अजबसिंह)ने वि० सं० १७५२ में सूंथ को लूटा तथा वि० सं० १७५५ में भीलों की पालों पर चढ़ाई कर उन्हें वश में किया। इस शोध के युग में ख्यात का उपर्युक्त कथन ज्यों का त्यों स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि उसका अन्य इतिहासों से मिलान नहीं होता तथा ख्यात में उल्लिखित ये बातें अधिकांश में अतिशयोक्ति पूर्ण हैं।

महारावल के अन्य कार्य

महारावल अजबसिंह के समय के वि० सं० १७४८ से १७५८ (ई० स० १६९१ से १७०१) तक के नीचे लिखे शिलालेख व दानपत्र मिले हैं—

महारावल के समय के शिलालेखादि

(१) लोहारिया गांव का वि० सं० १७४८ आषाढ़ सुदि ५ (ई० स० १६९१ ता० २० जून) का शिलालेख, जिसमें डोलिया शामजी का मेवाड़ की सेना से युद्ध कर काम आने का उल्लेख है[1]।

(२) मुकनपुरा गांव से मिला हुआ (आषाढादि) वि० सं० १७५० (चैत्रादि १७५१) चैत्र सुदि १ (ई० स० १६९४ ता० १६ मार्च) का दानपत्र, जिसमें डोलिया धोमण को वड़ीपड़ार गांव में तालाब की भूमि देने का उल्लेख है।

(३) सेवना गांव का वि० सं० १७५२ (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि (ई० स० १६९५ नवम्बर) का दानपत्र, जिसमें सादड़ी के निकट का सेवना गांव जोशी रतना के पुत्र राधानाथ और रामकिशन को सूर्यग्रहण के अवसर पर दान करने का उल्लेख है।

हाथ की रखता है, बेफाइदह दावा करके ज़ुल्म और दख़ल दे रक्खा है। यह बात बादशाही दरगाह में बहुत ख़राब मालूम होती है और हुक्म के मुवाफ़िक लिखा जाता है कि इस कागज़ के पहुंचते ही राणा के इलाक़े पर बेजा दख़ल न करे। इस मुआमले में हज़ूर की तरफ़ से सख़्त ताकीद समझें।"

(१) देखो ऊपर पृष्ठ ११२।

(४) बांसवाड़ा के सतीपोल दरवाज़े का (आषाढादि) वि० सं० १७५४ (चैत्रादि १७५५, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि २ (ई० स० १६९८ ता० १७ अप्रेल) का शिलालेख, जिसमें नायक सरदार का मेवाड़ की सेना से लड़कर मारे जाने का उल्लेख है[1]।

(५) बांसवाड़ा के गांवेटा सवा के नाम का (आषाढादि) वि० सं० १७५५ (चैत्रादि १७५६) ज्येष्ठ सुदि २ (ई० स० १६९९ ता० २० मई) का दानपत्र, जिसमें उपर्युक्त गांवेटे ब्राह्मण को सूर्यग्रहण के अवसर पर बांसवाड़े के चोरेरा तालाव का आधा हिस्सा महाराजकुमार भीमसिंह-द्वारा दान किये जाने का उल्लेख है[2]।

(६) मोटा गड़ा (गांव) से मिले हुए वि० सं० १७५८ (अमांत) श्रावण (पूर्णिमांत भाद्रपद) वदि २ (ई० स० १७०१ ता० ९ अगस्त) के ४ शिलालेख, जिनमें ठाकुर सरदारसिंह की सहायतार्थ झाला वनराय, अजबसिंह, वाघेला राजसिंह और मादावत अखेराज के काम आने का उल्लेख है।

महारावल अजबसिंह का देहांत वि० सं० १७६२ (ई० स० १७०६) में

---

(१) देखो ऊपर पृ० ११२।

(२) बांसवाड़े से हमारे पास अधिकांश ताम्रपत्रों (दानपत्रों) की नक़लें ही आई हैं। इसलिए हम उनकी वास्तविकता के विषय में कुछ नहीं कह सकते। इस ताम्रपत्र की नक़ल में ऊपर की तरफ़ 'सही' बनी हुई है। वि० सं० १७५२ और १७५८ (ई० स० १६९५ और १७०१) के कुंवर भीमसिंह के समय के दो ताम्रपत्रों की नकलें हमारे देखने में आई हैं, जिनमें उसको 'महारावल' लिखा है; परन्तु उसी के एक दानपत्र में (जो वि० सं० १७५५ ज्येष्ठ सुदि २ का है) उसको 'महाराजकुमार' लिखा है तथा वि० सं० १७५२ और १७५८ के उल्लिखित दानपत्रों की मिती और वार का भी मिलान नहीं होता एवं पुरानी ख्यातों में उस (भीमसिंह) का वि० सं० १७६२ (ई० स० १७०५) में गद्दी बैठना लिखा है। ऐसी दशा में उपर्युक्त वि० सं० १७५२ और १७५८ के दानपत्रों के लेखानुसार वह उन दिनों महारावल नहीं हो सकता।

महारावल का देहांत और संतति

हुआ। उसके तीन पुत्र[1] भीमसिंह, ईसरदास और भारतसिंह तथा साहेबकुंवरी, अखेकुंवरी, अमरकुंवरी एवं चैनकुंवरी नाम की चार कुंवरियां हुईं।

भीमसिंह

अपने पिता अजबसिंह का परलोकवास होने पर वि० सं० १७६२ माघ सुदि ३ (ई० स० १७०६ ता० ६ जनवरी) को महारावल भीमसिंह बांसवाड़े की गद्दी पर बैठा।

दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब का पिछला समय दक्षिण में मरहटों को दबाने आदि में ही व्यतीत हुआ और वहीं वि० सं० १७६३ (ई० स० १७०७) में उसकी मृत्यु हुई, जिससे महारावल भीमसिंह का शाही दरबार से संपर्क न रहा। मुगल शासनकाल में वागड़ की गणना गुजरात के सूबे में होती थी और महारावल कुशलसिंह के समय में ही मेवाड़ से बांसवाड़े का सम्बन्ध विच्छेद कर बादशाह ने उसे अपना अधीन राज्य मान लिया, जिससे वहां का खिराज़ नियत हो गया था और वह मालवे के नाज़िम-द्वारा अहमदाबाद के सूबेदार के पास पहुंचता था। इस कारण से मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह (दूसरा) ने महारावल भीमसिंह से फिर कोई छेड़ छाड़ न की।

सात वर्ष राज्य करने के अनन्तर महारावल भीमसिंह का देहांत वि० सं० १७६६ श्रावण सुदि २ (ई० स० १७१२ ता० २४ जुलाई) को हो गया[2]।

---

(१) एक ख्यात में उसके ५ पुत्रों के नाम—भीमसिंह, इंद्रसिंह, भगवतसिंह, भारतसिंह और ईसरदास—दिये हैं।

(२) सं० १७६९ व० सावणशुद २ माहाराओल श्रीभीमसिंगजी देवलोक पधारा। सती ६ सहगमन कीधा। सं० १८०० व० जेठ शुद ६ राणी पुरबणी रूपकुंएरजीए छत्री प्रतिष्ठा कीधि।

(महारावल भीमसिंह की छत्री के मूल लेख की छाप से)।

उसके तीन पुत्र विष्णुसिंह (विशनसिंह), पद्मसिंह, बख्तसिंह एवं एक पुत्री गुमानकुंवरी हुई[1]। उस(भीमसिंह)के समय के वि० सं० १७६३ कार्तिक सुदि ७ (ई० स० १७०६ ता० १ नवम्बर) के अंतकारिया गांव से दो शिलालेख मिले हैं[2], जिनमें राठोड़ हठीसिंह और अजबसिंह के युद्ध में काम आने का उल्लेख है, परन्तु यह युद्ध किससे हुआ यह अब तक अज्ञात है।

विष्णुसिंह (विशनसिंह)

महारावल विष्णुसिंह वि० सं० १७६९ श्रावण सुदि २ (ई० स० १७१२ ता० २४ जुलाई) को बांसवाड़े का स्वामी हुआ।

इन दिनों दिल्ली की मुग़ल सल्तनत जर्जर सी हो रही थी, इसलिए मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) ने डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्य को फिर अपने अधीन करने का प्रयत्न आरंभ किया और बादशाह फ़र्रुख़सियर के शासन के पांचवें वर्ष में उपर्युक्त दोनों राज्यों को

उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) का पंचोली विहारीदास को सेना देकर बांसवाड़े पर भेजना

(१) बड़वे की ख्यात में राणी रूपकुंवरी पुरवणी (चौहान) कोठारिया (मेवाड़) की लिखी है। इसके अतिरिक्त उसके एक राणी मयाकुंवरी (चौहान) कोठारिया की और थी, जिसके गर्भ से विष्णुसिंह का जन्म हुआ था। कुंवर पद्मसिंह और बख्तसिंह तथा गुमानकुंवरी का जन्म राणी साहेबकुंवरी (परमार) सूंथवाली के उदर से हुआ था। पद्मसिंह और बख्तसिंह की मृत्यु बाल्यकाल में ही हो गई और गुमानकुंवरी का विवाह बूंदी के रावराजा बुधसिंह से हुआ था।

(२) संवत १७६३ ना कारतक सुद ७ दने······राठोड़ हठीसंगजी काम आवा रावल भीमसिंगना समे······।

(मूल लेख की छाप से)।

संवत १७६३ ना कारतक सुद ७ दने······राठोड़ अजबसंगजी काम आवा रावल भीमसंगजी आगे।

(मूल लेख की छाप से)।

मेवाड़ के अन्तर्गत करने का फ़रमान भी प्राप्त कर लिया[1], परन्तु उन राज्यों को मेवाड़ के अधीन रहना पसन्द न था, जिससे वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) में महाराणा ने अपने प्रधान पंचोली बिहारीदास को सेना देकर उनपर रवाना किया। बिहारीदास रामपुर से लौटता हुआ बांसवाड़े पहुंचा, जिसपर महारावल ने महाराणा की सेना से लड़ाई करना ठीक न समझकर एक हाथी और पच्चीस हज़ार रुपये देने तथा महाराणा की सेवा में उपस्थित होने का इक़रार लिख दिया[2]।

बांसवाड़ा राज्य ने मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) से सुलह करली थी, परन्तु उन दिनों मरहटों का उत्कर्ष हो रहा था। यह देखकर

---

(१) नवाबअली और सेडन; मिराते-अहमदी के ख़ातिमे का अंग्रेज़ी अनुवाद, (गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज़, संख्या ४३), पृ० १६०।

(२) वीरविनोद; भाग दूसरा, प्रकरण ग्यारहवां।

कविराजा श्यामलदास ने अपने वीरविनोद में उक्त इक़रार की नक़ल उद्धृत की है, जो इस प्रकार है—

श्रीराम १

सीधश्री लीखतं राउल श्रीवीसनसींघजी अप्रंच। पंचोली श्री-बिहारीदासजी पधारया रामपुराथी अणी वाटे पधारा जदी गोठरा रु० २५,०००) देणा वे ईखरे पचीस हज़ार देणा। हाथी १ नीजर करणो ढ़ील करे नहीं—

मतुं रावल श्रीवीसनसींघजी ऊपर लीखुं ते सही। कोल मास १ नी मास १ गो प्रदेणा सं० १७७४ आसोज वद १०

वीगत रुपीया

१००००) ईखरे रुपीआ हज़ार दस तो मास १ में भरणा

१५,००० रुपीआ ईखरे हजार पंदरे श्री जी हजुर पगे लागे जदी अरज करे बगसांवणा।

महारावल का मरहटों से मेल करना

वांसवाड़ा के स्वामी महारावल विष्णुसिंह ने भी, जो मेवाड़ की अधीनता से असन्तुष्ट था, मरहटों से मेलकर उन्हें ख़िराज देना स्वीकार कर लिया। फिर ई० स० १७२८ ता० २६ मई (वि० सं० १७८५ ज्येष्ठ वदि १४) को पेशवा वाजीराव ने महारावल विष्णुसिंह (विशनसिंह) को पत्र-द्वारा सूचना दी कि वांसवाड़ा राज्य का आधा ख़िराज ऊदाजी पवांर (धार राज्य का संस्थापक) और आधा मल्हारराव होल्कर (इंदोर राज्य का संस्थापक) को देते रहे[1]। इसपर वहां का ख़िराज उक्त दोनों को दिया जाने लगा, परन्तु पीछे से उसे धार राज्य ही लेता रहा[2]।

महारावल विष्णुसिंह ने वाहरी आक्रमणों से अपने राज्य को वचाने के लिए ही पेशवा से मेलकर ख़िराज़ देना स्वीकार कर लिया था और

मरहटे सेनापतियों का वांसवाड़ा से लूट-खसोट-द्वारा रुपये लेना

पेशवा ने वांसवाड़ा राज्य के ख़िराज़ की वसूली का स्वत्व अपने सेनापति ऊदाजी पंवार तथा मल्हारराव होल्कर को सौंप दिया था तो भी मरहटे अफ़सर राघोजी कदमराव और सवाई काटसिंह कदमराव ने उधर वढ़कर वि० सं० १७८५ मार्गशीर्ष (ई० स० १७२८ नवम्वर) में वांसवाड़ा राज्य में लूट-मार मचा दी।

तलवाड़ा गांव के समीप वांसवाड़ा राज्य की सेना से मरहटी सेना का मुक़ावला हुआ, जिसमें महारावल की तरफ़ के सरदार—झाला सरूपसिंह, मेड़तिया राठोड़ वख़्तसिंह, राठोड़ मोहकमसिंह आदि—अपने कई राजपूतों सहित काम आये[3]। मरहटा सैनिकों के उपद्रव से वागड़ का अधिकांश भाग वीरान हो गया, जिससे वांसवाड़ा राज्य की वहुत हानि हुई। उन्होंने अत्याचार-द्वारा वहां से ख़िराज़ के एवज़ पचास हज़ार रुपये वसूल किये, जिसकी पेशवा के पास शिकायत होने पर उस(पेशवा)ने उस रक़म

(१) लेले व ओक; धारच्या पवांरा चे महत्व व दर्ज़ा, पृ० ३० ।

(२) ट्रीटीज़ एंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४४४ (पांचवां संस्करण)।

(३) झाला का गुढ़ा, संवरिया और अडोर गांव के स्मारक लेखों से ।

को ज़ब्त कर अपने यहां जमा कराने का हुक्म दिया[1], जिससे कुछ समय के लिए मरहटे सरदारों का आतङ्क मिट गया।

वि० सं० १७८१ (ई० स० १७२४) में जोधपुर के स्वामी अजीत-सिंह को उसके ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह ने अपने छोटे भाई बख़्तसिंह-द्वारा मरवाकर मारवाड़ का सिंहासन प्राप्त किया, तब महाराजा अभयसिंह के छोटे भाई आनंदसिंह एवं रायसिंह भागकर उपद्रव करने लगे और उन्होंने ईडर पर अधिकार कर लिया। महाराजा अभयसिंह उनको मरवा डालना चाहता था, इसलिए उसने जयपुर के महाराजा जयसिंह (सवाई) की सलाह से श्रावणादि वि० सं० १७८३ (चैत्रादि १७८४) आषाढ वदि ७ (ई० स० १७२७ ता० ३१ मई) को उन (आनंदसिंह और रायसिंह) को ईडर के इलाक़े से निकालकर मार डालने तथा वहां अपना अधिकार करने के लिए महाराणा संग्रामसिंह के नाम पत्र भेजा[2]।

महाराणा संग्रामसिंह का बांसवाड़े पर फिर सेना भेजना

ईडर राज्य मेवाड़ से मिला हुआ है, इसलिए महाराणा की भी उस इलाक़े पर बहुत दिनों से दृष्टि थी अतः यह अवसर हाथ आते ही उसने वि० सं० १७८५ (ई० स० १७२८) में ईडर पर अधिकार करने के लिए अपनी सेना रवाना की। उस समय महारावल विष्णुसिंह महाराणा की सेना के साथ नहीं गया। इसपर अप्रसन्न होकर महाराणा ने अपने मुसाहब धायभाई नगराज और पंचोली कान्ह सहीवाले के साथ बांसवाड़े पर सेना भेजी तब विवश होकर महारावल ने सेना-व्यय के ८५००१ रुपये नक़द

(१) वाड एण्ड पार्सनीज़; सिलेक्शन्स फ्रॉम दि सतारा राजाज़ एण्ड दि पेशवाज़ डायरीज़, जिल्द १, पृ० १०१-२।

उपर्युक्त मरहटी सेना के मुक़ाबले में जो राजपूत काम आये, उनके स्मारक बांसवाड़ा राज्य में कई स्थानों पर बने हुए हैं और उनपर युद्ध की तिथि और वीर-गति प्राप्त होनेवाले व्यक्तियों के नाम एवं उनके कंठा (काटसिंह) की सेना से युद्ध करने का उल्लेख है।

(२) वीरविनोद प्रकरण ग्यारहवें में इस पत्र की नकल मुद्रित हुई है।

एक मास में देने का रुक्का[1] लिख महाराणा की सेना को बांसवाड़ा से लौटा दिया।

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास का कथन है—"महारावल विशनसिंह, महाराणा की नौकरी में आते जाते रहे। जब ईडर के महाराजा आनंदसिंह पर महाराणा ने फौज भेजी तो रावल विशनसिंह नहीं गया। न जाने सर्कशी से या इस सबब से कि उस फौज का अफ़सर भींडर का महाराज था[2]।"

उदयपुर राज्य के पुराने चित्रसंग्रह में महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) के समय का दशहरे के दरबार का एक चित्र है, जिसमें बांई तरफ़ की

---

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण ग्यारहवां।

कविराजा श्यामलदास ने उपर्युक्त रुक्के की नक़ल भी उद्धृत की है, जो इस प्रकार है—

॥ श्री ॥

लीखतं १ रु० ८५००१ रो बांसवाला रो तींरी नकल

सावत

सीधश्री दीवाणजी आदेसातु, प्रत दुए धाभाई नगजी पंचोली कान्हजी अप्रंच। बांसवाला रा रावलजी अब कै फौज म्हें न्हीं आया जणी बावत वेड़ खरच रा रु० ८५००१ अखरे रुपीआ पच्यासी हज़ार कीधा सो एबारु पहली भरणा। खंदी नहीं सेकडा भरणा। सं० १७८६ वेसाख वदि ८ सने। रावलजी श्री वीसनसीघजी मतो, सोंहुआण अगरसीघ लखतं।

चौहान अगरसिंह, बनकोड़ा (डूंगरपुर राज्य) के सरदार केसरीसिंह का पुत्र था। वह डूंगरपुर से बांसवाड़े चला आया और वहां के स्वामी को प्रसन्न कर उसने अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। अगरसिंह, उस समय महारावल के विश्वासपात्र व्यक्तियों में था। उसके वंशजों में इस समय गढ़ी का ठिकाना मुख्य है, जो बांसवाड़ा राज्य के अन्तर्गत है।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण ग्यारहवां।

पंक्ति में गद्दी के नीचे महारावल विष्णुसिंह बैठा हुआ बतलाया है[1]। इससे अनुमान होता है कि महारावल दशहरे के अवसर पर उदयपुर जाता आता रहा होगा।

महारावल की बहिन का विवाह

महारावल विष्णुसिंह ने अपनी बहिन गुमानकुंवरी का विवाह वि० सं० १७७७ श्रावण वदि ११ (ई० स० १७२० ता० २६ जून) को बूंदी के पद-च्युत महाराव राजा बुधसिंह से कर दिया। राज्य छूट जाने से बुधसिंह उन दिनों महाराणा संग्रामसिंह के पास उदयपुर में आ रहा था और वहां से वह बरात लेकर बांसवाड़े गया, जहां महारावल ने उसे तीन महीने तक रक्खा और बहुत सा दहेज देकर विदा किया[2]।

महारावल का देहांत

उदयपुर राज्य के दफ़्तर की एक प्राचीन बही में महारावल विष्णुसिंह के पुत्र उदयसिंह को वि० सं० १७८६ पौष सुदि २ (ई० स० १७३२ ता० ८ दिसम्बर) को तलवार बंधवाना लिखा है[3]। इसके आधार पर कविराजा श्यामलदास ने महारावल विष्णुसिंह का देहांत वि० सं० १७८६ (ई० स० १७३२) के पूर्व होना माना है[4], किन्तु उक्त महारावल की स्मारक छत्री के लेख में

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण ग्यारहवां।

(२) मिश्रण सूर्यमल; वंशभास्कर, भाग ४, पृ० ३१६६-६७, छंद ८-१६।

(३) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण ग्यारहवां।

उपर्युक्त उदयपुर राज्य के पुराने दफ़्तर की एक बही के आधार पर वीरविनोद में महारावल उदयसिंह को वि० सं० १७८६ पौष शुक्ला २ को तलवार बंधवाना लिखकर उसकी अंग्रेज़ी तारीख़ २० दिसम्बर ई० स० १७३२ दी है, जो ठीक नहीं है। उस दिन दिसम्बर की आठवीं तारीख़ थी। तारीख़ की गड़बड़ी और महारावल विष्णुसिंह के स्मारक-लेख को देखते हुए हम को उक्त बही में दिये हुए संवत् १७८६ के सही होने में सन्देह होता है। आठ और नौ के अङ्क समान होकर थोड़े से अन्तर से लिखे जाते हैं। सम्भव है कि 'वीरविनोद' छपते समय भ्रम से संवत् १७६६ को १७८६ लिख दिया गया हो।

(४) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण ग्यारहवां।

(आषाढादि) वि० सं० १७९३ (चैत्रादि १७९४) चैत्र सुदि ७ (ई० स० १७३७ ता० २७ मार्च) को उसका देहांत होना और (आषाढादि) वि० सं० १८०० (चैत्रादि १८०१) ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० १७४४ ता० ६ मई) को उसकी स्मारक छत्री की प्रतिष्ठा होने का स्पष्टतः उल्लेख है[1]। ऐसी स्थिति में महारावल का देहांत छत्री के लेख में दिए हुए संवत् में ही मानना युक्तिसंगत है।

महारावल की राणियां व संतति

महारावल विष्णुसिंह के चार राणियां थीं, जिनमें से तीसरी राणी चौहान विजयकुंवरी के गर्भ से कुंवर उदयसिंह और पृथ्वीसिंह[2] का जन्म हुआ, जो क्रमशः बांसवाड़े के स्वामी हुए।

महारावल के समय के शिलालेख तथा ताम्रपत्र

महारावल विष्णुसिंह के समय के वि० सं० १७७० से १७९४ (ई० स० १७१३ से १७३७) तक के शिलालेख और ताम्रपत्र मिले हैं, जिनमें से अधिकांश युद्ध में मारे गये वीरों की स्मृति के सूचक हैं। नीचे उन लेखों आदि का कुछ ब्योरा दिया जाता है, जिनसे वहां के इतिहास और उस समय की स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ता है—

(१) वि० सं० १७७० कार्तिक सुदि १ (ई० स० १७१३ ता० ९

---

(१) सं० १७९३ वर्षे चईत्र शुद ७ महाराओल श्रीविष्णुसिंहजी देवलोक पधारा शति १ पाशवान बाई रूपाए साहगमन कीधो सं० १८०० वर्षे जेठ शु० ६. माताजी श्रीपुरबणीजी रूपकुंअरजी छत्री प्रतिष्ठा किधि।

(मूल लेख से)।

उपर्युक्त छत्री के लेख में उल्लिखित पुरबणी रूपकुंवरी महारावल [illegible]सिंह की राणी थी, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

(२) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात; पत्र ८, पृ० २।

एक ख्यात में [illegible] विष्णुसिंह के एक पुत्र का नाम [illegible]सिंह भी लिखा है।

अक्टोबर) के गांव सूजा के गुढ़े के दो लेख, जिनमें देवड़ा लीमा और चौहान सूजा का महारावल विष्णुसिंह की सेना में रहकर गढ़ टूटते समय काम आने का उल्लेख है। इन दोनों लेखों से यह ज्ञात नहीं होता कि उपर्युक्त व्यक्ति किस प्रतिपक्षी से लड़कर मारे गये।

(२) वि० सं० १७७१ मार्गशीर्ष सुदि १२ (ई० स० १७१४ ता० ७ दिसम्बर) भौमवार का मेतवाला गांव का लेख, जिसमें चौहान केशवदास के महाराणा की सेना से लड़कर मारे जाने का उल्लेख है[1]।

(३) (आषाढादि) वि० सं० १७७६ (चैत्रादि १७८०) चैत्र सुदि ५ (ई० स० १७२३ ता० ३० मार्च) का सांगवा गांव का लेख, जिसमें वाघेला पूंजा के काम आने का उल्लेख है।

(४) वि० सं० १७८१ माघ सुदि १० (ई० स० १७२५ ता० १२ जनवरी) के ऊंदेरा (अर्थूणा के पट्टे) के दो लेख, जिनमें राठोड़ जेतसिंह, सरूपसिंह और चौहान रूपा एवं ठाकुर जेतसिंह के भाई कीर्तिसिंह का शत्रु-सैन्य से लड़कर मारा जाना लिखा है, परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि यह युद्ध किस शत्रु से हुआ।

---

(१) संवत १७७१ ना मगसर (मार्गशीर्ष) सुद (दि) १२ भुम (भौमे) सहुआण (चौहान) केस(श)वदासजी काम आव्या। फोज श्रीदीवाणजी नी आवी तारे काम आव्या।

(मूल लेख की नक़ल से)।

'दीवाणजी' शब्द महाराणा का सूचक है। मेवाड़ के महाराणा अपने इष्टदेव एकलिङ्गजी को मेवाड़ के स्वामी और अपने को उनका 'दीवाण' मानते हैं, जिससे उनकी एक उपाधि 'दीवाण' भी हो गई है, जो अब तक परवानों आदि में लिखी जाती है। कितने ही लोग उनको 'दीवाण' शब्द से संबोधन करते हैं एवं कविता में भी कहीं-कहीं 'दीवाण' शब्द का प्रयोग किया जाता है। उदयपुर राज्य के इतिहास में बांसवाड़ा राज्य पर वि० सं० १७७१ (ई० स० १७१४) में चढ़ाई होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु बांसवाड़ा राज्य और मेवाड़ की सीमा मिली हुई है, जिससे संभव है कि उस वर्ष कोई सीमा सम्बन्धी बखेड़ा हो गया हो और महाराणा की सेना वहां पहुंची हो।

(५) वि० सं० १७८४, शाके १६४६ मार्गशीर्ष सुदि ७ (ई० स० १७२७ ता० ६ नवम्बर) का बांसवाड़ा के राजतालाव पर का लेख, जिसमें सोलंकी सरदारसिंह का महारावल विष्णुसिंह की सेना में रहकर मृत्यु पाने का उल्लेख है।

(६) वि० सं० १७८५ (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि १४ (ई० स० १७२८ ता० १६ नवम्बर) का गांव झाला का गुढ़ा का लेख, जिसमें कंठा की सेना से लड़कर झाला राजश्री सरूपसिंह के साथ चौहान धन्ना की मृत्यु होने का उल्लेख है[1]।

(७) वि० सं० १७८५ (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि १४ (ई० स० १७२८ ता० १६ नवम्बर) भौमवार का पाराहेड़ा के भंवरिया गांव का लेख, जिसमें मेड़तिया गोपीनाथ के पुत्र मेड़तिया वस्ता के कंठा की फौज से लड़कर मारे जाने का उल्लेख है।

(८) वि० सं० १७८५ (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि १४ (ई० स० १७२८ ता० १६ नवम्बर) भौमवार के अडोर गांव के ११ लेख, जिनमें कंठा की फौज से लड़कर उक्त गांव के ठाकुर मोहकमसिंह के साथ में रहकर चौहान परवत, सीसोदिया भूमा, चौहाण मदन आदि राजपूतों के काम आने के उल्लेख हैं।

(९) वि० सं० १७८५ मार्गशीर्ष सुदि ४ (ई० स० १७२८ ता० २३ नवम्बर) का गांव झाला का गुढ़ा का लेख, जिसमें झाला सरूपसिंह का सदीलाव मगरे के घेरे में तलवाड़ा गांव में (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि १४ उपरांत अमावास्या (ई० स० १७२८ ता० १६ नवम्बर) को कंठा की फौज से लड़कर मारे जाने का उल्लेख है।

(१०) वि० सं० १७८६ कार्तिक सुदि १४ (ई० स० १७२९ ता० २४ अक्टोबर) शनिवार के अडोर गांव के दो लेख, जिनमें मेड़तिया ठाकुर मोहकमसिंह और रावल सरूपसिंह के ग़नीम (शत्रु) कंठा की सेना-द्वारा

(१) लेखसंख्या ६, ७, ८, ९ और १० में उल्लिखित 'कंठा' शब्द का तात्पर्य मरहटे सेनापति सवाई काटसिंह कदमराव से है।

घेरे जाने पर, शत्रु से लड़ते हुए वि० सं० १७८५ (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि १४ (ई० स० १७२८ ता० १९ नवम्बर) को मारे जाने और उनके स्मारकों की उपर्युक्त दिन प्रतिष्ठा होने का उल्लेख है।

(११) वि० सं० १७९० आश्विन सुदि १३ (ई० स० १७३३ ता० ११ अक्टोबर) का गुरु वखतराम तखतराम के नाम का राणी विनेकुंवरी राठोड़ का ताम्रपत्र, जिसमें गोत्रिरात्र व्रत के उद्यापन के समय रहँट १ सुतारिया दान करने का उल्लेख है।

(१२) वि० सं० १७९३ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि १३ (ई० स० १७३६ ता० २० अक्टोबर) बुधवार का डिंगोलिया गांव का ताम्रपत्र।

महारावल के समय बांसवाड़ा राज्य की स्थिति

महारावल विष्णुसिंह के समय बांसवाड़ा राज्य की स्थिति सामान्य ही रही। मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता का अवसर पाकर मेवाड़ के महाराणाओं ने जब उसकी शक्ति को दबाने का यत्न किया तो उसने उस समय मरहटों का अभ्युदय देख उनके संरक्षण में जाकर उन्हें ख़िराज देना स्वीकार कर लिया। बादशाही फ़रमान होने से इधर मेवाड़ राज्य और उधर मरहटे सेनापति जब उसे दबाते तब वह नीति से काम लेकर अपने राज्य को बचाता था।

गढी ठिकाने की ख्यात में लिखा है कि उदयपुर के महाराणा की शाहपुरे पर चढ़ाई हुई, उस समय बांसवाड़ा के महारावल ने ठाकुर उदयसिंह को सेना देकर भेजा था, जिसपर प्रसन्न होकर महाराणा ने चुंडा का परगना, जो पहले बांसवाड़े से ज़ब्त हो गया था, पीछा दे दिया। उस सेवा के उपलक्ष्य में महारावल ने चौहान उदयसिंह को पड़ाल गांव दिया। शाहपुरे पर महाराणा जगतसिंह (दूसरा) के समय वि० सं० १७९२ (ई० स० १७३५) में चढ़ाई हुई थी। गढ़ीवालों के पूर्वज ठाकुर अगरसिंह की मृत्यु वि० सं० १७९४ (ई० स० १७३७) में होने का लेख चींच

गांव में विद्यमान है। अतएव संभव है कि वह (उदयसिंह) अपने पिता अगरसिंह की विद्यमानता में सेना-नायक बनाकर भेजा गया हो।

उदयसिंह

महारावल विष्णुसिंह का देहांत होने पर वि० सं० १७९३ (ई० स० १७३७) में उसका पुत्र उदयसिंह चार वर्ष की आयु[1] में बांसवाड़े की गद्दी पर बैठा।

ख्यातों से पाया जाता है कि उस (उदयसिंह) की बाल्यावस्था के कारण उसका मामा गुलालसिंह चौहान (अर्थूणा का) राज्य का समस्त कार्य चलाता था, जिससे सरदार प्रायः असन्तुष्ट थे। इस कारण पारस्परिक वैमनस्य होकर वहां बड़ा उपद्रव मचा और चौहान सरदार राज्य से उदासीन हो गये।

धार की सेना का आकर लूटमार मचाना

इतने में धार की सेना ने आकर खिराज की वसूली के लिए बांसवाड़े को घेर लिया[2]। राजा बालक, खज़ाना खाली और सरदार असन्तुष्ट, फिर राज्य की रक्षा किस प्रकार हो सकती थी? निदान शत्रु-सेना से तंग होकर राज्य के सरदार बालक महारावल को लेकर भूतवे की पाल में चले गये। फिर मरहटी सेना ने वहां लूटमार आरम्भ की और राज्य के मुख्य कार्यकर्त्ता क़ैद कर लिये गये, किन्तु इसपर भी उन्हें कुछ न मिला तो उन्होंने राज-महलों को, जहां छिपा हुआ द्रव्य होने का संदेह था, खुदवाया। स्वामि-भक्त सरदारों ने यथा-साध्य देश को बचाने की चेष्टा की और कई सरदार अपने राजपूतों सहित शत्रु-सैन्य से लड़कर मारे गये।

---

(१) बांसवाड़ा राज्य की एक पुरानी वंशावली।

(२) वि० सं० १७९८ (ई० स० १७४१) में वागड़ पर मरहटी सेना का आक्रमण हुआ था, ऐसा मेवाड़ के कानोड़ ठिकाने की ख्यात और काग़ज़ों से पाया जाता है। उस सेना का मेवाड़ में आगमन होने पर महाराणा ने उसका मुक़ाबला करने के लिए कानोड़ के रावत पृथ्वीसिंह को भेजा, जिसका वर्णन मेरे 'राजपूताने के इतिहास' की जि० २, पृ० ९४५ में किया जा चुका है।

इस उत्पात से राज्य में बहुत दिनों तक अशांति बनी रही और राज्य संभलने भी नहीं पाया था कि साढ़े तेरह वर्ष की आयु में वि० सं० १८०३ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि (ई० स० १७४६ सितम्बर) में महारावल उदयसिंह का देहांत हो गया[1]। एक पुरानी ख्यात में विट्ठलदेव के निकट के नीलकंठ महादेव में रहते समय उसका देहांत आश्विन सुदि ३ को होना बतलाया है तथा बड़वे की ख्यात में उसके दो राणियां भी होने का उल्लेख है[2]।

महारावल के समय के शिलालेख आदि

महारावल उदयसिंह के समय के एक दानपत्र और तीन शिलालेख मिले हैं, जो वि० सं० १७६४ से ९६ (ई० स० १७३७ से ३९) तक के हैं। उनका आशय नीचे लिखे अनुसार है—

(१) वि० सं० १७६४ (अमांत) मार्गशीर्ष (पूर्णिमांत पौष) वदि ४ (ई० स० १७३७ ता० ३० नवम्बर) के चींच गांव के दो शिलालेख, जिनमें चौहान अगरसिंह[3] और चंदनसिंह का महारावल उदयसिंह के समय काम आने का उल्लेख है।

---

(१) महाराजाधिराज माहारावल श्रीउदेसंघजी देवलोक पधाग सं० १८०३ ना आसो[ज]वद ते मुरती खंडीत थई हती ते सं० १८९३ ना जेठसुद १५ दीने बीजी मुरती बेसारी मारफत ठाकर अरजणसिंघजी दसगत जानी लखमीचंद।

(महारावल उदयसिंह की छत्री के लेख की छाप से)।

अर्जुनसिंह (अरजणसिंह) चौहाण गढ़ी का स्वामी था और वि० सं० १८९३ (ई० स० १८३६) में बांसवाड़ा राज्य का मुख्य कार्यकर्ता था।

(२) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात; पत्र ८, पृ० १।

(३) स्वस्ति श्रीसंवत् १७९४ वर्षे मार्गशीर्ष वदि ३ दिने चौंआण श्रीअगरसिंघजी राओल श्रीउदयसिंघजी की नानोत्र (बाल्यावस्था) में काम आव्या।

(ठाकुर अगरसिंह की छत्री के मूल लेख की छाप से)।

(२) वि० सं० १७६५ मार्गशीर्ष सुदि ७ (ई० स० १७३८ ता० ६ दिसम्बर) का अर्थूणा ठिकाने के वखतपुरा गांव का शिलालेख, जिसमें चौहान वहादुरसिंह का भारतसिंह के साथ रहकर काम आना लिखा है[१]।

(३) वि० सं० १७९६ कार्तिक सुदि १० (ई० स० १७३९ ता० ३० अक्टोवर) भौमवार का ताम्रपत्र, जिसमें राजमाता विनयकुंवरी के वार्षिक-श्राद्ध के अवसर पर गांव ईसरीवास में जोशी दलता को ३ हल भूमि दान करने का उल्लेख है[२]।

अगरसिंह तथा उसके भाई चंदनसिंह को बांसवाड़े आने पर प्रारम्भ में महारावल विष्णुसिंह ने निर्वाह के लिए कुछ जीविका निकाल दी; फिर अगरसिंह को सेमलिया और चंदनसिंह को बसी गांव दिया। अगरसिंह के वंशजों ने आगे चल कर वड़ी उन्नति की और अपने लिए गढी का एक बड़ा ठिकाना वना लिया। 'गढी की ख्यात' में लिखा है कि महारावल विष्णुसिंह का कुटुम्वी भारतसिंह और उसका पुत्र रुद्रसिंह (नौगामावाला) राज्यद्रोही हो गये, उस समय उन्हें दंड देने के लिए अगरसिंह को सेनानायक वनाकर भेजा। चींच गांव में युद्ध हुआ, जहां अगरसिंह और चंदनसिंह मारे गये, जिनके स्मारक वहां वने हुए हैं तथा उन दोनों पर लेख हैं।

भारतसिंह, महारावल अजवसिंह का पुत्र था, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। यदि वह कथन ठीक हो तो यही मानना पड़ेगा कि भारतसिंह से वि० सं० १७९४ (ई० स० १७३७) के अतिरिक्त वि० सं० १७९५ (ई० स० १७३८) में भी बांसवाड़ा राज्य की सेना से युद्ध हुआ, जिसमें चौहान वहादुरसिंह, भारतसिंह के पक्ष में रहकर लड़ता हुआ मारा गया।

(१) संवत् १७९५ वरषे मागसरसुदि ७ दने चहुआण श्रीवादरसिंगजी काम आवा सेती भारतसिंघजी नी फोज महे काम आवा फोज म्हें।

(मूल लेख की छाप से)।

(२) विनयकुंवरी महारावल विष्णुसिंह की राठोड़ राणी थी और वह कुशलगढ़ के ठाकुर की पुत्री थी।

पृथ्वीसिंह

महारावल पृथ्वीसिंह अपने भाई उदयसिंह की मृत्यु होने पर वि० सं० १८०३ (ई० स० १७४६) में बांसवाड़े का स्वामी हुआ[1]। उस समय वह बालक था और राज्य में चारों ओर प्रबल रूप से अशांति फैली हुई थी।

धार के स्वामी आनंदराव का बांसवाड़ा आना

ऐसी दशा में धार के ऊदाजी पंवार का भाई आनंदराव चढ़े हुए खिराज की वसूली के लिए अपनी सेना सहित बांसवाड़े आ पहुंचा। उन दिनों राज्य की आर्थिक दशा संतोषप्रद न होने से खिराज यथासमय दिया नहीं जाता था। इसलिए आनंदराव ने आकर बांसवाड़े को घेर लिया और प्रजा पर सख़्ती होने लगी। तब सरदार लोग बालक महारावल को लेकर सुरक्षित स्थान में चले गये। आनंदराव ने बड़ी ही निर्दयतापूर्वक लूटमार कर २५००० हज़ार रुपये वसूल किये तथा बाक़ी रुपयों के एवज़ में कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों को पकड़कर वह अपने साथ ले गया। फिर उस (आनंदराव) की मृत्यु होने पर उसका पुत्र जसवंतराव (प्रथम) धार का स्वामी हुआ। पेशवा अपने सरदारों की बेईमानी जानता था, अतएव चढ़े हुए खिराज की पूरी रक़म वसूल न होने में अपनी अप्रतिष्ठा समझ उसने मेघश्याम बापूजी नामक सेनानायक को इस मामले का निपटेरा करने के

---

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात में महारावल पृथ्वीसिंह की गद्दीनशीनी वि० सं० १८०४ आश्विन सुदि ३ (ई० स० १७४७ ता० २६ सितम्बर) को होना लिखा है, परन्तु महारावल उदयसिंह का देहांत वि० सं० १८०३ (ई० स० १७४६) में होना उसकी छत्री के लेख से प्रामाणित है, अतएव महारावल पृथ्वीसिंह की वि० सं० १८०३ में ही गद्दीनशीनी होना निश्चित है।

'गद्दी ठिकाने की ख्यात' में लिखा है कि महारावल विष्णुसिंह का उत्तराधिकारी उसका भतीजा पृथ्वीसिंह हुआ, जो ठीक नहीं है। विष्णुसिंह का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह हुआ, पर वह नि:संतान था, इसलिए उदयसिंह की मृत्यु होने पर उसका छोटा भाई पृथ्वीसिंह राज्य-सिंहासन पर बैठा। पृथ्वीसिंह विष्णुसिंह का भतीजा नहीं, किन्तु पुत्र था।

लिए नियत किया[1], जिसने वि० सं० १८०५ (ई० स० १७४६) में अपनी सेना सहित बांसवाड़े जाकर पंवार-द्वारा पहले वसूल हुए २५०८० रुपयों के अतिरिक्त ४५००० रुपये उस वर्ष के खिराज के, १३००० रुपये पहले के चढ़े हुए खिराज के और १४००० रुपये सेना-व्यय के कुल ७२००० रुपये ठहराकर फैसला किया। उनमें से २४०००० रुपये जो आसामी कैद थे, उनके मुक्त होने पर और शेष ज्येष्ठ मास में लेना स्थिर हुआ। अंत में उस (मेघश्याम) ने जिस प्रकार पंवार-द्वारा खिराज की वसूली में पहले निर्दयता हुई थी, भविष्य में उस प्रकार निर्दयता न होने और व्यवस्थितरूप से खिराज वसूल करने का महारावल आदि को विश्वास दिलाकर संतुष्ट किया[1]।

महारावल का सितारे जाकर राजा शाहू से मिलना

ख्यात में लिखा है कि महारावल पृथ्वीसिंह सितारे जाकर राजा शाहू से मिला और वहां प्रतिवर्ष नियमित रूप से खिराज देने का इक़रार कर मरहटे सेनापतियों की चढ़ाई से मुक्त हुआ। इसकी पुष्टि उपर्युक्त महारावल के समय के दो ताम्रपत्रों से होती है, जिनमें वि० सं० १८०४ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि ६ (ई० स० १७४७ ता० १६ अक्टोबर) शुक्रवार[2] को उसके उज्जैन में क्षिप्रा के तट पर रहँट दान करने का और

(१) वाड एण्ड पार्सनीस; सिलेक्शन्स फ्रॉम दि सतारा राजाज़ एण्ड दि पेशवाज़ डायरीज़; जिल्द ३, बालाजी बाजीराव, संख्या ३८ में दिया हुआ हरिविट्ठल का पत्र, पृ० २६–२८।

'गढ़ी की ख्यात' में यह भी लिखा है कि मोलां का सरदार सौभागसिंह महारावल पृथ्वीसिंह को राज्यच्युत करना चाहता था, परन्तु उसकी बात नहीं चली, जिसपर वह मरहटा सैन्य को बांसवाड़े पर चढ़ा लाया। इसका मिलान अन्य ख्यातों से तो नहीं होता, परन्तु सम्भव है कि जसवन्तराव पंवार की बांसवाड़े पर चढ़ाई का एक कारण यह भी हो और इसी कारण से महारावल पृथ्वीसिंह राजा शाहू के पास सतारा गया हो तो भी आश्चर्य नहीं।

(२) स्वस्ती श्रीबांसवाला शुभस्थाने महाराजाधिराज महारावल श्रीपृथ्वीसिंहजी विजयराज्ये जानी वसीहा सुतभास्कर········रूट

सतारा से पीछे आते समय वि० सं० १८०६ (चैत्रादि १८०७, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि[1] (ई० स० १७५० मई) में गोदावरी तीर्थ में स्नान करते समय गांव छोटी पाड़ी पाठक गोपाल[1] को दान करने का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि जसवंतराव पंवार की सेना ने आकर वांसवाड़े को घेर लिया, तब वि० सं० १८०४ (ई० स० १७४७) में महारावल ने सितारा जाकर शिकायत की। इसपर मेघश्याम वापूजी इस मामले को शांत करने के लिए नियत हुआ, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। फिर वि० सं० १८०७ (ई० स० १७५०) में महारावल वांसवाड़े लौटा।

'गुजरात राजस्थान' के कर्त्ता कालीदास देवशंकर पंड्या का कथन है कि सूंथ के राणा रतनसिंह की कुंवरी का विवाह वांसवाड़ा के राजा के

(रहँट) १ चणा खारा माहे सेवक केसवावालो श्रीरामार्पणे आप्यो श्री-उजेण मध्ये चीप्राजी माहे आप्यो छे नदीना ढावा थी मांडीने मशीत नी वाट सूधी पाटीयु छे जानी नाथा रायेला रूटनी लागतो थो······
··
······························संवत १८०४ वरपे आसोज वदि ६ शुक्रवासरे······ ।

(मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से)।

(१) महाराजाधिराज महाराओल श्रीपृथ्वीसिंहजी आदेशात् पाठक गोपालजी·········गाम पाडी छोटी स्वस्ती पत्रे आपी छे········ दक्षिण सतारा री मुंम (मुहिम) करी पाछा आवते श्रीगोदावरी गंगा मध्ये संवत १८०६ ना वैसाखवद······तीरथमध्ये स्नान करी ने श्री-रामार्पण तुलसीपत्रे दत्ते······स्वस्ती भणावीछे················
··
····················संवत् १८०७ मास माघ सुदी ६ वार चन्द्रे
···················· ।

(मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से)।

राणा रत्नसिंह के पुत्रों को मरवा-कर वांसवाड़ावालों का सूंथ पर अधिकार करना

साथ हुआ था। जब रत्नसिंह का देहांत हुआ तो वांसवाड़ा की तरफ़ से शोक प्रदर्शनार्थ सरदार लोग सूंथ गये। उस समय रत्नसिंह का उत्तराधिकारी (ज्येष्ठ पुत्र) बालक था। इसलिए इस अवसर का लाभ उठाने के लिए वांसवाड़ा के सरदारों ने मृत राणा रत्नसिंह के तीन पुत्रों को मारकर सूंथ पर अधिकार कर लिया। चौथा पुत्र वदनसिंह उस समय बच गया था, जिसको कोली (खांट) अपनी बस्ती में लेकर चले गये। वांसवाड़ा से वैर लेने की बात ध्यान में रखकर वे थोड़े दिन तक चुप बैठे रहे। फिर उन्होंने सूंथ पर आक्रमण कर वांसवाड़ावालों को भगा दिया। कोलियों ने बालक राजा बदनसिंह को गद्दी पर बिठलाया और जब तक वह योग्य न हुआ, तब तक वे उसकी रक्षा करते रहे। आगे जाकर बदनसिंह शूरवीर राजा हुआ, जिसने वांसवाड़े का कितना एक प्रदेश भी ले लिया[1]।

---

(१) पृ० ११८। 'वांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात' में इस घटना का कुछ भी उल्लेख नहीं है, परन्तु उक्त ख्यात से प्रकट है कि उसकी एक राणी सूंथ की राजकुमारी थी।

'गढ़ी ठिकाने की ख्यात' में लिखा है—"लूणावाड़े की तरफ़ से एक चारण ठाकुर उदयसिंह के पास मांगने आया। उसने उस (उदयसिंह) के कुटुम्बी गंभीरसिंह के (जो सूंथवालों के द्वारा मारा गया था) वैर न लेने की बात कविता में कही, जिस-पर ठाकुर उदयसिंह ने सूंथ पर चढ़ाई कर शेरगढ़ का इलाक़ा छीन लिया," परन्तु अर्सकिन के 'वांसवाड़ा राज्य के गैज़ेटियर' और दि रुलिंग प्रिंसेज़ चीफ्स एण्ड लीडिंग परसोनेजेज़ इन राजपूताना एण्ड अजमेर' में गढ़ी ठिकाने के वर्णन में सूंथ के शेरगढ़ और चिलकारी के परगने वांसवाड़ा राज्य की सेना-द्वारा, जो गढ़ी के ठाकुर उदयसिंह की अध्यक्षता में भेजी गई थी, छीन लेना लिखा है।

उपर्युक्त दोनों कथनों में कौनसा कथन ठीक है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त परगने ठाकुर उदयसिंह के बुद्धि-कौशल से ही हाथ आये थे, इससे उनपर अब तक उदयसिंह के वंशजों का अधिकार चला आता है और वहां के सायर (दाण) की आय भी दीर्घकाल तक वे ही लेते रहे थे।

'हिंद राजस्थान' के कर्त्ताओं ने भी बांसवाड़ा के सरदारों-द्वारा सूंथ पर अधिकार किये जाने की यही कथा दी है[1]।

बांसवाड़ावालों के इस प्रकार सूंथ पर अधिकार कर लेने पर लूणावाड़ा के राणा वख्तसिंह को भी अपने राज्य विस्तार की लालसा जाग उठी और निर्बल सूंथ राज्य को दबाने के लिए वह भी अपने सैन्य के साथ आगे बढ़ा। लूणावाड़े की हमारे संग्रह की एक हस्तलिखित ख्यात में लिखा है कि सूंथ पर बांसवाड़ावालों का अधिकार होने से राणा वख्तसिंह कृत-कार्य न हुआ और भग्न मनोरथ होकर लौटा[2]। 'बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात' में लिखा है—"बांसवाड़ा और लूणावाड़ा की सेना में युद्ध होने पर बांसवाड़ा की सेना ने राणा वख्तसिंह को पकड़ लिया और उस-(वख्तसिंह)का चाचा तथा दो सौ सैनिक काम आये एवं उसका नक्कारा-निशान महारावल की सेना के हाथ लगा[3]।"

लूणावाड़ा के राणा वख्तसिंह से युद्ध होना

ख्यात के उपर्युक्त कथन का समर्थन महारावल पृथ्वीसिंह के समय के भीमगढ़ गांव के एक ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से होता है, जिसमें वि० सं० १८१३ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १७५६ ता० २६ नवम्बर) को लूणावाड़ा के स्वामी से युद्ध होने पर उसके काका उदयसिंह के मारे जाने एवं फ़तेजंग नामक नक्कारा छीन लिये जाने का उल्लेख है[4], किन्तु उसमें लूणावाड़ा के स्वामी का नाम शक्तसिंह दिया है, जो ठीक नहीं है।

---

(१) मार्कंड एन्. महता एण्ड मनु एन्. महता; हिंद राजस्थान (अंग्रेज़ी), पृ० ८३०।

(२) हमारे संग्रह की लूणावाड़ा की हस्तलिखित ख्यात।

(३) पत्र ६, पृ० २।

(४) रायांराय महाराजाधिराज महारावल श्रीपृथीसिंघजी विजेराज्ये नगारा जोड़ी सूंतरी फतेजंग गांव लूणावाड़े राणा सखतसिंहजी सूं कजीयो हुओ तारे आवी छे। सं० १८१३ ना मगसरसुदी ५ दने श्रीराउलजी ने फ़ते हुई। राणा नाठा, फोज मराणी, राणा नो काको उदेसिंघजी मारा

महारावल के सितारा जाने से थोड़े दिनों के लिए पेशवा के सेना-पतियों-द्वारा होनेवाली लूटमार बन्द हो गई, पर जब ख़िराज चढ़ जाता, तभी मरहटी सेना आकर घेरा दे देती थी। उस समय कभी-कभी राजपूत भी लड़ मरते थे। वह अशांति का युग था, इसलिए बहुधा भीतरी झगड़े भी होते रहते और पड़ोसी राज्यों से भी सीमासम्बन्धी झगड़े हो जाते थे। ऐसी स्थिति में प्राणों की बाज़ी लगा देना साधारण बात थी, जिससे प्रतिवर्ष महारावल के राजपूतों की संख्या कम होती जाती थी। अतएव सैनिक बल बनाये रखने के लिए महारावल पृथ्वीसिंह ने भी बाहर से कई मुसल-मान सैनिकों को बुलाकर नौकर रक्खा। इस राज्य में युद्ध में मारे जाने-वाले वीरों के स्मारक जगह-जगह बने हुए हैं और उनपर नाम, संवत् मिती तथा उनके युद्ध में काम आने का उल्लेख भी है, जो इतिहास के लिए

महारावल के समय बांसवाड़ा की स्थिति

गया······फोज सर्वे मागी गई घोड़ी १ वेरी आवी छे इस इनाम में नगारची मामथ (महम्मद) ने गाम भीमगढ़ आप्यु छे ते तुं खुशी थी वापरजे जुगो जुग।

(मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से)।

उपर्युक्त ताम्रपत्र में लूणावाड़ा के स्वामी का नाम सख़तसिंह (शक्तिसिंह) दिया है, जो ठीक नहीं है। 'लूणावाड़ा राज्य की ख्यात' और 'बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात' तथा अन्य पुस्तकों से स्पष्ट है कि सख़तसिंह (शक्तिसिंह) नाम का वहां कोई राणा ही नहीं हुआ। यह युद्ध राणा वख़्तसिंह के साथ हुआ था।

यह युद्ध कहां पर हुआ था, यह अनिश्चित है। बांसवाड़ा राज्य के नवा गांव में कुंवर उदयराम का स्मारक है, जिसपर लूणावाड़ा की सेना से युद्ध होने और उसमें उस (उदयराम) के मारे जाने के सम्बन्ध का वि० सं० १८१३ मार्गशीर्ष सुदि ८ (ई० स० १७५६ ता० २९ नवम्बर) का लेख है।

संवत् १८१३ वरषे मागसरसुद ८ दने (दिने) कोअर (कुंअर) श्रीउदेरामजी काम आव्या सूंथवाला नी फोज लूणावाड़ा··········· झगड़ो············।

(मूल लेख की छाप से)।

उपयोगी है, परन्तु इनका विस्तृत वृत्तांत जानने के लिए अन्य कोई सामग्री उपलब्ध न होने से इनकी वास्तविकता प्रकाश में नहीं आती।

महारावल का देहांत

वि० सं० १८४२ (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि १४ (ई० स० १७८६ ता० २९ मार्च) को महारावल पृथ्वीसिंह ३९ वर्ष राज्य कर परलोक सिधारा[1]।

महारावल की राणियां और संतति

महारावल के सात राणियां थीं, जिनसे पांच कुंवर विजयसिंह, तख्तसिंह[2], वख्तसिंह[3], रणसिंह[4] (रणजीतसिंह) और खुशहालसिंह[5] तथा वख्तकुंवरी एवं चांदकुंवरी नामक दो पुत्रियां हुई। वख्तकुंवरी का

---

(१) महाराजाधिराज महारावल श्रीपृथ्वीसींघजी देवलोक पधारा सं० १८४२ ना फागणवद १४ दिने…… ।

(महारावल पृथ्वीसिंह के छत्री के लेख की छाप से)।

(२) एक ख्यात में तख्तसिंह को महारावल पृथ्वीसिंह का दूसरा पुत्र लिखा है और तख्तसिंह के पीछे रणसिंह, वख्तसिंह एवं खुशहालसिंह के नाम दिये हैं, परन्तु बड़वे की ख्यात में तख्तसिंह का नाम ही नहीं है तथा रणसिंह का नाम वख्तसिंह के पीछे दिया है।

(३) वख्तसिंह को वि० सं० १८४६ (ई० स० १७८९) में महारावल विजयसिंह ने खांधू दिया। उसके वंशज खांधू, लोधा, छापरिया और सकरवट के जागीरदार हैं।

(४) रणसिंह (रणजीतसिंह) को तेजपुर मिला। वह निःसंतान था, इसलिए खांधू के महाराज वख्तसिंह का छोटा पुत्र बहादुरसिंह उस (रणसिंह) का उत्तराधिकारी हुआ। महारावल भवानीसिंह के पीछे, बहादुरसिंह के बांसवाड़े का स्वामी हो जाने पर तेजपुर की जागीर खालसा हो गई। फिर महारावल लक्ष्मणसिंह ने वह ठिकाना अपने छोटे पुत्र सुजानसिंह को दिया, परन्तु वह निःसंतान ही गुज़र गया। तब उक्त महारावल ने वहां अपने चतुर्थ पुत्र सज्जनसिंह को नियत किया, जो इस समय तेजपुर का सरदार है।

(५) खुशहालसिंह को सूरपुर की जागीर मिली। उसके दो पुत्र हमीरसिंह और वख्तावरसिंह थे। हमीरसिंह के पुत्र माधोसिंह की निःसंतान मृत्यु होने पर सूरपुर खालसे में आ गया, क्योंकि वख्तावरसिंह का पुत्र लक्ष्मणसिंह महारावल बहादुरसिंह के

विवाह वि० सं० १८२८ (ई० स० १७७१) में बूंदी के महाराव राजा अजीत-सिंह से हुआ था[1]। महारावल की एक राणी दौलतकुंवरी सूंथ के राणा की पुत्री थी।

महारावल पृथ्वीसिंह ने राजधानी वांसवाड़ा की रक्षा के लिए चारों तरफ़ शहरपनाह बनवाई। उसने पृथ्वीविलास बाग़ और मोती-महल तैयार करवाये तथा राजधानी में पृथ्वीगंज बसाया। उसकी राठोड़ राणी अनोप-कुंवरी ने, जो मालवे के आमझरा के स्वामी की बेटी थी, वि० सं० १८५६ (ई० स० १७९९) में लक्ष्मीनारायण का मंदिर बनवाया[2]।

महारावल के बनवाये हुए महल, बाग आदि

महारावल के समय के वि० सं० १८०३ से १८४० (ई० स० १७४६–१७८३) तक के शिलालेख व दान-पत्र मिले हैं, जिनमें से कुछ ऊपर उद्धृत किये गये हैं। शेष नीचे लिखे अनुसार हैं—

महारावल के समय के शिलालेख व दानपत्र

(१) गरखिया गांव का वि० सं० १८०३ (अमांत) पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि १२ (ई० स० १७४६ ता० २८ दिसम्बर) का शिलालेख, जिसमें सरदारसिंह..............की सेना से लड़कर काम आने का उल्लेख है।

(२) मोलां गांव का वि० सं० १८०३ माघ सुदि १५ (ई० स० १७४७ ता० १५ जनवरी) का शिलालेख, जिसमें चौहान दौलतसिंह का महारावल पृथ्वीसिंह के समय काम आने का उल्लेख है।

(३) डडूका गांव (पट्टे गढ़ी) के लक्ष्मीनारायण के मंदिर के पास खड़ा हुआ (आपाढादि) वि० सं० १८०४ (चैत्रादि १८०५, अमांत) चैत्र

पीछे बांसवाड़े का स्वामी हो गया और वहां कोई शेष न रहा। फिर महारावल लक्ष्मण-सिंह ने वह जागीर अपने पुत्र सूर्यसिंह को दे दी, जिसका पुत्र अभयसिंह, इस समय सूरपुर का सरदार है।

(१) वंशभास्कर; चतुर्थ भाग, अजीतसिंहचरित्र, पृ० ३७६८।

(२) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात की नक़ल; पत्र ९, पृ० २।

(पूर्णिमांत वैशाख) वदि ३ (ई० स० १७४८ ता० ५ अप्रेल) का शिला-लेख, जिसमें कुछ भूमि दान करने का उल्लेख है।

(४) चिताव गांव (पट्टे कुंडला) का वि० सं० १८०५ माघ सुदि ५ (ई० स० १७४९ ता० १२ जनवरी) का शिलालेख, जिसमें राठोड़ नाथजी के …………सेना से लड़कर काम आने का उल्लेख है।

(५) बांसवाड़ा के राजतालाव का वि० सं० १८१२ भाद्रपद सुदि १३ (ई० स० १७५५ ता० १८ सितम्बर) का शिलालेख, जिसमें आभ्यन्तर नागर ज्ञाति के पंड्या उत्तमचन्द-द्वारा रुद्रेश्वर का शिवालय एवं सन्मुख-द्वार बांसवाड़े के राजतालाव पर एक घाट बनवाये जाने का उल्लेख है।

(६) बांसवाड़ा के राजतालाव का वि० सं० १८१२ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि ८ (ई० स० १७५५ ता० २८ अक्टोबर) का शिलालेख, जिसमें आभ्यन्तर नागर ज्ञाति के जानी रंगेश्वर-द्वारा ५०१ रुपये व्यय कर राजतालाव पर एक घाट बनवाने का उल्लेख है।

(७) सेरा गांव का बारहट गोरधनदास के नाम का वि० सं० १८१२ (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ४ (ई० स० १७५६ ता० २० मार्च) का ताम्रपत्र, जिसमें उपर्युक्त गांव का एक भाग प्रदान करने का उल्लेख है।

(८) टेकला गांव का मेहडू मयानाथ के नाम का वि० सं० १८१३ (अमांत) भाद्रपद (पूर्णिमांत आश्विन) वदि ४ (ई० स० १७५६ ता० १२ सितम्बर) का ताम्रपत्र, जिसमें उपर्युक्त गांव देने का वर्णन है।

(९) तरवाड़ी मोरली (मुरली) सुत अमरा अंदरिया के नाम का वि० सं० १८१५ कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १७५८ ता० ११ नवंबर) का ताम्रपत्र, जिसमें रहँट व दुकानें दान करने का उल्लेख है।

(१०) कोनिया गांव के तालाव का वि० सं० १८१५ पौष सुदि १ (ई० स० १७५८ ता० ३१ दिसंबर) का शिलालेख, जिसमें राठोड़ वाघ-सिंह का युद्ध में काम आना लिखा है।

(११) कोनिया गांव के तालाव के वि० सं० १८१५ (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि १ (ई० स० १७५९ ता० १३ फ़रवरी) के

दो लेख, जिनमें कुंवर दुलहसिंह व राठोड़ सामंतसिंह की (युद्ध में) मृत्यु होने का वर्णन है।

(१२) कोनिया गांव का वि० सं० १८१५ (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि ६ (ई० स० १७५६ ता० १८ फ़रवरी) का शिलालेख, जिसमें ढोली वज्रा की युद्ध में मृत्यु होने का उल्लेख है।

(१३) तली गांव का (आषाढादि) वि० सं० १८१६ (चैत्रादि १८१७) चैत्र सुदि १ (ई० स० १७६० ता० १८ मार्च) मंगलवार का ताम्रपत्र, जिसमें सौदा चारण समरथ को गांव तली देने का उल्लेख है।

(१४) उवरडी (?) गांव का बारहट मनोहरदास के नाम का वि० सं० १८१७ माघ सुदि ५ (ई० स० १७६१ ता० १० फ़रवरी) का ताम्रपत्र, जिसमें महारावल पृथ्वीसिंह-द्वारा उक्त गांव बारहट मनोहरदास को दान दिये जाने का विवरण है।

(१५) सरवाणिया गांव का वि० सं० १८२० (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि १ (ई० स० १७६३ ता० २० नवम्बर) का लेख, जिसमें महारावल पृथ्वीसिंह के समय चौहान उदयसिंह की प्रमुखता में पटेल प्रेमा सुत शेखा का शत्रु सेना से लड़कर मारे जाने का उल्लेख है।

(१६) उमेदगढ़ी का लेख, जिसमें (आषाढादि) वि० सं० १८२४ (चैत्रादि १८२५) ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १७६८ ता० २१ मई) को राठोड़ उदयसिंह की रणक्षेत्र में मृत्यु होने का वर्णन है।

(१७) भट्ट भवानीशंकर कृपाशंकर के नाम का वि० सं० १८२५ (अमांत) मार्गशीर्ष (पूर्णिमांत पौष) वदि १० (ई० स० १७६९ ता० २ जनवरी) चन्द्रवार का परवाना, जिसमें कुशलगढ़ के मंदिर में मार्गशीर्ष सुदि १५ चन्द्रग्रहण के अवसर पर जोवड़खा गांव के ब्राह्मणों को तीसरा भाग पीछा बहाल करने का उल्लेख है।

(१८) ओहारो (ओहोरा) गांव का वि० सं० १८२५ आश्विन सुदि ७ (ई० स० १७६८ ता० ७ अक्टोबर) का संढायच गोविंददास के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें उसे उपर्युक्त गांव प्रदान किये जाने का उल्लेख है।

(१९) वारोठ (वारठ) जीवणा चन्दनसिंह श्यामलदास के नाम का वि० सं० १८२८ पौष सुदि १३ (ई० स० १७७२ ता० १८ जनवरी) का माखिया गांव का ताम्रपत्र, जिसमें वि० सं० १८२८ आषाढ सुदि १ (ई० स० १७७१ ता० १३ जून) को उपर्युक्त गांव प्रदान किये जाने का उल्लेख है।

(२०) पठान निज़ामखां भोपालवाले के नाम का वि० सं० १८३२ (अमांत) भाद्रपद (पूर्णिमांत द्वितीय भाद्रपद) वदि १० (ई० स० १७७५ ता० ७ सितम्बर) का परवाना, जिसमें सरदारखां को परखा गांव देने का उल्लेख है।

(२१) रणोड़ीखेड़ा गांव का वि० सं० १८३६ आश्विन सुदि १ (ई० स० १७७९ ता० १० अक्टोबर) का भट नरसिंह, देवकृष्ण और देवदत्त के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें उक्त गांव का महारावल विष्णुसिंह के समय दिये जाने का उल्लेख है।

(२२) रोणिया गांव का वि० सं० १८४० (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ७ (ई० स० १७८४ ता० १३ मार्च) का शिलालेख, जिसमें राठोड़ केसरी के संभाजी की फ़ौज से लड़ते हुए काम आने का हाल है।

महारावल पृथ्वीसिंह नीतिकुशल और उदार राजा था। छोटी आयु में राज्य पाने पर भी उसने राज्य-कार्य को संभाल कर अव्यवस्था मिटा दी, जो उसकी योग्यता का उत्तम उदाहरण है। उसे राजनीति का अच्छा ज्ञान था। वह अन्य नरेशों के साथ मेल रखता था और इसीलिए उसने सतारे जाकर राजा शाहू से अपने सजातीय सम्बन्ध में अभिवृद्धि की, जिसका फल उसके लिए अच्छा हुआ और धार के जसवन्तराव पंवार-द्वारा जो उपद्रव होते थे, वे सब शांत हुए। मरहटी सेना खिराज के लिए कभी-कभी आकर घेरा देकर तंग करती तो उस समय वह लड़ाई से भी मुंह न मोड़ता था। उन दिनों राजपूताने के अधिकांश राज्य मरहटों के उपद्रव से तंग हो रहे थे। ऐसे

महारावल का व्यक्तित्व

समय में भी उसके राज्य का विस्तार हुआ और सूंथ राज्य के दो परगने उसके सरदार गढ़ी के ठाकुर उदयसिंह के हाथ लग गये। राज्य बड़ा न होने पर भी वह काव्य-प्रेम से प्रेरित हो कवियों को गांव और भूमि देकर अपने पास रखता था और बढ़ी हुई धार्मिक भावना के कारण वह ब्राह्मणों को निर्वाह के लिए जीविका देकर सन्तुष्ट करता था।

विजयसिंह

महारावल पृथ्वीसिंह का देहांत होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र विजयसिंह वि० सं० १८४२ (ई० स० १७८६) में राज्य-सिंहासन पर बैठा।

बांसवाड़े पर का महाराणा भीमसिंह की चढ़ाइया

वि० सं० १८५० फाल्गुन (ई० स० १७९४ मार्च) में मेवाड़ का महाराणा भीमसिंह दूसरी बार विवाह करने को ईडर गया। वहां से लौटते समय उसने डूंगरपुर को घेर लिया। फिर वहां से उसने अपनी आठ हज़ार सेना और पच्चीस तोपों के साथ माही नदी के तट पर आकर मुक़ाम किया। महाराणा की इस चढ़ाई का महारावल पर पूरा आतङ्क छा गया और उस(महारावल)ने महाराणा से मेल कर लेना ही अच्छा समझ सेना-व्यय के तीन लाख रुपये[1] अपने सरदार ठाकुर जोधसिंह[2] के साथ भेज दिये, जिसपर वह वहां से लौट गया।

---

(१) ······संग सहस आठ सेना समत्थ,
पच्चीस तोप अरि भंज जुत्थ।
ऊपरी मुक़ाम तट महीय आय,
धर वंसवार आतंक पाय।
रावल विजेस करि मंत्र साम
कर जोध भेज त्रय लक्ख दाम।

अढ़ाड़ा कृष्णकवि; भीमविलास, पृ० ११५–१६।

वीरविनोद; प्रकरण ग्यारहवां और सत्तरहवां।

(२) जोधसिंह गढ़ी का ठाकुर था और वह उन दिनों बांसवाड़ा राज्य का मुसाहब था।

वि० सं० १८५५ (ई० स० १७९८) में महाराणा अपने विवाह के लिए तीसरी वार ईडर गया, जहां से लौटते समय उसने फिर बांसवाड़े को घेर लिया। अनन्तर वह वहां से दंड (जुरमाना) लेकर प्रतापगढ़ को रवाना हुआ[1]।

बांसवाड़ा राज्य के वरोड़ा गांव के वि० सं० १८६२ कार्तिक सुदि १२[2] (ई० स० १८०५ ता० ४ नवम्बर) के लेख से ज्ञात होता है कि उक्त संवत् मे भी वहां मेवाड़ की सेना आई थी और उससे युद्ध हुआ था,

(१) ······पीछे आवत डंड लिय, गिरपुर वंसवहाल।
देवलिया किय कर नजर, तव वहुरे भूपाल ॥ ४३ ॥

अहाड़ा कृष्णकवि; भीमविलास, पृ० १२०।

भीमविलास में महाराणा भीमसिंह का ईडर में तीसरी वार विवाह वि० सं० १८५५ के ज्येष्ठ मास में होना और वहां से लौटते समय डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया (प्रतापगढ़) से दंड लेने का उल्लेख है, किन्तु बांसवाड़ा राज्य के पारोदा गांव के एक स्मारक लेख में (आपाढादि) वि० सं० १८५४ (चैत्रादि १८५५) वैशाख सुदि में वहां मेवाड़ राज्य की सेना आने और उससे लड़ाई होने पर वैशाख सुदि ४ को वहां हटीसिंह के काम आने का उल्लेख है।

संवत् १८५४ वर्षे वइसाख सुदी ४ दने हटीसिंघ फोज दीवा(ण)जी री आवी तारे काम आवा······।

(मूल लेख की प्रतिलिपि से)।

इन दोनों में कौनसा कथन ठीक है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु सम्भव है कि महाराणा की सेना उक्त संवत् के वैशाख मास में भी वहां गई हो।

भीमविलास में महाराणा की वि० सं० १८५५ में बांसवाड़ा पर चढ़ाई होने का कोई कारण नहीं लिखा है। सम्भव है कि महाराणा की आज्ञा की अवहेलना करने के कारण बांसवाड़े पर यह चढ़ाई हुई हो।

(२) संवत १८६२ ना कातक (कार्तिक) सुदि १२ आड़ा भोपजी काम आवा राणाजी नी फोज आवी तारे काम आवा······।

(वरोड़ा गांव के स्मारक लेख की प्रतिलिपि से)।

किन्तु मेवाड़ एवं बांसवाड़ा राज्य के इतिहास में इस घटना का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

पेशवा को ख़िराज की रक़म देना स्थिर हो जाने पर भी राज्य की आर्थिक स्थिति ठीक न होने से नियत ख़िराज यथा-समय न पहुंचता था।

धार के स्वामी आनंदराव (दूसरा) की बांसवाड़े पर चढ़ाई

इसलिए धारवालों की सेना प्रायः आकर बल-पूर्वक रुपया वसूल करती थी। बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात में लिखा है कि वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) में धार की सेना ने बांसवाड़े पर चढ़ाई की, तब महारावल के सरदारों ने उससे युद्ध कर उसकी तोपें व निशान छीन लिये। इसका बदला लेने के लिए तीन वर्ष पीछे दौलतराव सिंधिया और धार की सम्मिलित सेना ने आकर बांसवाड़े को घेर लिया। तीन महीने तक बराबर लड़ाई होती रही। अंत में मरहटी सेना ने बांसवाड़े में प्रवेश कर उसे लूटा[1]। इस आक्रमण में महारावल का एक कर्मचारी शिवनाथ खवास (ब्राह्मण) भी मारा गया। इसकी पुष्टि वि० सं० १८७० आषाढ़ सुदि ५ (ई० स० १८१३ ता० २ जुलाई) के ताम्रपत्र[2] से होती है, जिसमें शिवनाथ

---

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात; पत्र १०, पृ० २।

(२) रायां राय महाराजाधिराज महारावलजी श्रीवजेसिंघजी आदेशात् खवास शंकरनाथ जोग्य जत मया ओधारी ने गाम वाड़ीयु तथा दोसी ऊदारी वाव जायगा सुधी खवास शिवनाथजी कारा भाटारी डोंगरी ऊपर पुंआर आणंदरावरी फौज में मराणा ते मूंडकटी में यावत् चन्द्रार्क तने दीदो दस्तखत जानी दत्तरामना संवत् १८७० अषाढ़सुदि ५ ...।

(वाड़िया गांव के ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से)।

राजपूताने में सामान्यतः नाई को ख़वास कहते हैं, परन्तु राजा महाराजाओं के पास रहनेवाले व्यक्ति एवं राजाओं की उपपत्नियां (प्रेमपात्री स्त्रियां, जो अन्तःपुर में रहती हैं) भी ख़वास कहलाती हैं। इससे निश्चित है कि ख़वास जातिवाचक शब्द नहीं, प्रत्युत पदविशेष का सूचक है और कई ब्राह्मण, दर्ज़ी आदि भी ख़वास कहलाते हैं।

के पंवार आनंदराव की सेना से लड़कर काले पत्थरों की पहाड़ी पर काम आने और उसके एवज़ में उसके पुत्र ग्वास शंकरनाथ को वाड़ीया गांव दिये जाने का वर्णन है।

डूंगरपुर के महारावल जसवंतसिंह (दूसरा) के समय सिंधी खुदादादखां ने वि० सं० १८६९ (ई० स० १८१२) में डूंगरपुर पर चढ़ाई कर वहां अपना अधिकार कर लिया। तब उस (जसवंतसिंह) की सहायता के लिए गढ़ी के ठाकुर अर्जुनसिंह[1] चौहान ने नवीन सेना भरती करने का प्रयत्न किया, परन्तु उसमें सफलता नहीं हुई। इसपर उस (अर्जुनसिंह) ने होल्कर के सेनाध्यक्ष रामदीन से सहायता चाही। रामदीन इस संदेश के मिलते ही डूंगरपुर की तरफ़ चला और इधर से डूंगरपुर के सरदार और गढ़ी का ठाकुर अर्जुनसिंह भी उससे जा मिले। गलियाकोट में सिंधियों से युद्ध हुआ, जिसमें उनकी बड़ी क्षति हुई, परन्तु उन्होंने महारावल

खुदादादखां सिंधी का वागड़ में उपद्रव करना

आनन्दराव पवांर (दूसरा) वि० सं० १८३७-१८६४ (ई० स० १७८०-१८०७) तक धार का स्वामी रहा। लापड़ी के पारड़ा गांव के वि० सं० १८५७ (चैत्रादि १८५८ अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि १२ (ई० स० १८०१ ता० १० अप्रेल) के एक ताम्रपत्र से (जो नीचे लिखे अनुसार है) प्रकट है कि आनन्दराव की बांसवाड़ा पर यह चढ़ाई वि० सं० १८५७ (ई० स० १८०१) में हुई थी।

राया राय महाराजा धीराजा माहारावल श्रीवजेसींघजी आदेशात्... जोग जत मया ओधारी ने गाम पारड़ो लापड़ी नो पुआंर आनंदरावजी नी फोज वांसवाड़े आवी तारे कजीयो थयो तारे प्रभावजी आ ओधार काम आव्या ते गाम पाड़लो भूंपेली नो आल्यो......संवत् १८५७ ना चईत्रवद १२ दने दुआओत महेता अमरजी

(मूल ताम्रपत्र की प्रतिलिपि से)।

(१) सर माल्कम ने लिखा है—"गढ़ी का अर्जुनसिंह, वागड़ के सरदारों में मुख्य है। वह अपने उत्तम आचरण तथा बड़ी जागीर के कारण (जो डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा राज्यों की तरफ़ से है) प्रतिष्ठा में लगभग वहां के राजाओं के समान है" (ए मेमॉयर ऑव् सेन्ट्रल इंडिया इनक्ल्युडिंग मालवा; जि० २, पृ० १२१)।

जसवंतसिंह को पकड़ लिया और उसको साथ लेकर वे सलूंबर के मार्ग से मेवाड़ की तरफ़ चले। यह समाचार थाणा (मेवाड़) के रावत सूरजमल चूंडावत ने सुनकर उस (खुदादादखां) पर हमला किया, क्योंकि सलूंबर के रावत भीमसिंह का दूसरा पुत्र भैरूंसिंह सलूंबर से दो कोस दूर वस्सी गांव में इन्हीं सिंधियों-द्वारा युद्ध में मारा गया था, जिसका वह वदला लेना चाहता था। अंत में सूरजमल के हाथ से खुदादादखां मारा गया और वह महारावल को छुड़ा लाया। अनन्तर डूंगरपुर पर महारावल जसवंतसिंह का पुनः अधिकार हो गया। 'वांसवाड़ा राज्य की ख्यात' में लिखा है कि इस उपद्रव के समय डूंगरपुर के महारावल जसवंतसिंह की सहायतार्थ वांसवाड़ा से सेना भेजी गई, जिसमें महाराजकुमार उम्मेदसिंह भी विद्यमान था, परन्तु डूंगरपुर राज्य के इतिहास में महाराजकुमार उम्मेदसिंह के आने का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

वांसवाड़ा राज्य के तलवाड़ा गांव के वि० सं० १८७० (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ६ (ई० स० १८१४ ता० १२ मार्च) के मेड़तिया शेरसिंह के स्मारक लेख[1] में उसका सिंधी शाहज़ादे की फ़ौज से लड़कर काम आने का उल्लेख है, जिससे स्पष्ट है कि सिंधियों के इस आक्रमण के समय वांसवाड़ा की सेना से भी उसका युद्ध हुआ था।

सिंधियों के इस वखेड़े के समय सरदार लोग अपनी सहायतार्थ होल्कर के एक सेनापति रामदीन को रुपया देने का क़ौल-करार कर वागड़ में लाये थे। वह (रामदीन)[2] वड़ा लोभी था। उसको तो रुपया चाहिये था, फिर भले ही उससे चाहे जितना अत्याचार करा लो, वह उसके करने

होल्कर के सेनापति रामदीन का उपद्रव

---

(१) संवत् १८७० दीने राजश्री मेडतीआ सेरसिंघजी काम आव्या फागणवदी ६ दीने······फोज शाहेजादा शेदीया नी फोज में खोड़ने वेले काम आव्या।

(मूल लेख की छाप से)।

(२) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जिल्द ३, भाग १, पृ० १३७।

में संकोच न करता था। उन दिनों वागड़ की आर्थिक दशा बड़ी ही ख़राब थी, इसलिए उसको वहां से जब भरपूर रुपया न मिला तो उसने अर्थ-सिद्धि के लिए बांसवाड़ा राज्य में उपद्रव करना आरंभ किया। तलवाड़ा गांव के वि० सं० १८७२ कार्तिक सुदि १४ (ई० स० १८१५ ता० १५ नवंबर) के एक स्मारक लेख से प्रकट है कि उस उपद्रव में खड़िया शक्ता का पुत्र हंमीरसिंह अमरेई गांव में काम आया था[१]।

महारावल का देहांत

तीस वर्ष राज्य करने के पश्चात् वि० सं० १८७२ माघ सुदि ७ (ई० स० १८१६ ता० ५ फ़रवरी) को महारावल विजयसिंह का परलोकवास हो गया[२]। उसके दो राणियां थीं, जिनमें से राठोड़ गंगाकुंवरी (सैलानावाली) के गर्भ से कुंवर उम्मेदसिंह का जन्म हुआ था।

महारावल के समय के शिलालेख व ताम्रपत्र

महारावल विजयसिंह के समय के वि० सं० १८४५ से १८७२ (ई० स० १७८९ से १८१५) तक के शिलालेख व ताम्रपत्र मिले हैं, जिनमें से कुछ ऊपर उद्धृत किये गये हैं। शेष इस प्रकार हैं—

(१) बांसवाड़ा के पृथ्वीविलास बाग़ में सतियों के सामने के मंदिर का वि० सं० १८४५ माघ सुदि ९ (ई० स० १७८९ ता० ४ फ़रवरी) का शिलालेख, जिसमें राठोड़ कनीराम की स्त्री-द्वारा उपर्युक्त मंदिर बनवाये जाने का उल्लेख है।

---

(१) संवत १८७२ ना कारतक सुदी १४ दिने खड़ीआ सकताजी सुत हमीरसिंघजी काम आव्या तेनो चीरो रोप्यो छे गाम अमरेइ उपर काम आव्या रामदीन नी फोज आवी तारे।

(मूल लेख की छाप से)।

(२) माहाराजाधिराज माहारावल श्रीविजेसिंघजी देवलोक पधारा संवत १८७२ ना माहा सुदी ७ तेनी मुरती बेसारी संवत १८९७ ना जेठसुद १४ दने............।

(महारावल विजयसिंह की छत्री के लेख से)।

(२) राठड़िया पारड़ा गांव का वि० सं० १८४६ आषाढ़ सुदि ११ (ई० स० १७६२ ता० ३० जून) का चारण धांधड़ा भारता के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें उसको उपर्युक्त गांव दिये जाने का वर्णन है।

(३) उम्मेदगढ़ी का वि० सं० १८४६ (ई० स० १७६३) का लेख, जिसमें गांव उगमणियां के राठोड़ ज़ालिमसिंह की मृत्यु होने का उल्लेख है।

(४) गढ़े गांव का वि० सं० १८५२ आश्विन सुदि १ (ई० स० १७६५ ता० १३ अक्टोबर) मंगलवार का भट भवानीशंकर सुत दोलिया के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें उपर्युक्त गांव पुण्यार्थ देने का उल्लेख है।

(५) शामपुरे गांव का वि० सं० १८५२ माघ सुदि ५ (ई० स० १७६६ ता० १३ फ़रवरी) का ख़वास जयशंकर की पुत्री फ़तेबाई और उसके पति रंगेश्वर के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें उपर्युक्त गांव फ़तेबाई के विवाह के अवसर पर कन्यादान में देने का उल्लेख है।

(६) जानावाली गांव का (आषाढादि) वि० सं० १८५३ (चैत्रादि १८५४) वैशाख सुदि ४ (ई० स० १७६७ ता० ४ अप्रेल) का गोर नाथजी के नाम का ताम्रपत्र, जिसमें उपर्युक्त गांव महारावल पृथ्वीसिंह के गया श्राद्ध के उपलक्ष्य में देने का उल्लेख है।

(७) बांसवाड़ा के सिद्धनाथ महादेव के समीपवर्ती चबूतरे के (आषाढादि) वि० सं० १८५५ (चैत्रादि १८५६, अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि १२ (ई० स० १७६६ ता० १ मई) बुधवार के दो लेख, जिनमें कसारा रणछोड़, ओमा, दोला आदि का महारावल विजयसिंह की सैन्य में काम आने का उल्लेख है।

(८) सागड़ोद की बावली का वि० सं० १८५८ शक सं० १७२३ आषाढ सुदि २ (ई० स० १८०१ ता० १३ जुलाई) का शिलालेख, जिसमें कोठारी नाथजी, अमरजी, शोभाचन्द और उम्मेदबाई का उपर्युक्त बावली (वापी) बनवाने का वर्णन है।

(९) फतेपुरे की बावली का (आषाढादि) वि० सं० १८६० (चैत्रादि १८६१) शक [illegible] १ [illegible] ांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ६

(ई० स० १८०४ ता० ३० मई) बुधवार की प्रशस्ति, जिसमें वड़नगरा जाति के नागर ब्राह्मण पंचोली प्रभाकरण का उपर्युक्त बावली (वापी) बनवाने का उल्लेख है[1] ।

(१०) बांसवाड़ा की विजयवाव (वापी) की वि० सं० १८६३ आषाढ सुदि ३ (ई० स० १८०६ ता० १९ जून) गुरुवार की प्रशस्ति, जिसमें उपर्युक्त बावली (वापी) महारावल विजयसिंह-द्वारा बनवाये जाने का उल्लेख है ।

(११) उद्दका गांव (पट्टे गढ़ी) का वि० सं० १८६४ पौष सुदि ७ (ई० स० १८०८ ता० ५ जनवरी) का स्मारक लेख, जिसमें परमार जयसिंह की बसी गांव टूटते समय मृत्यु होने का उल्लेख है ।

(१२) गरणिया गांव का (आषाढादि) वि० सं० १८६८ (चैत्रादि १८६९) वैशाख सुदि ७ (ई० स० १८१२ ता० १८ अप्रेल) का स्मारक लेख, जिसमें सीसोदिया देवीसिंह के युद्ध में काम आने का उल्लेख है ।

महारावल के समय की बांसवाड़ा राज्य की स्थिति

मरहटों, सिंधियों और मेवाड़वालों के आक्रमणों से महारावल विजयसिंह के समय बांसवाड़ा राज्य की और भी क्षति हुई, एवं आय के साधन कम हो गये । उस समय प्रजा के धन और जन का रक्षक कोई नहीं था । चारों तरफ़ लूट-मार का दौरदौरा था । प्रायः इन झगड़ों में राजपूत आदि लोग शत्रु-समूह से लड़कर बराबर प्राण दिया करते थे, जिनके जगह-जगह पर स्मारक बने हुए हैं और उनमें मृत व्यक्तियों के नाम तथा संवत् भी खुदे हैं, किन्तु अधिकांश लेख ऐसे हैं, जिनसे उस समय के इतिहास पर विशेष

---

(१) स्वस्ति श्रीबांसवाला शुभस्थाने रायां राये माहाराजाधिराज माहारावल श्रीवीजेसिंघजी माहाराजकुंओर श्रीउमेदसिंघजी वीजे राज्ये नागर वडनगरा ज्ञाति पंचोली प्रभाकरणजी सुत रतीचंदजी पोते बावड़ी गाम फतेपुरे करावी तेने परणावी संवत १८६० ना वर्षे शाके १७२६ प्रवर्तमाने वैशाखवदि ६ वार वुध दीने............।

(मूल लेख की छाप से) ।

प्रकाश नहीं पड़ता, क्योंकि उनपर मृत व्यक्ति का नाम संवत्, मिती आदि कुछ भी नहीं है। विजयसिंह ने इन दुःखों से छुटकारा पाने के लिए वि० सं० १८६६ (ई० स० १८१२) में अंग्रेज़ सरकार से संधि करने का विचारकर वड़ौदा के रेज़िडेंट के पास अपना वकील भेजा, परन्तु रेज़िडेंट ने यह कहकर उसके प्रस्ताव को टाल दिया कि बांसवाड़ा राज्य राजपूताना प्रदेश के अन्तर्गत है, इसलिए दिल्ली के रेज़िडेंट के पास यह प्रस्ताव उपस्थित करना चाहिये[1]।

महारावल विजयसिंह उदार राजा था। उसके समय में कई गांव चारण और ब्राह्मणों को दिये गये। उसने विजय वाव (विजयवावली) और विजय महल तथा राजमहलों में रघुनाथजी का मंदिर वनवाया। उसका कुंवर उम्मेदसिंह क्रूर स्वभाव का था, इसलिए वह सदा उससे असंतुष्ट रहता था।

उम्मेदसिंह

महारावल उम्मेदसिंह अपने पिता का इकलौता पुत्र था। वह वि० सं० १८७२ (ई० स० १८१६) में बांसवाड़ा राज्य का स्वामी हुआ।

उस समय राज्य में चारों तरफ़ अराजकता फैली हुई थी। देश ऊजड़ होने से आय के साधन घट गये थे और लुटेरों ने उत्पात मचा रक्खा था। ऐसे में वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१७) में नवाब करीमखां (पिंडारी)[2] बांसवाड़ा राज्य में आ पहुंचा और उसने वहां लूटमार आरम्भ की। सूरपुर गांव के (आषाढादि) वि० सं० १८७३ (चैत्रादि १८७४) वैशाख

नवाव करीमखां का बांसवाड़े आना

(१) मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना, जि० १, पृ० ५१५।

(२) संवत १८७३ वैशाख सुद १२ दने तंवर नारसिंघजी काम आव्या नवाब करमखां नी फोज आवी······।

(मूल लेख की प्रतिलिपि से)।

सुदि १२ (ई० स० १८१७ ता० २८ अप्रेल) के स्मारक लेख से ज्ञात होता है कि करीमखां की सेना से वहां युद्ध हुआ था, जिसमें तंवर नाहरसिंह मारा गया।

बारीगांवा पट्टे के बूड़वा गांव के उसी वर्ष के (अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि १० (ई० स० १८१७ ता० १० मई) शनिवार के एक लेख से प्रकट है कि उस दिवस चौहान उदयसिंह काम आया था[1]। उस समय उपर्युक्त गांव राठोड़ गंभीरसिंह की जागीर में था। बूड़वा गांव का लेख सूरपूर गांव के स्मारक लेख के समीप का है, जिससे अनुमान होता है कि करीमखां का उपद्रव बांसवाड़ा राज्य में कई दिनों तक रहा होगा।

लार्ड हेस्टिंग्ज़ की शासन-नीति के अनुसार देशी राज्यों को अंग्रेज़-सरकार के संरक्षण में लाने का उद्योग हुआ, इससे प्रेरित होकर राजपूताने के नरेश भी अंग्रेज़-सरकार की शरण लेने लगे।

अंग्रेज-सरकार से संधि

मरहटों आदि के दुःखों से पीड़ित होकर महारावल विजयसिंह ने भी अंग्रेज़-सरकार के संरक्षण में आने का प्रस्ताव किया था, परन्तु उस समय वह प्रस्ताव स्वीकृत न होकर स्थगित रहा। अब महारावल उम्मेदसिंह के राज्यासीन होने के पीछे जब कष्ट और भी बढ़ गये तथा उनसे त्राण पाने का अंग्रेज़-सरकार के संरक्षण में आने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय दीख न पड़ा तो उस(उम्मेदसिंह)ने फिर यह प्रस्ताव दिल्ली के रेज़िडेंट-द्वारा सरकार के समक्ष रक्खा। तदनन्तर जब राजपूताना के राज्यों से संधि करना आरंभ हुआ, तब ई० स० १८१८ ता० १६ सितंबर (वि० सं० १८७५ आश्विन वदि २) को भारत के गवर्नर-जेनरल

---

(१) संवत १८७३ वर्षे वैशाख वद १० शनीवासर सौआण उदसंघजी गाम वारी काम आव्या, राओल उदसंघ(उमेदसिंघ)जी नी वारे राठोड़ गमीरसिंघजी गाम वूडव।

(मूल लेख की प्रतिलिपि से)।

मार्किस ऑव् हेस्टिंग्ज़ के समय दिल्ली के मुक़ाम पर अंग्रेज़-सरकार के प्रतिनिधि थिओफिलस् मेटकॉफ़ तथा महारावल के प्रतिनिधि रतनजी पंडितजी की मध्यस्थता में दस शर्तों का एक अहदनामा लिखा गया, किन्तु महारावल ने उस अहदनामे की शर्तों को कठोर समझकर उसकी तसदीक़ न की तथा उसपर अमल करने से इन्कार कर दिया[1]।

उन दिनों अंग्रेज़-सरकार ने धार राज्य से अहदनामा कर लिया, जिसके अनुसार डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों का खिराज़ अंग्रेज़ सरकार-द्वारा लिया जाना निश्चित हुआ। तब महारावल ने कुछ और शर्तें बढ़ाकर ता० २५ दिसंबर सन् १८१८ ई० (मिती पौष वदि १३ वि० सं० १८७५) को बांसवाड़ा में कप्तान जेम्स कॉलफ़ील्ड के द्वारा तेरह शर्तों का नीचे लिखा हुआ दूसरा अहदनामा स्वीकार कर लिया। तदनुसार बांसवाड़ा राज्य अंग्रेज़ सरकार के संरक्षण में लिया जाकर उसके एवज़ में जो खिराज़ धार राज्य को दिया जाता था, वह अंग्रेज़ सरकार को देना निश्चित हुआ।

अहदनामा

ऑनरेबल् ईस्ट इंडिया कंपनी तथा राय रायां महारावल श्रीउम्मेदसिंह उनके वारिसों तथा जानशीनों के बीच का अहदनामा, जो ब्रिगेडियर जेनरल सर जॉन मालकम के० सी० बी०, के० एल्० एस०, पोलिटिकल एजेंट श्रीमान् गवर्नर जेनरल की आज्ञा से कप्तान जेम्स कॉलफ़ील्ड के द्वारा ऑनरेबल् ईस्ट इंडिया कंपनी और बांसवाड़ा के राजा राय रायां महारावल श्रीउम्मेदसिंह तथा उनके वारिसों एवं उत्तराधिकारियों की ओर से तय हुआ।

उक्त ब्रिगेडियर सर जॉन मालकम को (इस मामले में) मोस्ट नोबल फ्रैंसिस, मार्किस ऑव हेस्टिंग्ज़, के० जी०, से पूरे अधिकार मिले थे।

---

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनदज़, जिल्द ३, पृ० ४६८-७०। मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना (उर्दू), जि० १, पृ० ४१४।

शर्त पहली—अंग्रेज़ सरकार और बांसवाड़ा के राजा महारावल श्री उम्मेदसिंह तथा उनके वारिसों एवं जानशीनों के बीच मेल-जोल, मित्रता और स्वार्थ की एकता सदा बनी रहेगी और दोनों पक्षों में से किसी के मित्र एवं शत्रु दोनों के मित्र तथा शत्रु समझे जायंगे।

शर्त दूसरी—अंग्रेज़ सरकार इक़रार करती है कि वह बांसवाड़ा राज्य तथा मुल्क की रक्षा करेगी।

शर्त तीसरी—महारावल, उनके वारिस तथा जानशीन अंग्रेज़ सरकार का बड़प्पन स्वीकार करते हुए सदा उसके अधीन रहकर उसका साथ देंगे और अब से किसी दूसरे रईस या रियासत के साथ कोई तअल्लुक़ न रक्खेंगे।

शर्त चौथी—महारावल, उनके वारिस और जानशीन अपने मुल्क तथा रियासत के खुदमुख़्तार रईस रहेंगे और उनके देश एवं राज्य में अंग्रेज़ सरकार की दीवानी तथा फ़ौजदारी हुकूमत दाखिल न होगी।

शर्त पांचवीं—बांसवाड़ा राज्य के मामले अंग्रेज़ सरकार के परामर्श के अनुसार निर्णीत होंगे, पर उनमें अंग्रेज़ सरकार महारावल की मर्ज़ी का मुनासिब लिहाज़ रक्खेगी।

शर्त छठी—विना मंजूरी अंग्रेज़ सरकार की महारावल, उसके वारिस और जानशीन किसी रईस या रियासत के साथ अहद व पैमान न करेंगे, पर अपने दोस्तों और रिश्तेदारों के साथ उन(महारावल)की मामूली दोस्ताना लिखा-पढ़ी जारी रहेगी।

शर्त सातवीं—महारावल, उनके वारिस और जानशीन किसी पर ज़्यादती न करेंगे और यदि दैवयोग से किसी के साथ कोई झगड़ा पैदा हो जायगा तो उसका फ़ैसला अंग्रेज़ सरकार की मध्यस्थता में होगा।

शर्त आठवीं—महारावल, उनके वारिस और जानशीन वादा करते हैं कि जो खिराज धार के राजा या और किसी राज्य को देना बाक़ी है, वह हर साल ऐसी क़िश्तों में दिया जायगा, जो उन(महारावल)की आय के अनुकूल होंगी। किश्तें अंग्रेज़ सरकार की राय से नियत की जायंगी।

शर्त नवीं—महारावल, उनके वारिस और जानशीन अंग्रेज़ सरकार को खिराज देते रहेंगे, जो प्रतिवर्ष बांसवाड़ा प्रदेश की उन्नति के अनुसार बढ़ता जायगा और उतना ही होगा जितना कि अंग्रेज़ सरकार बांसवाड़ा राज्य की रक्षा के खर्च के लिए काफ़ी समझे, तो भी यह ख़िराज बांसवाड़ा राज्य की आमदनी पर फ़ी रुपये छः आने से अधिक न होगा।

शर्त दसवीं—महारावल, उसके वारिस तथा उत्तराधिकारी वादा करते हैं कि बांसवाड़ा प्रदेश की सेना हमेशा अंग्रेज़ सरकार के काम के लिए तैयार रहेगी।

शर्त ग्यारहवीं—महारावल, उनके वारिस तथा उत्तराधिकारी इक़रार करते हैं कि वे कभी अरबी, मकरानी, सिंधी या अन्य परदेशी सिपाहियों को अपनी सेना में भरती न करेंगे। उनकी फ़ौज में उनके देश के ही लड़ाकू जाति के मनुष्य रहेंगे।

शर्त बारहवीं—महारावल, उनके वारिसों तथा उत्तराधिकारियों के विद्रोही व नाफ़रमाबरदार बंधु-बांधवों एवं संबंधियों की अंग्रेज़ सरकार सहायता न करेगी, किन्तु उनका दमन करने में महारावल को मदद देगी।

शर्त तेरहवीं—इस अहदनामे की नवीं शर्त में महारावल इक़रार करते हैं कि वह अंग्रेज़ सरकार को ख़िराज देंगे और इसके इत्मीनान के लिए वादा करते हैं कि उस(ख़िराज)के अदा करने में देर होने या न देने की हालत में अंग्रेज़ सरकार की ओर से कोई एजेंट बांसवाड़ा में तैनात हो, जो दाण के चबूतरे तथा उसके मातहत नाकों की आमदनी से रुपये वसूल करे।

तेरह शर्तों का यह ... आज की तारीख़ कप्तान जेम्स कॉलफ़ील्ड की मारफ़त अं... सर जॉन मालकम के० सी० बी० के० एल० एस०, की ... ईस्ट इंडिया कंपनी ... से प्रतिनिधि था और ... महारावल सिंह के द्वारा—जो स्वयं ... तथा उत्तरा...

तरफ़ से प्रतिनिधि था--तय हुआ। कप्तान कॉलफ़ील्ड ने अंग्रेज़ी, फ़ारसी तथा हिन्दुस्तानी भाषा में इसकी एक नक़ल कराकर और उसपर अपने दस्तख़त और मुहर करके उसे महारावल श्रीउम्मेदसिंह के सुपुर्द किया और इसी की अपनी मोहर और दस्तख़तवाली नक़ल महारावल ने उस (कॉलफ़ील्ड) को दी।

कप्तान कॉलफ़ील्ड वादा करता है कि मोस्ट नोबुल गवर्नर जेनरल के तस्दीक़ किये हुए, इस अहदनामे की, जिसे उन्होंने स्वयं तैयार किया है, एक नक़ल, जो उसकी हूबहू नक़ल है, आज की तारीख़ से दो महीने के भीतर महारावल श्रीउम्मेदसिंह को दी जायगी और उसके दिये जाने पर कप्तान कॉलफ़ील्ड का तैयार किया हुआ यह अहदनामा लौटा दिया जायगा। महारावल श्रीउम्मेदसिंह ने अपनी इच्छा तथा अपने शरीर एवं मन की पूर्ण स्वस्थता की दशा में यह अहदनामा किया।

स्थान बांसवाड़ा, २५ दिसम्बर ई० स० १८१८ अर्थात् ता० २४ सफ़र, हिजरी १२३४, तदनुसार (अमांत) पौष वदि १२ संवत् १८७५।

(हस्ताक्षर) जे० कॉलफ़ील्ड

ऑनरेबल कंपनी की मुहर	(हस्ताक्षर) हेस्टिंग्ज़	गवर्नर जेनरल की छोटी मुहर
	,, जी० डोड्सवेल	
	,, जेम्स स्टुअर्ट	
	,, जे० ऍडम्	

आज १३ वीं फ़रवरी ई० स० १८१९ को हिज़ एक्सेलेंसी गवर्नर जेनरल ने कौंसिल में तस्दीक़ की[1]।

(दस्तख़त) सी० टी० मैट्कॉफ़,
सेक्रेटरी गवर्नमेंट

महारावल उम्मेदसिंह ने केवल चार वर्ष राज्य किया और इस अहदनामे के कुछ ही महीनों बाद (आषाढादि) वि० स० १८७५

(१) एचिसन; ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़, जिल्द ३, पृ० ४६८-७०।

महारावल उम्मेदसिंह का देहांत

(चैत्रादि, १८७६) वैशाख सुदि १० (ई० स० १८१९ ता० ५ मई) को उसका परलोकवास हो गया[1]।

उसके ६ राणियों से तीन कुंवर भवानीसिंह, चंदनसिंह और दीपसिंह तथा चार कुंवरियां गुलाबकुंवरी, हेमकुंवरी, लालकुंवरी एवं फ़तेकुंवरी उत्पन्न हुई। इनमें से चंदनसिंह, दीपसिंह एवं गुलाबकुंवरी और हेमकुंवरी की मृत्यु बाल्यकाल ही में हुई[2]। वह क्रोधी और निष्ठुर था, जिससे उसका पिता महारावल विजयसिंह उससे अप्रसन्न रहता था। विजयसिंह की कृपा खांदू के महाराज सरदारसिंह पर अधिक थी, जिससे उम्मेदसिंह ने उस (सरदारसिंह) को मार डाला।

महारावल की संतति

महारावल उम्मेदसिंह के समय के वि० सं० १८७४-७५ (ई० स० १८१७-१८) के दो शिलालेख व दो ताम्रपत्र मिले हैं, जिनका सारांश नीचे लिखे अनुसार है—

महारावल के समय के शिलालेख व दानपत्र

(१) बूड़वा पट्टे वारी गावां (गांव) का (आषाढादि) वि० सं० १८७३ (चैत्रादि १८७४, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि १० (ई० स० १८१७ ता० १० मई) शनिवार का शिलालेख, जिसमें चौहान उदयसिंह का महारावल उम्मेदसिंह के समय काम आने का उल्लेख है[3]।

---

(१) महाराजाधिराज महारावल श्रीउमेदसिंघजी देवलोक पधारा सं० १८७५ ना वैसाख सुदी १० तेनी मूरती बेसारी सं० १८९७ ना ज्येष्ठ सुदी १४ मारफत ठाकोर अरजणसिंहजी नी दस्तखत जानी लखमीचंद ना··· ।

(मूल लेख की प्रतिलिपि से)।

(२) बांसवाड़ा राज्य के वड़वे की ख्यात; पत्र १२, पृ० २।
फतेकुंवरी और लालकुंवरी का विवाह ईडर हुआ था।

(३) देखो ऊपर पृ० १५०, टिप्पण १।

छठा अध्याय

महारावल भवानीसिंह से वर्तमान महारावल सर पृथ्वीसिंहजी तक

भवानीसिंह

महारावल उम्मेदसिंह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र भवानीसिंह वि० सं० १८७६ (ई० स० १८१९) में बांसवाड़ा राज्य का स्वामी हुआ।

अंगरेज़ सरकार और वांसवाड़ा राज्य के बीच संधि वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में महारावल उम्मेदसिंह के समय में हो चुकी थी, परन्तु उसमें चढ़े हुए ख़िराज का तथा भविष्य में वांसवाड़ा राज्य से कितना ख़िराज लिया जावे, इसका कोई निर्णय नहीं हुआ था। उसके थोड़े दिनों वाद ही महारावल उम्मेदसिंह का परलोकवास हो गया। तब अंग्रेज़ सरकार ने वि० सं० १८७६ (ई० स० १८२०) में महारावल भवानीसिंह के साथ उस विषय का नीचे लिखा अहदनामा किया—

अंग्रेज सरकार से ख़िराज के सम्बन्ध में अहदनामा होना

२५ वी दिसंवर ई० स० १८१८ तदनुसार वि० सं० १८७५ को अंग्रेज़ सरकार तथा वांसवाड़ा के महारावल श्रीउम्मेदसिंह के बीच जो अहदनामा हुआ था, उसकी आठवी शर्त में उपर्युक्त रावल ने स्वीकार किया था कि उक्त अहदनामे की तारीख़ तक उनके ज़िम्मे धार के राजा या अन्य किसी राज्य का जो ख़िराज़ वाक़ी रहा होगा, वह सब वे प्रतिवर्ष उक्त अंग्रेज़ सरकार को ऐसी किश्तों में और ऐसे समय पर दिया करेगा कि जो उसकी आय के अनुकूल एवं अंग्रेज़ सरकार की इच्छा के अनुसार होंगी। अंग्रेज़ सरकार ने रावल के मुल्क तथा आय की ख़राव स्थिति का विचार कर कृपापूर्वक आठवी शर्त में दिये हुए कुल वक़ाया के बदले में केवल

पैंतीस हज़ार सालिमशाही रुपये लेना स्वीकार किया है, जो आपनी उन्नति के दिनों में दिये जाने वाले बांसवाड़ा राज्य के वार्षिक ख़िराज के बराबर है। इस लिखावट के द्वारा महारावल यह रक़म अंग्रेज़ सरकार को नीचे लिखे हुए समयों पर किश्तवार देना स्वीकार करता है—

फाल्गुन संं० १८७६, फ़रवरी ई० स० १८२० रु० १५००
वैशाखसुदि १५ सं० १८७७, अप्रेल ई० स० १८२० रु० १५००
माघसुदि १५ सं० १८७७, जनवरी ई० स० १८२१ रु० २५००
वैशाखसुदि १५ सं० १८७८, अप्रेल ई० स० १८२१ रु० २५००
माघसुदि १५ सं० १८७८, जनवरी ई० स० १८२२ रु० ३०००
वैशाखसुदि १५ सं० १८७९, अप्रेल ई० स० १८२२ रु० ३०००
माघसुदि १५ सं० १८७९, जनवरी ई० स० १८२३ रु० ३५००
वैशाखसुदि १५ सं० १८८०, अप्रेल ई० स० १८२३ रु० ३५००
माघसुदि १५ सं० १८८०, जनवरी ई० स० १८२४ रु० ३५००
वैशाखसुदि १५ सं० १८८१, अप्रेल ई० स० १८२४ रु० ३५००
माघसुदि १५ सं० १८८१, जनवरी ई० स० १८२५ रु० ३५००
वैशाखसुदि १५ सं० १८८२, अप्रेल ई० स० १८२५ रु० ३५००

उक्त अहदनामे की नवीं शर्त में महारावल ने अंग्रेज़ सरकार को रक्षण के बदले में अपने देश की उन्नति के अनुसार ख़िराज देना स्वीकार किया है, जो बांसवाड़ा राज्य की निश्चित आय पर रुपये पीछे छः आने से अधिक न होगा और अंग्रेज़ सरकार ने इस इच्छा से कि रावल के देश की शीघ्र उन्नति हो, ई० स० १८१९, २० तथा २१ में चुकाई जानेवाली ख़िराज की रक़म स्थिर करने का प्रबन्ध किया है। महारावल को स्वीकार है कि वह उक्त तीन वर्षों में नीचे लिखे अनुसार रक़में चुकावेगा—

फाल्गुन सं० १८७६, फ़रवरी ई० स० १८२०, रु० ८५००
वैशाखसुदि १५ सं० १८७७, अप्रेल ई० स० १८२०, रु० ८५००

ई० स० १८१९ के कुल १७०००

माघसुदि १५ सं० १८७७, जनवरी ई० स० १८२१, रु० १००००
वैशाखसुदि १५ सं० १८७८, अप्रेल ई० स० १८२१, रु० १००००

ई० स० १८२० के कुल २००००

माघसुदि १५ सं० १८७८, जनवरी ई० स० १८२२, रु० १२५००
वैशाखसुदि १५ सं० १८७९, अप्रेल ई० स० १८२२, रु० १२५००

ई० स० १८२१ के कुल २५०००

यह प्रवन्ध केवल तीन वर्ष के लिए है, जिसके वाद अंग्रेज़ सरकार अहदनामे की नवीं शर्त के अनुसार ख़िराज की ऐसी व्यवस्था करेगी, जो उसकी नेकनीयती के अनुसार होगी और जो रावल के देश की उन्नति तथा दोनों सरकारों की हित की दृष्टि से उचित होगी।

आज १५ वीं फ़रवरी ई० स० १८२०, तदनुसार फाल्गुन सुदि २ वि० सं० १८७६ व २६ (?) वीं रविउस्सानी हि० स० १२३६ को वांसवाड़ा में जेनरल सर मालकम के० सी० वी०, के० एल्० एस्०, की आज्ञानुसार कप्तान ए० मैक्डॉनल्ड ने अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से और महारावल श्री-भवानीसिंह ने अपनी ओर से यह अहदनामा किया[1]।

ई० स० १८२३ में अंग्रेज़ सरकार से ख़िराज सम्बन्धी नया अहदनामा होना

अंग्रेज़ सरकार से संधि हो जाने पर वांसवाड़ा राज्य में शांति स्थापित हो गई और उपद्रव के कारण देश छोड़कर जो प्रजा वाहर चली गई थी, वह फिर आकर वसने लगी, जिससे आय बढ़ गई। फलतः किश्तों के अनुसार नियत ख़िराज यथा समय दिया जाने लगा। तीन वर्ष के लिए ख़िराज का जो अहदनामा हुआ था, वह ई० स० १८२२ में पूरा हो गया; इसलिये ई० स० १८२३ के फ़रवरी में दश वर्ष के लिए नीचे लिखा अहदनामा हुआ—

ता० २५ दिसंबर ई० स० १८१८, तदनुसार पौष वि० सं० १८७५ को अंग्रेज़ सरकार और वांसवाड़ा के राजा महारावल श्रीउम्मेदसिंह के

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेज़मेन्ट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ७७१-७२।

बीच जो अहदनामा हुआ था, उसकी नवीं शर्त में उक्त रावल ने उपर्युक्त अंग्रेज़ सरकार को रक्षा के बदले में अपने देश की उन्नति के अनुसार ख़िराज देना स्वीकार किया है, जो उस(बांसवाड़ा)की निश्चित आय के अनुसार फ़ी रुपया छः आने से अधिक न होगा और चूंकि उक्त रावल ने १५ फ़रवरी ई० स० १८२०, तदनुसार फाल्गुन सुदि २ वि० सं० १८७६ के अहदनामे के मुताबिक़ ई० स० १८१६, १८२० तथा १८२१ के ख़िराज की रक़म अदा करदी है, इसलिए अंग्रेज़ सरकार ने इस उद्देश्य से कि रावल के देश की उन्नति हो कृपापूर्वक नीचे लिखे हुए वर्षों का ख़िराज अदा किये जाने का बंदोबस्त किया है—

	सालिमशाही
ई० स० १८२२ का ख़िराज	२४००० रु०
धार राज्य के बक़ाया ख़िराज का मीज़ान जोड़	७००० रु०
कुल रक़म	३१००० रु०
वह इस प्रकार से अदा किया जायगा—	
फाल्गुन वदि अमावस, मार्च ई० स० १८२३ को	१५५०० रु०
वैशाखसुदि १५ वि० सं० १८८० अप्रेल ई० स० १८२३ को	१५५०० रु०
ई० स० १८२३ का ख़िराज	२५००० रु०
धार राज्य के बक़ाया ख़िराज का मीज़ान	७००० रु०
कुल रक़म	३२००० रु०
इस रक़म में से फाल्गुनवदि अमावस वि० सं० १८८० मार्च ई० स० १८२४ को	१६००० रु०
वैशाखसुदि १५ वि० सं० १८८१ मई ई० स० १८२४ को	१६००० रु०

ई० स० १८२४ का ख़िराज	२६००० रु०
धार राज्य का बक़ाया ख़िराज	७००० रु०
मीज़ान कुल जमा	३३००० रु०
इस तादाद में से फाल्गुन वदि अमावस वि० सं० १८८१ मार्च ई० स० १८२५ को	१६५०० रु०
वैशाख सुदि १५ वि० सं० १८८२ मई ई० स० १८२५ को	१६५०० रु०
ई० स० १८२५ का ख़िराज	३४००० रु०
इस रक़म में से फाल्गुन वदि अमावस वि० सं० १८८२ मार्च ई० स० १८२६ को	१७००० रु०
वैशाख सुदि १५, वि० सं० १८८३ मई ई० स० १८२६ को	१७००० रु०
	३४०००
ई० स० १८२६ का ख़िराज	३५००० रु०
इस तादाद में से फाल्गुन वदि अमावस वि० सं० १८८३ मार्च ई० स० १८२७ को	१७५०० रु०
वैशाख सुदि १५ वि० सं० १८८४ मई ई० स० १८२७ को	१७५०० रु०

अगले पांच वर्षों अर्थात् ई० स० १८२७, १८२८, १८२९, १८३० तथा १८३१ में हर साल दो किश्तों में ऊपर लिखे हुए महीनों में वही रक़म याने ३५००० रु० सालिमशाही अदा की जायगी।

यह प्रबन्ध दस साल के लिए किया गया है, जिसकी अवधि पूरी हो जाने पर अंग्रेज़ सरकार अहदनामे की नवीं शर्त के अनुसार ऐसा बंदोबस्त करेगी, जो उसकी नेकनीयती, रावल के मुल्क की तरक़्क़ी

और दोनों सरकारों के फ़ायदे के ख़याल से ठीक होगा[1]।

यह अहदनामा मालवा एवं राजपूताना के रेज़िडेन्ट मेजर जेनरल सर डेविड ऑक्टरलोनी, वैरोनेट जी० सी० वी०, की आज्ञानुसार वागड़ एवं कांठल के स्थानीय एजेंट कप्तान ए० मैकडॉनल्ड[2] एवं बांसवाड़ा के नरेश महारावल भवानीसिंह के वीच ११ वीं फ़रवरी ई० स० १८२३ तदनुसार माघ वदि ३० वि० सं० १८७६ को बांसवाड़ा में तय हुआ[3]।

(हस्ताक्षर) ए. मैकडॉनल्ड

लोकल एजेंट

मुहर

(„) महारावल श्रीभवानीसिंह

(नागरी लिपि में)

उपर्युक्त तीनों अहदनामों के होने से बांसवाड़ा राज्य का धार से संबंध छूट गया, परन्तु राज्य में भीलों की अधिकता होने से समय समय पर वहां नये उपद्रव खड़े होते एवं सरदार सब निरंकुश होकर मनमानी करते थे, अतएव देश को आबाद करने में बड़ी ही कठिनाइयां होने लगीं। तब उपद्रवकर्त्ताओं का दमन कर वागड़ में स्थायी रूप से शांति स्थापित करने के लिए वहां अंग्रेज़ सरकार की अध्यक्षता में सेना रखना निश्चय हुआ और इस सेना व्यय के ८४०० रुपये बांसवाड़ा राज्य से लेने का

(१) उपर्युक्त अहदनामे की अवधि समाप्त होने के पीछे बांसवाड़ा राज्य से ३५००० रु० सालिमशाही वार्षिक ख़िराज लेना नियत हुआ, जो ई० स० १६०४ तक अंग्रेज़ सरकार लेती रही। जब उक्त सन् में बांसवाड़ा राज्य में सालिमशाही के स्थान में कलदार रुपयों का चलन आरम्भ हुआ, तब से ३५००० रुपये सालिमशाही के स्थान में १७५०० रुपये कलदार ख़िराज के लिये जाने लगे, जो अब तक लिये जाते हैं।

(२) लेफ्टिनेन्ट ए० मेकडॉनल्ड, जो सर जॉन माल्कम का असिस्टेन्ट था धार राज्य की स्थिति की जांच करने के लिए अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से नियत हुआ। उसने अपनी जो रिपोर्ट सर माल्कम के पास पेश की, उसमें धार राज्य का डूंगरपुर राज्य से १७५०० रु० और बांसवाड़ा से ७०००० रुपये वार्षिक ख़िराज का लेना लिखा है।

(सर जॉन माल्कम्स रिपोर्ट, ता० २२ सितम्बर १८१८ ई०)

(३) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जिल्द ३, पृ० ४७२-४।

ई० स० १८२४ (वि० सं० १८८०) में इक़रारनामा लिखा गया[1] परन्तु बांसवाड़ा राज्य के ख़िराज के अतिरिक्त सेना व्यय का भार उठाने में असमर्थ होने के कारण वह इक़रारनामा स्थगित हुआ।

अंग्रेज़ सरकार से संधि हो जाने के पश्चात् इन छः वर्षों में राज्य की आय वढ़ गई, लूट-खसोट और वारदातों में कमी होकर आशा का अंकुर उत्पन्न हुआ, किन्तु महारावल भवानीसिंह की रुचि विलासिता की ओर वढ़ी हुई होने और उसके समान ही उसके मंत्री के विलासी तथा राज्य-कार्य के अयोग्य होने के कारण राज्य-प्रबंध ठीक तरह से न हो सका एवं अंग्रेज़ सरकार का ख़िराज भी वाक़ी रहने लगा। प्रजा पर विशेष रूप से ज़्यादती होने लगी, अतएव जब महारावल के द्वारा शासन-सुधार की आशा न दीख पड़ी तो पोलिटिकल एजेंट ने शासन-कार्य में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता समझी। वहुत ही कठिनतापूर्वक अंत में महारावल ने दीवान को पृथक् करना स्वीकार किया और चढ़े हुए ख़िराज की रक़म में से भी कुछ रक़म दे दी। इसपर भी लूट-खसोट और हत्याओं का होना वंद न हुआ तो प्रतापगढ़ राज्य की सहायता से उसकी रोक का उचित प्रबंध किया गया[2]।

पोलिटिकल एजेंट का शासन-कार्य में हस्तक्षेप करना

वि० सं० १८८६ (ई० स० १८२६) में कप्तान स्पियर्स...... ने, जो महारावल को उत्तम सलाह देकर शासन-कार्य चलाने के लिए नियत हुआ था, एक पुलिस के कर्मचारी को उसका कुछ अपराध साबित होने पर मौक़ूफ़ कर दिया। उस (कर्मचारी) ने पुनः अपनी जगह मिलने के लिए कई वार प्रार्थना की, जो मंजूर न हुई। इसपर उस (कर्मचारी) को जब निश्चय हो गया कि उसकी जगह फिर उसे न मिलेगी तो उसने एक मुसलमान नौकर को मिलाकर उक्त कप्तान को मार डालने का इरादा किया, किन्तु

महारावल के अंग्रेज सलाहकार को मारने का प्रयत्न

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़, जिल्द ३, पृ० ४४५।
(२) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ४१६।

यह बात प्रसिद्ध हो गई और जांच से अपराध साबित होने पर उन दोनों अपराधियों को राज्य से निर्वासित करने की सज़ा दी गई, परन्तु मुख्य अपराधी बंबई जाते हुए रास्ते में ही भाग गया[1]।

महारावल भवानीसिंह के समय में शासन-संबंधी कार्यों में अव्यवस्था बनी ही रही। सरकारी खिराज भी बहुत सा बाक़ी रह गया। तब

महारावल का शासन-कार्य व्यवस्थित रूप से चलाने का इक़रार करना

महारावल ने कप्तान स्पियर्स के नाम ता० ६ जून ईस्वी सन् १८३६ (वि० सं० १८९३ आषाढ़ वदि ११) को खरीता भेजकर शासन-कार्य को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए नीचे लिखा इक़रार किया—

मैं भविष्य में अपने देश के भीलों का दमन करने और आस-पास के राज्यों के पदाधिकारियों-द्वारा उनके विरुद्ध की गई शिकायतों को मिटाने की भरसक चेष्टा करूंगा। अगर वे (भील) मेरी हुकूमत न मानने की कोशिश करेंगे और अपने बेज़ाब्ता अमल जारी रक्खेंगे तो मैं उन्हें दंड देने का उचित प्रबन्ध करूंगा तथा उनके उपद्रव से जो हानि होगी, उसकी पूर्ति करूंगा। साथ ही मैं इक़रार करता हूं कि नीचे लिखी हुई शर्तों में जो बातें कही गई हैं, उनके मुताबिक़ अमल करूंगा—

शर्त पहली—सबसे पहले मैं नियमित रूप से तथा ठीक समय पर सरकार को खिराज देने और ऐसे उपाय करने की तरफ़, जिनसे मेरे देश की उन्नति एवं हित हो, ध्यान दूंगा। मैं कभी छली, धूर्त और कारसाज़ आदमियों का कहना न मानूंगा।

शर्त दूसरी—मेरे ज़िम्मे सरकार का जो खिराज बाक़ी है उसे ठीक समय पर निर्धारित किश्तों के मुताबिक़ अदा कर सकने के लिए मैं अपना ज़ाती और अपने राज्य का खर्च घटाने का भरसक प्रबंध करूंगा, जिससे खिराज की जो रक़म सरकार को देना वाजिब है उसे दे सकूं।

शर्त तीसरी—अपने राज्य के सुप्रबन्ध के लिए मैं आपकी स्वीकृति

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना, जि० १, पृ० ५२०।

से अपने मातहत मैनेजर, पोतदार आदि के ओहदों पर ऐसे व्यक्तियों को नियत करूंगा, जो मेरी रियासत का कार-बार ठीक-ठीक कर सकें और बुरे स्वभाव के मनुष्यों के बहकाने से उन्हें अलग न करूंगा। यदि वे ग़लतियां करते पाये जायंगे तो उन्हें सज़ा मिलेगी।

शर्त चौथी—वे लोग, जो बदचलनी की वजह से पहले मौकूफ़ किये गये हैं, मेरी सेवा में फिर भरती न किये जायेंगे। भविष्य में मैं भाटों, चारणों और नीच प्रकृति के लोगों की सुहबत से बचूंगा।

बक़ाया ख़िराज के १६६३८५ रुपयों में से सरकारी तौर पर, मैं आपको ८०००० रुपये की हुंडियां पहले ही दे चुका हूं। अगले साल के ख़िराज के साथ २०००० रुपये की एक और रक़म अदा की जायगी और मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आठ वर्ष के भीतर सब बक़ाया ख़िराज क़िश्तों से बेबाक कर दूंगा, जैसा कि साथ की कैफ़ियत में दर्ज है[1]।

कुल बक़ाया रक़म फ़ौरन न चुका सकने के कारण मैंने उसके लिये जो बंदोबस्त किया है, जिसे, मैं आशा करता हूं, आप मंजूर करेंगे। साथ ही मेरा निवेदन है कि आप मेरे देश की बुरी दशा और मेरी वर्तमान स्थिति पर विचार करें तथा उसे सरकार को बतावें ताकि सूद का भार, जिसे मैं किसी तरह उठा नहीं सकता, मेरे ऊपर न रहे।

बांसवाड़ा राज्य के ज़िम्मे सरकार का जो खिराज बाक़ी है, उसे चुकाने के लिए जो किश्तें मुकर्रर हुईं, उनकी कैफ़ियत—

वि० सं० १८९३ ई० स० १८३६-३७ का ख़िराज रु०	३५०००
पिछली बक़ाया	२००००
	५५०००
वि० सं० १८९४ ई० स० १८३७-३८ का ख़िराज और बक़ाया	४५०००
वि० सं० १८९५ ई० स० १८३८-३९ का ख़िराज और बक़ाया	४५०००
,, १८९६ ,, १८३९-४० ,,	४५०००

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेज़मेंट्स एण्ड सनद्ज़; जिल्द ३, पृ० ४७४-५।

वि० सं०	१८९७	ई० स०	१८४०-४१	का ख़िराज और बक़ाया	४५०००
"	१८९८	"	१८४१-४२	"	४५०००
"	१८९९	"	१८४२-४३	"	४५०००
"	१९००	"	१८४३-४४	"	४४३८५
					३६९३८५

इस इक़रारनामे से थोड़े ही दिनों बाद महारावल भवानीसिंह का वि० सं० १८९५ (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि ५ (ई० स० १८३८ ता० ६ नवम्बर) को निःसंतान देहांत हो गया[1]। उसकी राठोड़ राणी राजकुंवरी (आऊवावाली) के उदर से बाई गुलाबकुंवरी का जन्म हुआ, जिसका विवाह बूंदी के महाराव राजा रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र महाराजकुमार भीमसिंह से वि० सं० १९१२ मार्गशीर्ष सुदि ११ (ई० स० १८५५ ता० १९ दिसम्बर) बुधवार को हुआ[2], जो अपने पिता की विद्यमानता में ही मर गया।

महारावल का देहांत और संतति

महारावल भवानीसिंह के समय के वि० सं० १८७७ से १८९५ तक के लेख मिले हैं, जिनमें से निम्नलिखित लेख उस समय के इतिहास पर यत्किंचित् प्रकाश डालते हैं, इसलिए यहां उनका सारांश दिया जाता है—

महारावल के समय के शिलालेख

(१) सूरपुर गांव का वि० सं० १८७७ (अमांत) कार्तिक (पूर्णिमांत मार्गशीर्ष) वदि १४ (ई० स० १८२० ता० ४ दिसम्बर) का स्मारक लेख, जिसमें तंवर बहादुरसिंह की मादथला नामक पहाड़ पर मृत्यु होने का उल्लेख है।

---

(१) महाराजाधिराज महारावल श्रीभवानीसिंहजी देवलोक पधारा संवत १८९५ ना कारतक वदि ५ वार भौम दिने..............
..............जणी री छत्री करावी ने प्रतिष्ठा करीने एंडु चडाव्यु संवत १८९७ ना ज्येष्ठ सुदी १४ वार गुरु.........।

(महारावल भवानीसिंह की छत्री के लेख से)।

(२) मिश्रण सूर्यमल्ल; वंशभास्कर, भाग ४, पृ० ४३४०।

(२) भंवरिया गांव का (आषाढादि) वि० सं० १८७९ (चैत्रादि १८८०) चैत्र सुदि ४ (ई० स० १८२३ ता० १६ मार्च) का स्मारक लेख, जिसमें केसरीसिंह का लेंवडिया गांव में काम आने का उल्लेख है।

(३) भंवरिया गांव का (आषाढादि) वि० सं० १८७९ (चैत्रादि १८८०, अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत द्वितीय चैत्र) वदि ४ (ई० स० १८२३ ता० ३० मार्च) का स्मारक लेख, जिसमें मेड़तिया राठोड़ कल्याणसिंह के काम आने का उल्लेख है।

(४) भंवरिया गांव का (आषाढादि) वि० सं० १८७९ (चैत्रादि १८८०, अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत द्वितीय चैत्र) वदि ४ (ई० स० १८२३ ता० ३० मार्च) का लेख, जिसमें मेड़तिया रूपसिंह का लेंवडिया गांव में काम आने का उल्लेख है।

उपर्युक्त लेखों से पाया जाता है कि वि० सं० १८७७ और १८७९ में वांसवाड़ा राज्य में कोई उपद्रव हुआ था। अंग्रेज़ सरकार से संधि हो जाने के पीछे बाहरी आक्रमणों का भय मिट गया था इसलिये इन लोगों का किसी आन्तरिक विग्रह में ही मारा जाना संभव है। उस(महारावल)के अन्य लेखों में गांव, भूमि आदि दान करने का वर्णन है, परन्तु वे इतिहास के लिए उपयोगी नहीं हैं।

बहादुरसिंह

महारावल की गद्दीनशीनी

महारावल भवानीसिंह के पुत्र न होने के कारण उसकी मृत्यु होने पर गढ़ी के चौहान ठाकुर अर्जुनसिंह व कामदार शोभाचंद कोठारी ने कुवाणिया के सरदार दीपसिंह को, जो बहुत ही दूर का हक़दार था, गद्दी पर बैठाने का विचार किया[1], परन्तु सब से प्रथम हक़ खांदू के महाराज का था, अतएव दूर के खानदान से लाकर गद्दी बिठलाने में खांदूवालों की ओर से उपद्रव होने की

(१) वांसवाड़ा राज्य की ख्यात।

आशंका जान पड़ी। तब खांदू ठिकाने के संस्थापक महाराज वख्तसिंह के दूसरे पुत्र[1] बहादुरसिंह को (जो तेजपुर के महाराज रणसिंह के यहां गोद गया था) वि० सं० १८६५ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १८३८ ता० २२ नवंबर) को बांसवाड़ा का स्वामी बनाया, किन्तु वह वृद्ध और निःसंतान था, इसलिए उस (बहादुरसिंह) ने गद्दी बैठने के साथ ही सूरपुर के महाराज खुशहालसिंह के दूसरे पुत्र बख़्तावरसिंह के बेटे लक्ष्मणसिंह को, जो खांदूवालों की अपेक्षा कुछ दूर का हक़दार था, अपना उत्तराधिकारी नियत किया[2]। इसपर खांदू के महाराज मानसिंह ने उसपर उज्र किया, तब महारावल बहादुरसिंह ने उसकी हक़तलफ़ी के एवज़ में उसके ख़िराज में सदैव के लिए १३०० रुपये की कमी कर[3] वि० सं० १८९६ (ई० स० १८३९) में राज़ीनामा करवा लिया।

महारावल बहादुरसिंह का केवल पांच वर्ष राज्य करने के बाद ही वि० सं० १९०० (ई० स० १८४४) में देहांत हो गया।

महारावल का देहांत

---

(१) अर्सकिन; बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; पृ० १६४।

(२) नीचे के वंशवृक्ष से विदित होगा कि महारावल बहादुरसिंह और लक्ष्मणसिंह में क्या संबंध था—
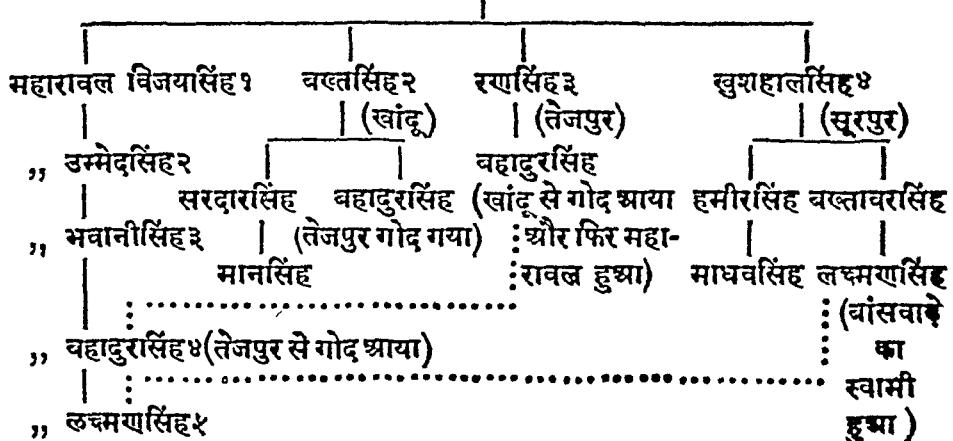
(३) अर्सकिन; बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; पृ० १६४।

राजपूताने का इतिहास—

महारावल लचमणसिंह

लक्ष्मणसिंह

महारावल का राज्याभिषेक

वि० सं० १९०० (अमांत) माघ (पूर्णिमांत, फाल्गुन) वदि १४ (ई० स० १८४४ ता० १७ फ़रवरी) को महारावल लक्ष्मणसिंह का पांच वर्ष की आयु में राज्याभिषेक हुआ[1]। उसका जन्म ई० स० १८३९ (वि० सं० १८९६) में हुआ था[2]। गद्दीनशीनी के समय उसकी आयु अल्प होने से राज्य-प्रबन्ध के लिए अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से मुंशी शहामतअलीखां आदि नियत हुए[3] और ई० स० १८५६ (वि० सं० १९१३) में जब वह राज्य करने के योग्य हो गया, तब शासनप्रबन्ध उसको सौंपा गया[4]।

बांसवाड़ा राज्य में विशेषतः भीलों का निवास है और वे लोग लूट-मार को ही अपना मुख्य पेशा समझते हैं, इसलिए मालवे के समीपी

बांसवाड़ा के भीलों का मोखेरी पर हमला करना

इलाके की प्रजा अपनी रक्षा के लिए बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के भीलों को रखवाली के नाम से कुछ कर दिया करती थी। वह कर संधि होने के पीछे पुलिस आदि का प्रबन्ध हो जाने से उन (भीलों) को मिलना बन्द हो गया। इसपर बांसवाड़ा के भीलों ने मोखेरी गांव पर आक्रमण किया, जिसमें उनके मुखिया गांगा का भाई जीजा मारा गया और इस खून का झगड़ा कई दिनों तक चलता रहा[5]।

उन दिनों सूंथ राज्य के भीलों में भी उपद्रव हो रहा था और मही-कांठा एजेंसी के पोसीना एवं सिरोही राज्य के भाखर के गरासिये भी बागी हो रहे थे। अतएव भीलों के उपद्रव को रोकने के लिए पश्चिमी

(१) बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात; पत्र १३, पृ० १।

(२) डा० हेंडली; रूलर्स ऑव् इंडिया; पृ० ३९।

(३) वीरविनोद; प्रकरण ग्यारहवां।

(४) अर्सकिन; बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; पृ० १६४।

(५) मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५२३।

मालवे के एजेंट के पास बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से वकील नियत किया गया और कोठारी केसरीसिंह ने, जो दीवान बांसवाड़ा और होशियार अहलकार था, कुछ समय के लिए भीलों का उपद्रव शांत कर दिया[1]।

सिपाही-विद्रोह

वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में भारतवर्ष में सिपाही-विद्रोह की ज्वाला फूट पड़ी। उस कठिन समय में सरदारों ने महारावल का साथ छोड़ दिया, जिससे उसको अपने ही भरोसे पर रहना पड़ा[2]। ई० स० १८५८ के दिसम्बर (वि० सं० १९१५ मार्गशीर्ष) मास में विद्रोही दल के मुखिया तांतिया टोपी के साथ के विद्रोही कुशलगढ़ होते हुए बांसवाड़ा की तरफ बढ़े। मार्ग में कुशलगढ़ के राव ने उन लोगों को रोकने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, परंतु उसमें सफलता नहीं हुई, क्योंकि विद्रोहियों की संख्या लगभग पांच हज़ार थी। अंग्रेज़ सरकार ने कुशलगढ़ के राव की ग़दर की इस सेवा से प्रसन्न होकर उस (कुशलगढ़ के राव) को ख़िलअत देकर सम्मानित किया[3]।

ता० ११ दिसम्बर (मार्गशीर्ष सुदि ६) को विद्रोहियों ने बांसवाड़े पहुंच वहां अधिकार कर लिया[4]। उस समय महारावल ने अपने राज्य के उत्तर की तरफ़ जंगल में जाकर आश्रय लिया[5]। तांतिया टोपी वहां एक दिन ठहरा और उसके आदमियों ने कपड़ों से लदे हुए सोलह-सतरह ऊंटों को, जो अहमदाबाद से आ रहे थे, लूट लिया[6]। विद्रोहियों-द्वारा बांसवाड़ा लूटे जाने की पूरी आशंका थी, परंतु चारों तरफ़ से सरकारी सेनाओं के

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५२३।

(२) अर्सकिन; बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; पृ० १६४।

(३) शॉवर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑव् इंडियन म्युटिनी; पृ० १३८। मुंशी ज्वालासहाय; दि लॉयल राजपूताना; पृ० २५०।

(४) शॉवर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑव् इंडियन म्युटिनी; पृ० १३८।

(५) अर्सकिन; बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; पृ० १६४।

(६) मुंशी ज्वालासहाय; दि लॉयल राजपूताना, पृ० २५०।

आ जाने तथा नीमच से मेजर लियरमाउथ की अध्यक्षता में सेना रवाना होने और रतलाम की तरफ़ से ब्रिगेडियर सोमरसेट के पहुंचने के समाचार पाकर वे (बाग़ी) लोग सलूंबर की तरफ़ होते हुए मेवाड़ की ओर चल दिये[1]।

ई० स० १८५९ (वि० सं० १९१५) में तांतिया टोपी जीरापुर में कर्नल बेंसन से हार गया, परंतु दो हज़ार विद्रोहियों के साथ फ़ीरोज़ के आ मिलने से फिर उसका बल बढ़ गया और वह मारवाड़ की तरफ़ से मेवाड़ में घुसकर ता० १७ फ़रवरी (माघ सुदि १५) को कांकरोली पहुंचा, किन्तु ब्रिगेडियर सोमरसेट तथा कप्तान शॉवर्स के आने का समाचार पाकर वह बांसवाड़ा की ओर चल दिया, पर सोमरसेट ने उसे रास्ते में ही जा दबाया और उसकी सेना तितर-बितर करदी[2]। अंत में विद्रोहियों के मुखिया के आत्मसमर्पण करने पर तांतिया टोपी पेरोन (Parone) के जंगल में जा छिपा और वह ता० ७ अप्रेल ई० स० १८५९ (वि० सं० १९१६ चैत्र सुदि ४) को गिरफ़्तार किया जाकर सिप्री (ग्वालियर) में लाया गया; जहां उसे फांसी दी गई[3]।

अंग्रेज़ सरकार से गोदनशीनी की सनद मिलना

लॉर्ड डलहौज़ी की अनुदार नीति के कारण उस समय कितने देशी राज्य वास्तविक उत्तराधिकारी न होने के कारण अंग्रेज़ सरकार के अधिकार में चले गये, जिससे भारत के देशी राजा-महाराजाओं का सरकार के प्रति असंतोष होना स्वाभाविक था और उसके कुछ चिह्न ई० स० १८५७ (वि० सं० १९१४) के सिपाही-विद्रोह में प्रत्यक्ष दीखने लगे थे तथापि अधिकांश नरेश सरकार के सहायक बने रहे। फिर महाराणी विक्टोरिया ने भारत का शासन-सूत्र ईस्ट इंडिया कंपनी से अपने हाथ में लिया तब उसने देशी राज्यों के अधिकार को वाजिब समझा। निदान पुत्र न होने पर गोद (दत्तक) लेकर उत्तरा-

(१) मुंशी ज्वालासहाय; दि लॉयल राजपूताना, पृ० २५० ।

(२) शॉवर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑव् इंडियन म्युटिनी; पृ० १४२-४४ ।

(३) वही; पृ० १४५-१४६ ।

धिकारी बनाने की सनद ई० स० १८६२ ता० ११ मार्च (वि० सं० १९१८ फाल्गुन सुदि १०) को तैयार होकर भारत के तत्कालीन वाइसराय और गवर्नर जेनरल लॉर्ड कैनिङ्ग के द्वारा उसके हस्ताक्षर सहित समस्त देशी राज्यों को दी गई। तदनुसार बांसवाड़ा राज्य को भी वह सनद भेजी गई, जिसका आशय नीचे लिखे अनुसार है—

"श्रीमती महाराणी विक्टोरिया की इच्छा है कि भारत के राजाओं तथा सरदारों का अपने अपने राज्यों पर अधिकार तथा उनके वंश की जो प्रतिष्ठा एवं मान मर्यादा है, वह हमेशा बनी रहे, इसलिए उक्त इच्छा की पूर्ति के निमित्त मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि वास्तविक उत्तराधिकारी के अभाव में यदि आप या आपके राज्य के भावी शासक हिन्दू धर्मशास्त्र और अपनी वंश-प्रथा के अनुसार दत्तक लेंगे तो वह जायज़ समझा जायगा।

"आप यह निश्चय जानें की जब तक आपका घराना सरकार का खैरख्वाह रहेगा और उन अहदनामों, सनदों तथा इक़रारनामों का पालन करता रहेगा, जिनमें अंग्रेज़ सरकार के प्रति उसके कर्त्तव्य दर्ज हैं, तब तक आपके साथ के इस इक़रार में कोई बात बाधक न होगी[1]।"

बेणेश्वर के मंदिर के लिए डूंगरपुर और बांसवाड़े के बीच परस्पर तकरार पैदा होना

सोम और माही नदियों के संगम पर जहां बांसवाड़ा और डूंगरपुर राज्य की सीमा मिलती है, डूंगरपुर के महारावल आसकरण का बनवाया हुआ वेणेश्वर का शिवालय है, जहां प्रति वर्ष मेला लगता है। उसका सब प्रबन्ध डूंगरपुर राज्य की तरफ़ से होता है और महसूल आदि की आय भी वही लेता है। बांसवाड़ा राज्य ने वहां अपना अधिकार जमाना चाहा और डूंगरपुर राज्य से इसके लिए छेड़-छाड़ की। अंत में अंग्रेज़ सरकार के प्रतिष्ठित अफ़सर मेजर मैकेंज़ी-द्वारा वि० सं० १९२१ (ई० स० १८६४) में फ़ैसला होकर उक्त स्थान पर वास्तविक हक़ डूंगरपुर राज्य का ही माना

(१) ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जि० ३, पृ० ३५-३६।

गया, जिससे यह झगड़ा शांत हुआ[1]।

ई० स० १८६५ (वि० सं० १९२२) में महारावल ने अंग्रेज़ सरकार को बांसवाड़ा राज्य में होकर रेलवे निकालने के लिए कितने ही अधिकारों के साथ बिना मूल्य भूमि देना और अपने राज्य में होकर गुज़रनेवाले माल पर महसूल राहदारी छोड़ देना स्वीकार किया[2]; किन्तु फिर बांसवाड़ा राज्य की सीमा में होकर रेलवे निकालने का विचार अंग्रेज़ सरकार ने स्थगित रक्खा, जिससे अंतिम लिखा पढ़ी नहीं हुई और आवागमन की कठिनाइयां पहले जैसी बनी रहीं।

महारावल का रेलवे निकालने के लिए जमीन देने का इक़रार करना

बांसवाड़ा राज्य की ई० स० १८६७ (वि० सं० १९२४) तक सलामी की तोपें नियत न थीं। अतएव ई० स० १८६७ (वि० सं० १९२४) में अंग्रेज़ सरकार ने बांसवाड़ा के नरेश की स्थायी रूप से १५ पन्द्रह तोपों की सलामी नियत की[3]।

बांसवाड़ा राज्य की सलामी की १५ तोपें नियत होना

बांसवाड़ा राज्य में कुशलगढ़ का ठिकाना आय की दृष्टि से प्रमुख है, जिसको बांसवाड़ा के अतिरिक्त रतलाम राज्य की तरफ़ से भी ६५ गांव जागीर में मिले हुए हैं। ई० स० १८५५ (वि० सं० १९१२) में रतलाम के स्वामी और कुशलगढ़ के राव के बीच जब झगड़ा हुआ, तब यह फ़ैसला हुआ कि उक्त राव रियासत बांसवाड़ा का मातहत है[4], परन्तु फिर कई

महारावल का कुशलगढ़ के राव से विरोध

---

(१) वि० सं० १९२२ माघ सुदि १५ (ई० स० १८६६ ता० ३० जनवरी) का मेजर ए० एम० मैकेंज़ी, पोलिटिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट हिली ट्रैक्ट्स के हस्ताक्षर सहित बेणेश्वर का शिलालेख।

(२) ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जिल्द ३, पृ० ४४५।

(३) वही; पृ०

(४) मुंशी राजपूताना; जिल्द १, पृ०

बातें ऐसी हुईं कि जिनसे उक्त राव अपने को स्वतन्त्र मानकर बांसवाड़ा राज्य की आज्ञाओं की उपेक्षा करने लगा। जब उसकी उदूलहुक्मी और सर्कशी की शिकायतें हुईं तो उसने मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट को स्पष्ट जवाब दिया कि मेरी रियासत बांसवाड़ा से बिलकुल पृथक् है। यदि बांसवाड़ा के द्वारा मुझ से लिखा पढ़ी होगी तो कदापि उत्तर न दूंगा[1]। उसे बहुत समझाया गया कि वह बांसवाड़ा राज्य के मातहत है और सरकार का अहदनामा बांसवाड़ा से है, उसके साथ नहीं, परन्तु उसने न माना। पोलिटिकल एजेंट के बुलाने पर राव बांसवाड़े गया, पर महारावल के पास नहीं गया[2]। इससे महारावल तथा उसके बीच और भी मनमुटाव हो गया।

महारावल, कुशलगढ़ के राव के ज़िम्मे ख़िराज आदि की रक़म बाक़ी निकाल कर, उससे वसूल करना चाहता था। ऐसे में वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में कलिंजरा के थाने से एक क़ैदी भाग गया, जिसके लिए यह बात फैलाई गई कि उक्त क़ैदी को कुशलगढ़ के राव का कुंवर[3] कई आदमियों को घायल कर छुड़ा ले गया है। बांसवाड़ा राज्य ने इस बात की आड़ लेकर कुशलगढ़ के राव के विरुद्ध कड़ी शिकायत की। तब पोलिटिकल अफ़सरों ने कुशलगढ़ के राव को क़ैदी सौंप देने की आज्ञा दी, पर वह क़ैदी कुशलगढ़वालों की तरफ़ से हमला कर नहीं छुड़ाया गया था, इसलिए कुशलगढ़ के राव ने अपनी निर्दोषिता बतलाते हुए कई उज्र किये, किन्तु मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल निक्सन ने उसके उज्र ठीक न समझे। अन्त में उक्त कर्नल के रिपोर्ट करने पर अंग्रेज़ सरकार ने कुशलगढ़ के राव की रतलाम की जागीर पर भी ज़ब्ती होने की कार्यवाही की[4]।

(१) मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५२४।

(२) वही; पृ० ५२४।

(३) अर्सेकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा स्टेट; पृ० १६४।

(४) ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जिल्द ३, पृ० ४४८। अर्सेकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा; पृ० १६५।

इसपर कुशलगढ़ के राव ने इस मामले में अपने को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करने के लिए पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ के फ़ैसले के विरुद्ध पैरवी की, तो पुनः इस मामले की जांच का हुक्म हुआ। जब यह मामला कर्नल हचिन्सन, पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ के सामने उपस्थित हुआ तो उसने राव के उज्र बड़े ध्यान से सुने और उसे निर्दोष माना। फिर यह मामला मेजर मैकेंज़ी आदि खेरवाड़ा के अफ़सरों को सौंपा गया, जिन्होंने घटनास्थल पर जाकर तहक़ीकात की। महारावल लक्ष्मणसिंह उन दिनों अपने कामदार केसरीसिंह कोठारी से नाराज़ हो गया था, इसलिए उक्त कोठारी ने महारावल की नाराज़गी का बदला लेने के लिए डूंगरपुर के कामदारों की मारफ़त वास्तविक हाल उक्त अफ़सर को ज़ाहिर कर दिया और महारावल से भी किसी प्रकार यह तहरीरी इक़रार करा लिया—"अपराधी का भागना कुशलगढ़ की मदद से न था, राज्य के अहलकारों की ग़फ़लत से सुनने में आया और इस मामले में कामदारों ने सब कार्यवाही मेरे (महारावल के) हुक्म से की है' ।"

इसपर उक्त अफ़सरों ने अंग्रेज़ सरकार में इस विषय की विस्तृत रिपोर्ट पेश कर महारावल की शिकायत की तो सरकार ने नाराज़ होकर ई० स० १८६६ ता० १ अगस्त (वि० सं० १९२६ श्रावण वदि ८) से महारावल की सलामी में चार तोपें छः वर्ष के लिए घटाकर ग्यारह तोपें नियत कर दीं[2]। गांव ज़ब्त करने के बदले कुशलगढ़ के राव को ६३६७ रुपये

---

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण ग्यारहवां।

(२) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेज़मेंट्स एण्ड सनद्‌ज़ (ई० स० १९३२); जिल्द ३, पृ० ४४९।

ई० स० १८७७ (वि० सं० १९३३) के देहली दरबार के समय भारत सरकार ने बांसवाड़ा राज्य की सलामी की तोपें सदैव के लिए पन्द्रह के स्थान में ग्यारह नियत कर दीं। फिर ई० स० १८७८ (वि० सं० १९३५) में इस आज्ञा में परिवर्तन होकर रियासत की १५ तोपों की सलामी स्थिर कर दी गई और महारावल लक्ष्मणसिंह की सलामी ११ तोपों की ही रक्खी गई, जो ई० स० १८८० फ़रवरी (वि० सं०

हटजाने के दिलाना तजवीज़ होकर भविष्य में कुशलगढ़ के भीतरी मामलों में महारावल के किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने, कुशलगढ़ के इलाके में से जानेवाली व्यापार की वस्तुओं का महसूल राव के ही लेने, ११००[1] रुपये (सालिमशाही) वार्षिक ख़िराज के पोलिटिकल एजेंट के द्वारा बांसवाड़ा को देते रहने और अंग्रेज़ अफ़सर बांसवाड़े का स्वत्व समझ कर जो बात कहे, उसकी तामील करने का फ़ैसला हुआ[2]।

इस फ़ैसले से कुशलगढ़ का राव बांसवाड़ा से बिल्कुल ही स्वतन्त्रसा हो गया। उसकी गणना अंग्रेज़ सरकार के संरक्षित ठिकानों में होने लगी[3] एवं उसके न्यायसम्बन्धी अधिकार सीमित कर दिये गये। वार्षिक ख़िराज नियमित रूप से बराबर दाख़िल करने और ख़ास-ख़ास अवसरों अर्थात् महारावल की गद्दीनशीनी, कुंवर तथा कुंवरियों के विवाह पर स्वयं बांसवाड़ा में उपस्थित रहने[4] के अतिरिक्त उसका अन्य कुछ भी सम्बन्ध बांसवाड़ा राज्य से न रहा।

१८३६ माघ) के पीछे १५ हो गई [एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जिल्द ३, पृ० ४४६-७]।

(१) सालिमशाही रुपये का भाव गिर जाने से ई० स० १९०४ (वि० सं० १९६१) में उसका प्रचलन बन्द होकर उसके स्थान में कलदार रुपये का बांसवाड़ा राज्य में चलन हुआ। उस समय कुशलगढ़ के ठिकाने से जो ११०० रुपये सालिमशाही बांसवाड़ा राज्य में ख़िराज के पहुंचते थे, उसके स्थान में ५५० रुपये कलदार प्रति वर्ष लेने का नियम हुआ। तब से कुशलगढ़ का राव ५५० रुपये कलदार बांसवाड़ा राज्य को ख़िराज के देता है। इसी प्रकार रतलाम राज्य की तरफ़ से खेड़ा की जागीर है, जिसका ख़िराज वह १२०५ रुपया सालिमशाही (कलदार ६००) प्रति वर्ष रतलाम राज्य को देता है (अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा स्टेट; पृ० १६०)।

(२) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जि० ३, पृ० ४४५-४६। अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा स्टेट; पृ० १६४-६५।

(३) अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा स्टेट; पृ० १६०।

(४) वही; पृ० १६०।

वांसवाड़ा और कुशलगढ़ के उपर्युक्त झगड़े में महारावल लक्ष्मण-सिंह ने अंग्रेज़ अफ़सरों के पास यह बात पेश की कि—कुछ अहलकारों ने व्यर्थ ही मेरा नाम शामिल कर मुझको बदनाम किया है। इस कार्यवाही का मुखिया कोठारी केसरीसिंह ही था, जिसको सरकार ने बेक़सूर समझ विश्वास कर लिया है कि उसने इस कार्यवाही में सम्मिलित न होने के कारण ही अपने ओहदे से पृथक् होने का नुक़सान उठाया है, परन्तु उसी ने बांसवाड़ा के अहलकारों को ज़िद्द कर इस काम के लिए तैयार किया था। जो तहरीर इस मामले में कृत्रिम कागज़ बनाये जाने की बांसवाड़ा राज्य से पेश हुई, वह उक्त कोठारी के यह दबाव देने पर कि रियासत ज़ब्त हो जायगी, पेश की गई है। उसकी ख़ास मन्शा यह थी कि वे अहल-कार जो इस मामले में फ़र्ज़ी कार्यवाही करने के अपराध में सम्मिलित हुए, सरकार के कोप से बच जावें[1],—किन्तु महारावल के इस कथन का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

अंग्रेज़-सरकार के उपर्युक्त फ़ैसले से कुशलगढ़ का ठिकाना बांसवाड़ा राज्य के दबाव से मुक्त हो गया और उसको अपना वकील असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट के पास बांसवाड़ा में नियत करने का स्वत्व मिल गया। भारत सरकार के फ़ॉरेन सेक्रेटरी डब्ल्यू० एस० सेटनकर-द्वारा ई० स० १८६९ ता० २२ जुलाई (वि० स० १९२६ आषाढ सुदि १४) को इस निर्णय की सूचना आने पर पोलिटिकल एजेंट के कथनानुसार राव ने ई० स० १८७० ता० ९ अप्रेल (वि० सं० १९२७ चैत्र सुदि ८) को असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट के पास अपना वकील नियत कर दिया[2] तथा ई० स० १८७२ जनवरी (वि० सं० १९२९) में उसने ख़िराज भी दाख़िल कर दिया[3]; परंतु तलवारबन्दी का नज़राना, जिसके लिए महारावल का उज्र था, दाख़िल नहीं किया। अंत में पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ के सिफ़ारिश करने

(१) ज्वालासहाय; वकाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५२६।
(२) वही; पृ० ५२८।
(३) वही; पृ० ५२९।

पर ई० स० १८७५ (वि० सं० १९३२) में वह (नज़राना) अंग्रेज़ सरकार ने माफ़ कर दिया[1]।

मरहटों, पिंडारियों, सिंधियों और सरदारों आदि के उपद्रवों के कारण प्रजा को न्याय मिलने के जितने भी साधन थे, वे सब मिटकर देश में अव्यवस्था और अराजकता का सूत्रपात हुआ। उस समय महारावल और प्रधान का हुक्म ही सर्वोपरि न्याय माना जाता था। इस परिपाटी से

महारावल का दीवानी फ़ौजदारी की अदालतें नियत करना

जैसे आजकल निर्धन रियाया के लिए न्याय महंगी वस्तु है, उस समय वह वैसी महंगी नहीं थी और न अधिक व्ययसाध्य थी, तो भी कभी-कभी अन्याय हो जाता था। जिसके पास देने को अधिक द्रव्य होता, वह सच्चा हो जाता था। जब से अंग्रेज़ सरकार से देशी राज्यों के साथ राजनैतिक संबंध स्थापित हुआ, तब से उसने देशी राज्यों से न्याय व्यवस्था में सुधार करने का आग्रह किया। फलतः अंग्रेज़ सरकार की प्रचलित न्याय-प्रणाली के अनुसार न्याय विभाग पृथक् किया जाकर उसको सुव्यवस्थित रूप से चलाने के हेतु नियमानुसार अदालतें स्थापित करने की योजना हुई। पोलिटिकल अफ़सरों की सलाह के अनुसार महारावल लक्ष्मणसिंह ने भी अपने यहां दीवानी और फ़ौजदारी अदालतें क़ायम कीं, परंतु बांस-वाड़ा राज्य के सरदारों की मनमानी कार्यवाही से बहुत दिनों तक कार्य सफलतापूर्वक न चला और न वे दीवानी तथा फ़ौजदारी क़ानून, जो पारसी फ़ामजी (असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट बांसवाड़ा,) ने ई० स० १८६९-७० (वि० सं० १९२६) में काठियावाड़ के दीवानी तथा फ़ौजदारी क़ानूनों का गुजराती में अनुवाद कर जारी किये थे[2], बराबर चल सके।

अंग्रेज-सरकार और देशी राज्यों के बीच अपराधियों के लेन-देन के विषय में कोई निश्चित नियम न होने से अंग्रेज़ी इलाक़े के अपराधी देशी

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १; पृ० ५२९।

(२) वही; पृ० ५४३-४४।

अपराधियों के संबंध में अंग्रेज सरकार के साथ अहदनामा होना

राज्यों में और देशी राज्यों के अंग्रेज़ी अमलदारी में चले जाते थे। जब वे मांगे जाते तो सौंपने में बड़ी कठिनता हुआ करती थी, जिससे वे दंड से बचकर निर्भयतापूर्वक विचरण करते थे। फलतः अपराधियों की संख्या में वृद्धि होकर उपद्रव बना ही रहता था और शांति स्थापित होना दुष्कर था। इस बुराई को मिटाने के लिए अंग्रेज़ सरकार ने देशी राज्यों के साथ अपराधियों के लेन-देन के नियम निश्चित कर, इक़रारनामा करना चाहा। तदनुसार ई० स० १८६८ (वि० सं० १९२५) में बांसवाड़ा राज्य के साथ नीचे लिखा अहदनामा हुआ—

पहली शर्त—अंग्रेज़ी राज्य या उसके बाहर का कोई व्यक्ति यदि अंग्रेज़ी इलाक़े में कोई संगीन जुर्म करे और बांसवाड़ा राज्य की सीमा के भीतर आश्रय ले तो बांसवाड़ा सरकार उसे गिरफ़्तार करेगी और उसके तलब किये जाने पर प्रचलित नियम के अनुसार सरकार अंग्रेज़ के सुपुर्द करेगी।

दूसरी शर्त—कोई आदमी, जो बांसवाड़ा की प्रजा हो, बांसवाड़ा राज्य की सीमा के भीतर कोई बड़ा जुर्म करे और अंग्रेज़ी राज्य में शरण ले, तो उसके तलब किये जाने पर अंग्रेज़ सरकार उसे गिरफ़्तार करेगी और दस्तूर के मुताबिक़ सरकार बांसवाड़ा के हवाले करेगी।

तीसरी शर्त—कोई व्यक्ति, जो बांसवाड़ा की प्रजा न हो, बांसवाड़ा राज्य की सीमा के भीतर कोई संगीन जुर्म कर अंग्रेज़ी इलाक़े में शरण ले, तो अंग्रेज़ सरकार उसे गिरफ़्तार करेगी और उसके मुक़द्दमे की तहक़ीक़ात वह अदालत करेगी, जिसे अंग्रेज़ सरकार हुक्म देगी। साधारण नियम के अनुसार ऐसे मुक़द्दमों की तहक़ीक़ात उस पोलिटिकल एजेंट की अदालत में होगी, जिससे बांसवाड़ा राज्य का राजनैतिक संबंध होगा।

चौथी शर्त—किसी सूरत में कोई सरकार किसी व्यक्ति को, जिस पर संगीन जुर्म का अभियोग लगाया गया हो, सुपुर्द करने के लिए बाध्य न होगी, जब तक कि प्रचलित नियम के अनुसार जिसके राज्य में अपराध

किये जाने का अभियोग लगाया गया हो, वह सरकार या उसकी आज्ञा से कोई व्यक्ति अपराधी को तलब न करे और जब तक जुर्म की ऐसी शहादत पेश न की जाय, जिससे जिस राज्य में अभियुक्त मिले उसके अनुसार उसकी गिरफ़्तारी जायज़ समझी जाय और यदि वह अपराध उसी राज्य में किया जाता, तो वहां भी अभियुक्त दोषी होता।

पांचवीं शर्त—नीचे लिखे हुए अपराध संगीन जुर्म समझे जायंगे—

(१) क़त्ल।

(२) क़त्ल करने का प्रयत्न।

(३) उत्तेजना की दशा में किया हुआ दंडनीय मनुष्य-वध।

(४) ठगी।

(५) विष देना।

(६) ज़िना-बिल्-जब्र (बलात्कार)।

(७) सख़्त चोट पहुंचाना।

(८) बच्चों का चुराना।

(९) स्त्रियों का बेचना।

(१०) डकैती।

(११) लूट।

(१२) सेंध लगाना।

(१३) मवेशी की चोरी।

(१४) घर जलाना।

(१५) जालसाज़ी।

(१६) जाली सिक्का बनाना या खोटा सिक्का चलाना।

(१७) दंडनीय विश्वासघात।

(१८) माल असबाब का हज़म करना, जो दंडनीय समझा जाय।

(१९) ऊपर लिखे हुए अपराधों में मदद देना।

छठी शर्त—ऊपर लिखी हुई शर्तों के अनुसार अपराधी को गिरफ़्तार करने, रोक रखने या सुपुर्द करने में जो ख़र्च लगे, वह उस सर-

कार को देना पड़ेगा, जो अपराधी को तलब करे।

सातवीं शर्त—ऊपर लिखा हुआ अहदनामा तब तक जारी रहेगा, जब तक अहदनामा करनेवाली दोनों सरकारों में से कोई उसके तोड़े जाने के सम्बन्ध में अपनी इच्छा दूसरी से प्रकट न करे।

आठवीं शर्त—इस (अहदनामे) में जो शर्तें दी गई हैं, उनमें से किसी का भी ऐसे किसी अहदनामे पर असर न होगा, जो दोनों पक्षों के बीच इससे पहले हो चुका है, सिवा किसी अहदनामे के उस अंश के, जो इसके विरुद्ध हो।

यह अहदनामा २४ वीं दिसम्बर ई० स० १८६८ (मिती पौष सुदि १० वि० सं० १९२५) को वांसवाड़े में हुआ।

(हस्ताक्षर) ए० आर० ई० हचिन्सन,

लेफ्टिनेंट-कर्नल, स्थानापन्न पोलिटिकल

एजेंट, मेवाड़।

वांसवाड़ा के महारावल का हस्ताक्षर और मुहर।

(हस्ताक्षर) मेयो

ता० ५ वीं मार्च ई० स० १८६९ (मिती चैत्र वदि ८ वि० सं० १९२५) को फ़ोर्ट विलियम (कलकत्ता) में हिन्दुस्तान के वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल ने इस अहदनामे की तस्दीक़ की[1]।

(हस्ताक्षर) डबल्यू० एस० सेटनकर,

सेक्रेटरी, गवर्नमेंट ऑव् इंडिया, फ़ारेन

डिपार्टमेंट।

अट्ठारह वर्ष के पश्चात् इस अहदनामे में जो थोड़ा परिवर्त्तन हुआ, वह नीचे लिखे अनुसार है—

ता० ५ वीं मार्च ई० स० १८६९ को अंग्रेज़-सरकार और बांसवाड़ा रियासत के बीच अपराधियों को सौंपने के बाबत जो अहदनामा हुआ था

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जि० ३, पृ० ४७५-७७।

और चूंकि अंग्रेज़ी इलाक़े से भागकर बांसवाड़ा राज्य में पनाह लेनेवाले मुजरिमों को सौंपने के लिए उस अहदनामे में जो प्रणाली निश्चित हुई थी वह अनुभव से अंग्रेज़ी राज्य में प्रचलित क़ानूनी वर्ताव से कम आसान और कम कारगर पाई गई, इसलिए इस लिखावट के द्वारा अंग्रेज़ सरकार तथा बांसवाड़ा राज्य के बीच यह शर्त हुई है कि भविष्य में अहदनामे की वे शर्तें, जिनमें मुजरिमों को सुपुर्द करने की कार्रवाई बतलाई गई है, अंग्रेज़ी इलाके से भागकर बांसवाड़ा राज्य में आश्रय लेनेवाले मुजरिमों को सौंपने के विषय में न लगाई जायगी, लेकिन इस समय ऐसे प्रत्येक विषय में अंग्रेज़ी भारत में जो नियम प्रचलित हैं, उन्हीं के अनुसार कार्यवाही होगी।

आज ता० २७ वीं जुलाई ई० स० १८८७ (मिती श्रावण सुदि ७ वि० सं० १९४४) को बांसवाड़ा में हस्ताक्षर हुए।

(हस्ताक्षर) महारावल बांसवाड़ा

(हस्ताक्षर) ए० एफ० पिन्हे, लेफ़्टिनेंट,
असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट बांसवाड़ा
तथा प्रतापगढ़।

(हस्ताक्षर) डफ़रिन
वॉइसरॉय एण्ड गवर्नर जेनरल ऑव्
इंडिया।

ता० २८ मार्च ई० स० १८८८ (मिती द्वितीय चैत्र वदि १ वि० सं० १९४५) को फ़ोर्ट विलियम (कलकत्ता) में हिन्दुस्तान के वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल ने इसको मंजूर करके इसकी तसदीक़ की[1]।

(दस्तख़त) एच० एम० ड्यूरंड,
सेक्रेटरी, गवर्नमेंट ऑव् इंडिया, फ़ॉरेन
डिपार्टमेंट।

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जि० ३, पृ० ४७७-७८।

मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट के अधीन मेवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के राज्य होने से वहां काम अधिक रहता था, जिससे वहां एक असिस्टेन्ट नियत किये जाने की मांग चल रही थी। इधर फिर बांसवाड़ा और कुशलगढ़ के झगड़े में उक्त पोलिटिकल एजेंट के पास कार्य बढ़ गया। फलतः ई० स० १८६६ (वि० सं० १६२६) में पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ की अधीनता में राजपूताना एजेंसी का हेडक्लर्क पारसी फ्रामजी भीकाजी बांसवाड़ा में असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट नियत किया गया[1] और ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) की संधि की धारा ६ के अनुसार उसके वेतन आदि के पंद्रह हज़ार रुपये सालिमशाही (कलदार ११७४१ रु० १० आने) वार्षिक बांसवाड़ा राज्य के ज़िम्मे लगाये गये[2]। फिर वही अफ़सर प्रतापगढ़ राज्य के असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट का कार्य भी करने लगा, जिससे ई० स० १८८४ (वि० सं० १६४१) में इस हुक्म में परिवर्त्तन होकर दौरे व अमले के वेतन का वाजिबी हिस्सा जोड़कर असिस्टेन्ट एजेंट की तनख़्वाह के पांच सौ रुपये माहवार से अधिक रक़म बांसवाड़ा राज्य से न लेना स्थिर हुआ[3]। फिर ई० स० १८८६ (वि० सं० १६४६) में इस विषय में बांसवाड़ा राज्य से केवल पांच हज़ार रुपये वार्षिक लेना तय रहा और जो १८००० रुपये ई० स० १८८४ (वि० सं० १६४१) तक बाक़ी रह गये थे, वे चढ़े हुए ख़िराज में जोड़ लिये गये[4]।

बांसवाड़े में असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट का नियत होना

---

(१) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५२५।

(२) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १६३२); जि० ३, पृ० ४४६।

(३) वही; पृ० ४४६।

(४) वही; पृ० ४४६।

बांसवाड़ा में रहनेवाला यह पोलिटिकल अफ़सर पहले असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट बांसवाड़ा कहलाता था। फिर प्रतापगढ़ राज्य का सम्बन्ध उससे हो जाने पर वह असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट बांसवाड़ा व प्रतापगढ़ कहलाने लगा। कई वर्ष पीछे

रोगियों आदि की चिकित्सा अब तक पुरानी रीति से ही होती थी और विशेषतः झाड़-फूंक तथा देशी दवाइयों-द्वारा उपचार किया जाता था।

अस्पताल की स्थापना

वि० सं० १६२६ (ई० स० १८६९-७०) में महारावल ने अपने यहां एक हकीम नौकर रक्खा। फिर एक देशी डाक्टर अंग्रेज़ सरकार से मांगा। इसपर ई० स० १८७० अगस्त (वि० सं० १९२७) में वहां पर अंग्रेज़ी चिकित्सा प्रणाली का प्रारंभ होकर अस्पताल खोला गया और चेचक का टीका लगाने की भी व्यवस्था हुई[1]।

वि० सं० १९२७ मार्गशीर्ष (ई० स० १८७० नवम्बर) में ओरीवाड़े का राठोड़ ठाकुर ओंकारसिंह, जो प्रथम वर्ग का सरदार था, मर गया।

ओरीवाड़े के ठिकाने पर दौलतसिंह का नियत होना

उसकी विधवा स्त्री ने परवतसिंह को सब लोगों की सम्मति से गोद ले लिया, परन्तु महारावल ने ओंकारसिंह की गोदनशीनी भी बेक़ायदा समझ रक्खी थी, क्योंकि ओरीवाड़े के ठाकुर प्रतापसिंह का सम्बन्धी दौलतसिंह, जो ओंकारसिंह की अपेक्षा समीपी सम्बन्धी था, विद्यमान था। इसलिए ओंकारसिंह की मृत्यु हो जाने पर महारावल ने दौलतसिंह का स्वत्व वाजिब समझ, उसका पक्ष लिया। फिर उस (महारावल) ने परवतसिंह को धोखे से बुलाकर बांसवाड़े में क़ैद कर लिया और ओंकारसिंह की स्त्री की इच्छा के विरुद्ध दौलतसिंह को वहां का मालिक बना दिया। इससे सब सरदार बिगड़ उठे। उन्होंने दौलतसिंह से जाति-बहिष्कृत की भांति व्यवहार किया और कुवानिया के ठाकुर की गमी के अवसर पर वार्षिक भोज में दौलतसिंह को न बुलाया, जिससे महारावल ने नाराज़ होकर कुवानिया के ठाकुर के रिश्तेदार को बुलाकर क़ैद कर दिया। इसपर राज्य के

जब से डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्यों का सम्बन्ध मेवाड़ की पोलिटिकल एजेंसी (फिर रेज़िडेंसी) से पृथक् हुआ, तब से उक्त असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट का पद टूट कर वही अफ़सर दक्षिणी राजपूताने का पोलिटिकल एजेंट कहलाता है।

(१) मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ४४१-४२।

जागीरदारों और गढ़ी के राव रत्नसिंह ने महारावल के विरुद्ध पोलिटिकल एजेंट के पास शिकायत की। तब पोलिटिकल एजेंट ने जाति के मामले में महारावल को हस्तक्षेप करने का अधिकार न होना बतलाकर कुवानिया के ठाकुर के रिश्तेदार को छोड़ देने के लिए लिखा, जिसपर महारावल ने उसको छोड़ दिया[1]।

विलायती और मकरानी लोगों को नौकरी से हटाना

मेवाड़, डूंगरपुर, वांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के राज्यों में भील आदि जरायम पेशा लोगों को दबाने के लिए मकरानी तथा विलायती नौकर रक्खे जाते थे, जिनसे भील और मीने दबे हुए तो अवश्य रहते थे, परन्तु वे भीलों आदि के साथ बड़ा कठोर व्यवहार करते थे। वे उन लोगों को अधिक सूद पर रुपये उधार देकर उनके बाल-बच्चों को गिरवी (रेहन) लिखवा लेते थे और जब रुपया नहीं मिलता तो वे भीलों पर सख़्ती करते तथा उनके बाल-बच्चों को छीनकर उनको लौंडी या गुलाम बना लेते थे। इसपर भील आदि क्रुद्ध होकर कभी-कभी विलायती लोगों को मार भी डालते थे। इससे फ़साद बढ़ जाया करता था और उसको दबाने में बहुत परिश्रम उठाना पड़ता था। उन्हीं दिनों ईडर राज्य के पोसिना ठिकाने का सरदार विद्रोही हो गया। उस समय पानरवा ठिकाने (भोमट, मेवाड़) के विलायती नौकर भी जाकर पोसिना के सरदार के शामिल हो गये, जिससे फ़साद बढ़ गया। अन्त में जब अंग्रेज़ सरकार ने उन लोगों के पृथक् होने पर ही शांति स्थापित होने की सम्भावना देखी तो उसने उक्त राज्यों को उन्हें नौकर न रखने की सलाह दी, जिससे बड़ी कठिनता से पठानों को नौकर रखने की प्रथा बंद हुई और ई० स० १८७०-७१ (वि० सं० १९२७) से वे वांसवाड़ा राज्य से भी पृथक् किये जाने लगे[2]।

उन्हीं दिनों गुढ़े का ठाकुर हिम्मतसिंह वांसवाड़ा राज्य की आज्ञा की उपेक्षा कर विद्रोही हो गया। जब उसका उपद्रव बढ़ गया तो राज्य ने

(१) मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५३२।

(२) वही; पृ० ५३३।

गुढ़े के ठाकुर हिम्मतसिंह का विद्रोही होकर मारा जाना

उसको गिरफ़्तार करने के लिए सेना भेजी, जिसका कई बार उसने मुक़ाबला किया। अंत में ई० स० १८७१ ता० १७ मई (वि० सं० १९२८ ज्येष्ठ वदि १३) को उसका राज्य के सिपाहियों से युद्ध हुआ, जिसमें वह उनके हाथ से मारा गया[1]।

बांसवाड़ा राज्य में गढ़ी का ठिकाना प्रथम वर्ग का है और कुशलगढ़ के समान वह भी दो राज्यों का जागीरदार है अर्थात् डूंगरपुर की तरफ़ से भी उसको चीतरी की जागीर प्राप्त है। गढ़ी का राव रत्नसिंह उदयपुर के महाराणा शंभुसिंह का श्वसुर था, अतएव उक्त महाराणा ने उसका सम्मान बढ़ाने के लिए ई० स० १८७१ (वि० सं० १९२८) में उसको राव का ख़िताब दिया[2], जिससे महारावल नाराज़ हुआ, क्योंकि रत्नसिंह को ख़िताब लेने के पूर्व उससे आज्ञा लेनी चाहिये थी। महारावल की नाराज़गी के दूसरे कारण ये भी हुए कि उस (राव रत्नसिंह) ने निःसंतान होने से महारावल की आज्ञा के बिना ही एक लड़के को गोद ले लिया तथा संगीन मामलों के अपराधियों को पोलिटिकल अफ़सरों के मांगने पर भी नहीं सौंपा[3]। महारावल ने उसके बाग़ के कुछ हिस्से को सड़क बनाने के बहाने से ले लिया और उसके इलाक़े में महसूल राहदारी, जो माफ़ था, वसूल करना आरम्भ किया। इसपर राव रत्नसिंह ने पोलिटिकल अफ़सरों के पास महारावल की शिकायत की। अन्त में राव रत्नसिंह ने, जो समझदार आदमी था, लोगों के समझाने से महारावल से मेल कर लिया। महारावल ने उसका राव का ख़िताब बहाल रक्खा, बाग़ के एवज़ में दूसरी ज़मीन दे दी और महसूल राहदारी के लिए संतोषप्रद निबटारा कर दिया। पीछे

गढ़ी के राव रत्नसिंह और महारावल के बीच मनोमालिन्य होना

(१) वीरविनोद; भाग दूसरा, प्रकरण ग्यारहवां। वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ४३२।

(२) वीरविनोद; भाग दूसरा, प्रकरण ग्यारहवां। ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ४३१।

से जब वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में कोठारी चिमनलाल बांसवाड़ा के मंत्री पद से पृथक् किया गया तब महारावल ने राव रत्नसिंह को अपना मन्त्री बनाया[1]।

उस समय तक बांसवाड़ा राज्य में शिक्षा का प्रचार प्राचीन शैली पर था और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अनुसार बालकों के पठन-पाठन की कोई व्यवस्था न थी। राजपूत तो शिक्षा से दूर रहते ही थे, ब्राह्मण, महाजन आदि भी थोड़ा बहुत जहां उनको अवसर मिलता, निजी तौर पर कुछ सीख-कर काम चलाते थे। उन दिनों विशेषतः जैन यतियों के उपाश्रयों में ही पढ़ाई होती थी; परन्तु पठनपाठन की शैली ऐसी थी कि जिससे न तो विद्यार्थी शुद्ध लिख सकते और न पढ़ सकते थे। अतएव इस खराबी को मिटाने के लिए वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१-७२) में बांसवाड़ा में हिन्दी की शिक्षा के लिए राज्य की ओर से एक अध्यापक नियत होकर राज्य के व्यय से मदरसा स्थापित किया गया[2]।

बांसवाड़ा में पाठशाला की स्थापना

उन्हीं दिनों वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) में बांसवाड़े में चिट्ठियों आदि पहुंचाने के लिए सरकार की तरफ़ से डाकखाना खोला गया, पर आय कम होने से ई० स० १८७१ के मार्च में वह बन्द कर दिया गया, किन्तु डाकखाने के बिना जनता को कष्ट होने लगा। इसपर महारावल ने अंग्रेज़ सरकार से लिखा पढ़ी की, जिससे वि० सं० १९३१ मार्गशीर्ष सुदि ६ (ई० स० १८७४ ता० १४ दिसंबर) को स्थायी रूप से बांसवाड़े में डाकखाना खोला जाकर खैरवाड़े से डाक की लाइन का सम्बन्ध जोड़ दिया गया[3]।

डाकखाना खोला जाना

धनवान लोगों में दास दासी रखने की प्रथा प्राचीन है और उच्च

(१) वीरविनोद; भाग दूसरा, प्रकरण ग्यारहवां। ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जि० १, पृ० ५३१।

(२) ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५५२।

(३) वही; पृ० ५५३।

श्रेणी के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि काम-काज के लिए दास-दासियों को रखते हैं। प्रतिष्ठित राजपूतों का काम बिना दास दासी के चल ही नहीं सकता। उनके यहां दास-दासियों का होना प्रतिष्ठा का चिह्न समझा जाता है और प्रायः कन्या के विवाह के अवसर पर दास-दासी उसकी परिचर्या के लिए दहेज में दिये जाते हैं। इसके लिए दुर्भिक्ष में ग़रीब लोग आपत्ति के मारे अपने बाल बच्चे दूसरों को (जो उनका निर्वाह कर सकें) प्रसन्नता से दे देते या आवश्यकता पड़ने पर बेंच देते थे। ऐसे बाल बच्चों को संपन्न लोग अपना दास-दासी बनाने के लिए ले लेते थे। इस दासप्रणाली से मनुष्य-बिक्री की प्रथा बढ़ती जाती थी, अतः अंग्रेज़ सरकार ने इस प्रथा को मिटाने के लिए मनुष्य-बिक्री को दंडनीय अपराध ठहराया। इसपर देशी राज्यों का भी इस तरफ़ ध्यान आकर्षित हुआ और वे दास-प्रणाली को मिटाने के लिए यत्न करने लगे। महारावल लक्ष्मणसिंह ने भी इस बात को स्वीकार कर दास-प्रथा रोकने के हेतु मनुष्य-बिक्री को रोकने की आज्ञा प्रचलित की,[1] तो भी किसी न किसी रूप में अब तक वह प्रथा कुछ कुछ जारी है।

दास-प्रथा की रोक होना

सोदलपुर का दल्ला रावत भीलों का एक मुखिया था। वि० सं० १९२९ (ई० स० १८७२-७३) में महारावल से उसका विरोध हो गया, जिसका कारण यह था कि महारावल उसकी पाल से बराड़ का दो हज़ार रुपया वसूल करना चाहता था, जब कि वह असली नौ सौ रुपये ही बतलाता था। जब राज्य ने उससे पूरे दो हज़ार रुपये वसूल करने के लिए दस्तक (धौंस) जारी की तो वह गांव छोड़कर बांसवाड़ा राज्य से प्रतापगढ़ राज्य में जाकर आबाद हो गया। वह यथासमय आठ हज़ार मनुष्यों की जमीयत इकट्ठी कर सकता था। इसलिए जब पोलिटिकल अफ़सरों को फ़साद की आशंका हुई तब उन्होंने महारावल से दल्ला को समझाकर अनुयायी बना लेने की सिफ़ारिश की। इसपर महारावल ने उससे समझौता कर

सोदलपुर के दल्ला रावत का बखेड़ा करना

(१) वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५४५-५४६।

लिया, परन्तु उस(दल्ला)ने अपने स्वभाव को नहीं छोड़ा और बांसवाड़ा छोड़ने के बाद भी प्रतापगढ़ राज्य में जाकर वारदातें कीं[1]।

सिपाही विद्रोह के समय का एक अपराधी सआदतखां, जो इंदौर रेज़िडेंसी के बाग़ियों का प्रमुख था, बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी इधर उधर छिपते रहने के कारण गिरफ़्तार नहीं होता था। फिर वह बांसवाड़े में जाकर राज्य में जमादार के ओहदे पर नौकर हो गया और लगभग दस वर्ष तक वहां नौकर रहा, परंतु उसको किसी ने न पहचाना। वि० सं० १९३० मार्गशीर्ष (ई० स० १८७३ नवंबर) में वह असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट तथा पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ कर्नल हचिन्सन की विद्यमानता में बांसवाड़े में पकड़ा जाकर ई० स० १८७४ जनवरी (वि० सं० १९३० माघ) में इंदौर भेजा गया[2]।

बागीदल के मुखिया सआदतखां का गिरफ़्तार होना

बोरी और रेचेरी नामक गांवों के लिए बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्य का परस्पर झगड़ा चल रहा था। वह वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४ के सितम्बर) में बहुत ही बढ़ गया, जिसमें प्रतापगढ़ के २९ आदमी मारे गये और ५४ घायल हुए तथा प्रतापगढ़ का माल भी लूट लिया गया। इस झगड़े में बांसवाड़े के दो आदमी मारे गये और चार घायल हुए। अंत में पोलिटिकल एजेंट-द्वारा इस मामले की तहकीक़ात होने पर कोठारी चिमनलाल, कामदार (दीवान) बांसवाड़ा, पर एक हज़ार[3] रुपया जुरमाना किया जाकर वह दस वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया गया। पांच दूसरे अहलकार, जो इस झगड़े में सम्मिलित थे, पांच-पांच वर्ष के लिए क़ैद किये जाकर उदयपुर के जेलख़ाने में भेजे गये। फिर मेजर गार्निंग दोयम कमा-

बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ राज्यों के बीच सीमा संबन्धी झगड़ा होना

(१) वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५४७।

(२) वही; जिल्द १, पृ० ५४५।

(३) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण ११ वें में कोठारी चिमनलाल से दस हज़ार रुपये जुरमाना लेना लिखा है।

न्डेन्ट मेवाड़ भील कॉर्प्स ने मौक़े पर जाकर उचित फ़ैसला कर दोनों राज्यों की सीमा पर मीनारे खड़े करवा दिये[1]।

इसी प्रकार बांसवाड़ा राज्य का प्रतापगढ़ के साथ एक दूसरा मुक़दमा अजंदा गांव के बाबत था, जिसपर बांसवाड़ा राज्य ने ई० स० १८६० (वि० सं० १९१७) से बलपूर्वक अधिकार जमा लिया था। यह मुक़दमा ई० स० १८७४-७५ (वि० सं० १९३१) में फ़ैसल हुआ, जिसमें उक्त गांव पर प्रतापगढ़ राज्य का अधिकार कराया जाकर बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से जो पत्र सुबूत में पेश हुए वे जाली माने गये[2]। इस घटना से अंग्रेज़ सरकार का महारावल के प्रति विश्वास उठ गया और उसकी बड़ी बदनामी हुई। फ़लतः उसकी सलामी की ४ तोपें छः वर्ष तक के लिए ई० स० १८६९ (वि० सं० १९२६) में घटाई गईं, जो ई० स० १८७९ (वि० सं० १९३६) तक न बढ़ीं[3]।

भीलों का उपद्रव

बांसवाड़ा राज्य के अन्तर्गत चिलकारी तथा शेरगढ़ के भील उद्दंड थे, जिनकी दोहद, सूंथ आदि में उपद्रव करने की बहुत शिकायतें होती थीं। गढ़ी का राव उनको सौंपने और गिरफ़्तार करने में उज्र करता था, इसलिए वे लोग सज़ा से बच जाते थे[4]। वि० सं० १९३० (ई० स० १८७३-७४) में बांसवाड़ा तथा कुशलगढ़ के भीलों ने उपद्रव कर सैलाना और झाबुआ राज्य में जाकर वारदातें कीं। इसपर भोपावर के पोलिटिकल एजेंट ने मालवा भील कॉर्प्स की कम्पनी वहां के प्रबंध के लिए नियुक्त की। उधर पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ ने बांसवाड़ा और कुशलगढ़ के भीलों को अपने इलाक़े से दूसरे इलाक़े में जाकर वारदातें करने से रोकने के लिए दबाव डाला और मेजर कनकेड को आवश्यकता

(१) वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५२८।

(२) वही, पृ० ५५०। वीरविनोद; भाग दूसरा, प्रकरण ग्यारहवां।

(३) एचीसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एंड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जि० ३, पृ० ४४६। अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा स्टेट; पृ० १६५।

(४) वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५४६।

होने पर सहायता देने के लिए लिखा। तब बांसवाड़ा राज्य ने अपने इलाके के प्रबंध के लिए एक योग्य अफ़सर नियत किया, परंतु भीलों का उपद्रव न रुका। इस उपद्रव का कारण यह था कि उस वर्ष पैदावार थोड़ी हुई थी तथा प्रतापगढ़ और बांसवाड़ा राज्यों के सीमा के झगड़े से उत्तेजना बढ़ गई थी। ई० स० १८७४ फ़रवरी (वि० सं० १९३० फाल्गुन) में पोलिटिकल अफ़सर ने कुशलगढ़ पहुंचकर वहां के स्वामी को पूरी ताकीद और सख़्ती की तब कुछ बन्दोबस्त हुआ[1]। उसके दूसरे वर्ष ही मोरीखेड़ा व पीपलखूंट (इलाक़े बांसवाड़ा) के बीच फ़साद हो गया, जिसका मुख्य कारण यह हुआ कि पीपलखूंट के भीलों ने मोरीखेड़ावालों के विरुद्ध एक डकैती की मुख़बिरी की, जिससे उत्तेजित होकर तीन-चार वर्ष तक मोरीखेड़ावाले वारदातें करते रहे और ई० स० १८७५ जून (वि० सं० १९३२) में मोरीखेड़ावालों ने औंकारिया रावत की प्रमुखता में पीपलखूंटवालों पर आक्रमण किया, जिसमें उनके दो आदमी मारे गये, एक की नाक कट गई और गांव लूटकर जला दिया गया। जब बांसवाड़ा के अहलकार उस झगड़े का फ़ैसला न कर सके तब असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट ने मोरीखेड़ा में जाकर दोनों स्थानों के मुखियों को बुलवाकर परस्पर राज़ीनामा करवा एक दूसरे के हाथ से अफ़ीम पिलवाई तथा एक गड्ढा खुदवा दोनों से उसमें पत्थर डलवाकर इस आशय से मिट्टी भरवा दी कि आपसी द्वेष को सदैव के लिए ज़मीन के भीतर गाड़ दिया है[2]।

मोरीखेड़ा गांव घने जंगल में है, जहां राज्य के अहलकार नहीं जाते हैं। जब असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट के अरदली ने, जो भील जाति का था, समझाया तब उक्त गांव का मुखिया देवा व औंकारया रावत, पहाड़ से उतर आये, जो रात दिन वहीं कैम्प में रहते और दूसरे लोग इस ख़याल से कि शायद फ़ौज मंगवाकर उनपर हमला किया जाय, रात्रि के समय

(१) वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० २४७।

(२) वही; पृ० २४८।

पहाड़ों में चले जाते थे[1]। ई० स० १८७५ दिसम्बर (वि० सं० १९३२ पौष) में चिलकारी गांव में चटाथला और अंग्रेज़ी इलाके के भील लड़ पड़े, जिसमें दोनों तरफ़ के दो-दो आदमी मारे गये।

लेफ़्टिनेन्ट चार्ल्स येट का असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट नियत होना

वि० सं० १९३२ आश्विन (ई० स० १८७५ जुलाई) में बांसवाड़ा राज्य का असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट पारसी फ़ामजी भीकाजी उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह का गार्जियन नियत होकर चला गया, तो उसके स्थान पर लेफ्टिनेन्ट चार्ल्स येट बांसवाड़ा में रहकर असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट का कार्य करने लगा[2]।

अंग्रेज़ सरकार के यहां से महारावल के लिए झंडा आना

श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के एम्प्रेस ऑव् इंडिया (Empress of India) पदवी धारण करने के उपलक्ष्य में ई० स० १८७७ ता० १ जनवरी (वि० सं० १९३३ माघ वदि २) को भारत के तत्कालीन वॉइसराय और गवर्नर-जेनरल लॉर्ड लिटन ने दिल्ली में एक बड़ा दरबार किया, जिसमें भारत के सब नरेश और प्रतिष्ठित पुरुष निमंत्रित किये गये थे। महारावल लक्ष्मणसिंह उस बृहत् दरबार में सम्मिलित नहीं हुआ। इस दरबार में उपस्थित नरेशों को महाराणी की तरफ़ से राजकीय निशान (झंडे) वॉइसराय-द्वारा बांटे गये, तदनुसार बांसवाड़ा राज्य के लिए बांसवाड़े में पोलिटिकल एजेंट-द्वारा झंडा आने पर महारावल ने उसे दरबार कर ग्रहण किया।

सरदारों से समझौता होना

बांसवाड़ा राज्य का अधिकांश भाग भी अन्य राज्यों की भांति जागीरदारों के अधिकार में है और खालसा की भूमि कम है। महारावल लक्ष्मणसिंह के समय बांसवाड़ा राज्य के सरदार इतने निरंकुश हो गये कि वे महारावल की आज्ञा की कोई परवाह नहीं करने लगे। उनका साहस यहां तक बढ़ गया कि

(१) वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५४६।

(२) वही; पृ० ५५१।

एजेंट गवर्नर जेनरल राजपूताना के बुलाने पर भी केवल कुछ सरदार उपस्थित हुए। किस सरदार को कितनी अवधि तक सेना के साथ सेवा करनी चाहिये, राज्य के दफ़्तर से इसका कुछ भी सही हाल नहीं मिल सकता था। सरदार स्पष्ट रूप से यहां तक कहने लग गये थे कि रियासत केवल ख़िराज ले सकती है, उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। वे अपराधियों को सौंपने में उज्र करते थे, क्योंकि अपराधियों-द्वारा उनको धन मिलता था। उनका यह भी उज्र था कि हमसे ख़िराज के अतिरिक्त और भी रक़म ली जाती है तथा महारावल प्रतिष्ठा के अनुसार हमारा सम्मान नहीं करता। असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट के समझाने पर महारावल ने सरदारों का उचित सम्मान करना आरंभ किया और ख़िराज में भी थोड़ी सी कमी कर उनको शांत करने की चेष्टा की, परंतु कुशलगढ़ और गढ़ी के सरदारों से समझौता नहीं हो सका, जिससे यह झगड़ा बढ़ता ही रहा। अंत में वि० सं० १९३९ फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० १८८३ ता० १५ मार्च) को नीचे लिखा समझौता हो गया—

सरदारों की शिकायतें	महारावल का निर्णय
(१) दशहरे के त्यौहार के अवसर पर राजधानी में सरदारों के आने पर महारावल को चाहिये कि पहले वह उनके डेरों पर जाकर उनसे मिले।	दशहरे पर सरदारों की दरख़्वास्त आने पर महारावल उनसे मुलाक़ात के लिए डेरे जाने का हुक्म देगा और जायगा।
(२) जिनको सदैव राज्य से भोजन मिलता आया है, उनको मिलना चाहिये।	जिन सरदारों के यहां भोजन पहुंचता है, वह पहुंचता रहेगा।
(३) जिनके यहां महारावल के रसोड़े से कांसा (भोजन का	यह महारावल की इच्छा पर निर्भर है।

थाल) पहुंचता है, उनके यहां वह पहुंचना चाहिये ।	
(४) जब हम महारावल के पास मुजरा करने को जावें तब हमारा मुजरा स्वीकार किया जावे ।	यह बात महारावल की इच्छा पर निर्भर है ।
(५) जब हम दरबार में मुजरा करने को जावें तब हमारे सेवक साथ रहें ।	सरदारों के साथ दरीखाने में ऐसे सेवक जा सकेंगे, जो उसके योग्य होंगे ।
(६) ताज़ीमी सरदारों के कुंवरों को सिंहवाहिनी माता के मंदिर तक घोड़ों पर चढ़े हुए जाने दिया जावे ।	जो सदा से आते हैं, वे आया करेंगे ।
(७) जब महारावल बैठ जायेंगे, तब हम अपनी-अपनी नियत बैठक पर बैठेंगे ।	प्राचीन रीति के अनुसार बैठेंगे ।
(८) जहां कहीं महारावल जायंगे वहां हम उनके साथ रहेंगे, पर कामदार आदि के साथ न जायंगे ।	आवश्यकता के अनुसार आज्ञा दी जायगी और सरदारों को साथ जाना होगा ।
(९) जब किसी सरदार के यहां कोई आवश्यक कार्य होगा, तब वह महारावल के साथ नहीं जायगा ।	इस विषय पर दर्ख़्वास्त आने पर आवश्यक कार्य का विचार कर आज्ञा दी जायगी ।
(१०) खांदू और सूरपुर के महाराज महारावल के साथ एक ही थाल में भोजन करें और हुक़ा पियें ।	यह महारावल की इच्छा पर निर्भर है ।

(११) तलवारवन्दी प्राचीन रीति के अनुसार ली जावे और जिन सरदारों से वह नहीं ली जाती, उनसे न ली जावे।

जागीर के दर्जे और हैसियत के अनुसार तलवारवन्दी पुरानी रीति के अनुसार ली जायगी।

(१२) पोल के बारे में कोई चिट्ठी जारी न की जाय।

पोल के संबंध में कोई चिट्ठी जारी न की जायगी।

(१३) जागीरदार नये पट्टे न लेंगे।

कोई नया पट्टा न दिया जायगा।

(१४) जब तक तलवारवंदी की रस्म न होगी, तब तक कोई जागीरदार मुजरा करने को न जायगा।

ऐसा न कराया जायगा।

(१५) गोद के मामले में राज्य की तरफ़ से कोई दस्तअंदाज़ी नहीं होनी चाहिये। भाई बेटे और संबंधी उसे तय करेंगे।

किसी जागीर में जब गोद लेने की आवश्यकता होगी, तब जागीरदार की स्त्रियां तथा संबंधी जिसे चाहें उसे गोद ले सकेंगे और पगड़ी बंधाई की रस्म पूरी कर दरबार को इस कार्रवाई की सूचना करेंगे।

(१६) हमारी अर्ज़ियों का जवाब मिले।

जवाब दिये जायेंगे।

(१७) सीमा संबंधी सब झगड़ों का उचित निर्णय किया जाय।

छः मास के भीतर न्यायपूर्वक उचित फ़ैसला किया जायगा।

(१८) हम मेले और गणगौर के त्यौहारों के अवसर पर उपस्थित न होंगे।

सब जागीरदारों को मेले और गणगौर के त्यौहारों पर आना पड़ेगा। केवल गढ़ी और खांदू के सरदार गणगौर के अवसर पर न आवें और अपने भले आदमियों को सवारों के साथ भेज दें, किन्तु आवश्यकता के

	समय आज्ञा होने पर उन्हें भी आना पड़ेगा।
(१९) खांदू का नाज जो राज्य की तरफ़ से रोक लिया गया है, उसका मामला राज्य से तय हो जाना चाहिये।	तय हो जायगा।
(२०) हमको जो कुछ कहना होगा, वह हम बाद में निवेदन करेंगे।	ऐसा कर सकते हैं।

सब जागीरदारों को सच्चे भाव से महारावल की आज्ञा का पालन करना चाहिये और महारावल ऊपर लिखी हुई बातों पर अमल करेंगे। मिती फाल्गुन सुदि ७ बृहस्पतिवार वि० सं० १९३९ (ता० १५ मार्च ई० स० १८८३[1])।

अनुलेख

वि० सं० १९३५ में ख़िराज में जो साढ़े पांच आने की वृद्धि की गई थी, उसमें से चार आने माफ़ कर दिये गये हैं। जागीरदारों ने दरीख़ाने का उल्लेख किया है, उसका आशय यह है कि जहां दरबार हो। मिती फाल्गुन सुदि ७ बृहस्पतिवार वि० सं० १९३९ (ता० १५ मार्च ई० स० १८८३)।

दस्तख़त राव गंभीरसिंह, गढ़ी
छोरू फ़तहसिंह, खांदू
प्रतापसिंह, देवदान
ज़ोरावरसिंह, कुंडला
गुमानसिंह, भुकिया
दूलहसिंह, गांवड़ा
बलवंतसिंह, मेतवाला
बख़्तावरसिंह, तलवाड़ा
लालसिंह, आमजा

(१) एचिसन; ट्रीटीज़ एंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्ज़ (ई० स० १९३२); जि० ३; अपेंडिक्स संख्या ३, पृ० ११-१३।

माधोसिंह, सुलकिया
गुलाबसिंह, कुवानिया

इसपर सरदारों ने महारावल की सेवा में नीचे लिखा राज़ीनामा पेश किया—

हम लोगों ने महारावल की सेवा में इक्कीस उज्र पेश किये, उनपर आज्ञाएं हो गई हैं, जिनकी नकल चिट्ठे के साथ हमको दी गई है। उसमें जो बातें लिखी हुई हैं, वे सर्वथा हम लोगों को स्वीकार हैं। हमें अब उसके सम्बन्ध में और कोई शिकायत नहीं है और हम फ़ेहरिस्त की तफ़सील के अनुसार चलेंगे। इस मामले में बतौर राज़ीनामे के हम लोग यह अर्ज़ी पेश करते हैं। मिती फाल्गुन सुदि ७ वि० सं० १६३६[1] (ता० १५ मार्च ई० स० १८८३)।

(हस्ताक्षर) राव गंभीरसिंह
छोरू फ़तहसिंह
बलवंतसिंह
बख़्तावरसिंह
गुमानसिंह
दूलहसिंह
लालसिंह
अमरसिंह
प्रतापसिंह
ज़ोरावरसिंह

उपर्युक्त राज़ीनामा पेश हो जाने पर सरदारों का बखेड़ा मिट गया, परन्तु शासन नीति में कुछ भी परिवर्त्तन न होने के कारण अव्यवस्था बनी रहने से पोलिटिकल अफ़सरों और महारावल के बीच मनमुटाव बना ही रहा।

---

(१) एचिसन्; ट्रीटीज़, एंगेजमेन्ट्स एंड सनद्ज़ (ई० स० १९३२), जि० ३, अपेन्डिक्स संख्या ३, पृ० ११-१३।

बांसवाड़ा राज्य से डूंगरपुर, उदयपुर, प्रतापगढ़, रतलाम, सैलाना झाबुआ, झालोद और सूंथ इलाक़ों की सीमा मिलती है, जिससे प्राय: सीमा संबंधी विवाद बना ही रहता और उधर राज्य के खालसे और जागीरदारों के गांवों की सीमा के झगड़े भी हुआ करते थे। उनका निवटारा न होने से बांसवाड़ा राज्य को प्रतिवर्ष विशेष रूप से हानि उठानी पड़ती थी। अतएव असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट ने बांसवाड़ा में नियत होते ही राज्य में सुख शांति का विस्तार करने के लिए इन सरहदी झगड़ों को मिटाने का कार्य आरंभ किया। कप्तान बेअर्ड ने ई० स० १८७१-७२ (वि० सं० १६२८) में चार मुक़दमे बांसवाड़ा और रतलाम की सीमा के तय किये तथा ई० स० १८७२-७३ (वि० सं० १६२६) में जानपाल्या और जानपुरा का मुक़दमा जो सरवन (इलाके रतलाम) तथा बांसवाड़ा राज्य के बीच चल रहा था, फ़ैसल किया। सात मुक़दमे कुशलगढ़ तथा रतलाम राज्य के और एक मुक़दमा कुशलगढ़ तथा सैलाना का एवं अन्य बांसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ के बीच के मुक़दमे भी फ़ैसल हो गये[1]।

सीमा संबंधी झगड़ा का निर्णय होना

इसी प्रकार ई० स० १८७५ (वि० सं० १६३२) तक बांसवाड़ा तथा कुशलगढ़ के बीच के सीमा संबंधी डेढ़ सौ मुक़दमे फैसल हुए[2]। चटाथला एवं मेड़ीखेड़ा (परगने चिलकारी) तथा ज़ालिमपुरा (पट्टे कुशलगढ़) के बीच बहुत समय से झगड़ा चल रहा था। उसमें कई व्यक्ति भी हताहत हुए थे, अतः दोनों जगहों के सीमा संबंधी वृत्त जाननेवाले व्यक्तियों को एकत्रित कर भविष्य में लड़ाई न हो, इस दृष्टि से तलवार की शपथ दिलवाकर फ़ैसला करा दिया गया[3]। इन सब का परिणाम यह हुआ कि यहां के निवासी शान्तिपूर्वक निवास कर कृषि कार्य को बढ़ाने लगे।

(१) मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५२० ।

(२) वही; पृ० ५३० ।

(३) वही; पृ० ५३० ।

महारावल लछमणसिंह के समय का पिछला वृत्तांत अन्तरङ्ग झगड़ों एवं गृहकलह आदि घटनाओं से भरा हुआ है, जो महत्त्वपूर्ण न होने से उल्लेखनीय नहीं है। वह पुरानी चाल का कट्टर नरेश था, इसलिए उसके समय में बांसवाड़ा राज्य समयोचित उन्नति से वंचित रहा। शासन-कार्य सुव्यवस्थित रूप से न चला, जिससे अव्यवस्था बनी ही रही। अंग्रेज़ सरकार का ख़िराज भी समय पर नहीं दिया जाता था और इधर संवत् १९५६ (वि० सं० १८९९-१९००) का भीषण अकाल पड़ा, जिससे राज्य ऋण-ग्रस्त हो गया। जब अंग्रेज़-सरकार ने राज्य को ऋण-ग्रस्त तथा चढ़ा हुआ ख़िराज चुकाने में असमर्थ एवं दुर्भिक्ष-पीड़ित देखा तब शासन-संबंधी अधिकार महारावल से लेकर असिस्टेन्ट रेज़िडेन्ट मेवाड़ के सुपुर्द कर दिया[1]। चढ़े हुए ख़िराज, दुर्भिक्ष का ख़र्च एवं अन्य कर्ज़दारों को चुकाने के लिए ढाई लाख रुपये, पच्चीस हज़ार रुपये वार्षिक जमा कराने की शर्त पर, अंग्रेज़-सरकार से कर्ज़ लेकर उचित रीति से प्रबंध करना आरंभ हुआ, जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

महारावल का शासन कार्य से पृथक् होना

महारावल लछमणसिंह को शिल्प से प्रेम होने के कारण महल आदि बनवाने का अनुराग था। उसने अपने राज्य-काल में बांसवाड़े के बाईतालाब में जलविलास महल, राजधानी के पुराने महलों में शहरविलास, अजबविलास, बसंतमहल, लछमणमहल, रणजीतविलास, सुखऋतुविलास, अमरसुखविलास, चंपामहल, नज़रमहल, शीशमहल, कुशलबाग़ के महल आदि बनवाये। उसने बांसवाड़ा के प्राचीन महलों का जीर्णोद्धार करवाया, कई नये कुंए और बावलियां बनवाईं तथा शहरकोट की मरम्मत करवाई। शिव का परम भक्त होने के कारण उसने कुशलबाग़ में राजराजेश्वर नामक शिवमंदिर बनवाया और वहीं अगड़कोट पर उसने विशाल पाषाण स्तम्भ पर ऊंची

महारावल के बनवाये हुए महल आदि

(१) एचीसन्; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनदृज़ (ई० स० १९३२); जि० ३, पृ० ४४७। अर्सकिन; बांसवाड़ा राज्य का गैज़ेटियर; पृ० ४४७।

अंगुली किये हुए बैठी हुई तपस्वी पुरुष की मूर्ति बनवाई, जिसका आशय लोग यह बतलाते हैं कि मनुष्य के प्रत्येक अच्छे और बुरे कार्यों को अन्तरिक्ष में एक ईश्वर ही देखता है। उसने बाई-तालाब की पाल का जीर्णोद्धार करवाया और अपनी जन्मभूमि के गांव वनाले में अपने पिता की स्मृति में शिवालय बनवाकर उसका नाम बख्तेश्वर तथा बावली का नाम बख्तबाव रक्खा। उसने कई नये शिव-मंदिर बनवाये और पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया।

महारावल के अन्य कार्य

महारावल लक्ष्मणसिंह ने वि० सं० १९३४ (ई० स० १८७७) के दुर्भिक्ष के समय निर्धन व्यक्तियों के लिए अपने राज्य में अन्नक्षेत्र खोलकर क्षुधातुर लोगों के दुःख को निवारण किया। व्यापार की वृद्धि के लिए बांसवाड़ा में राजराजेश्वर शिव का मेला भरने की व्यवस्था की, जिसमें दूर-दूर से व्यापारी आने लगे। गांव दाणीपीपले में हाट का भरना उसके समय में आरम्भ हुआ और वहां के घाटे का मार्ग ठीक बनवाया गया। बांसवाड़ा से डूंगरपुर की सीमा तक गाड़ियों के चलने का रास्ता भी उसके समय में ही ठीक हुआ। उसने अपनी प्रजा की रक्षार्थ कई स्थानों पर थाने स्थापित कर लूट-खसोट बन्द की एवं तलवाड़ा के घाटे में, जहां भयानक जंगल है, भविष्य के लिए अच्छा प्रबन्ध किया। वह धार्मिक प्रवृत्ति का नरेश था और यज्ञादिक पर उसे विश्वास था इसलिए उसने अपने राज्य-समय में कई यज्ञ करवाये। उसने अपने राज्य में नया तोल और नाप जारी किया तथा सांकेतिक लिपि बनवाई, जो राजराजेश्वरी लिपि कहलाती थी। इस लिपि के कुछ अक्षर उसके सोने, चांदी और तांबे के सिक्कों एवं राजराजेश्वर के मंदिर में शिवलिङ्ग की जलहरी पर खुदे हुए देखने में आये हैं। राजपूतों में कुरीति निवारणार्थ त्याग आदि के प्रबन्ध के लिए राजपूताने के तत्कालीन एजेंट गवर्नर जेनरल कर्नल वाल्टर के नाम पर 'वाल्टरकृत राजपुत्रहितकारिणी सभा' की स्थापना होकर नियम बनाये गये, जो उसके राज्य-समय में बांसवाड़ा राज्य में भी जारी हुए, परन्तु उनसे जैसा चाहिये वैसा लाभ नहीं

हुआ। मरहटों आदि के उत्पात से राज्य की जो दुर्दशा हुई थी, वह उसके समय में किसी क़दर मिट गई। वांसवाड़ा राज्य में कलदार सिक्के का चलन और तार विभाग का प्रारम्भ उसके समय में ही हुआ।

वि० सं० १९६० (ई० स० १९०३) में महारावल के छोटे कुंवर सूर्यसिंह का देहांत हो गया, जिसका उसको बड़ा रंज हुआ और वह भी अपने जीवन से निराश हो गया। वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) की वसन्त ऋतु में महारावल अपने राज्य में भ्रमणार्थ गया हुआ था। वहीं भीमसोर के सरदार के यहां वह बीमार होकर दो दिवस तक पीड़ित रहने के उपरान्त वि० सं० १९६२ (अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि ९ (ई० स० १९०५ ता० २८ अप्रेल) को ६२ वर्ष राज्य कर परलोक सिधारा। उसका शव वहां से पीनस (मियाने) में रखकर वांसवाड़े लाया गया जहां राज-रीति के अनुसार उसका दाह संस्कार हुआ। उसने चौदह विवाह किये थे, जिनसे कई संतानें हुईं। उनमें से कुंवर शंभुसिंह, सज्जनसिंह और सवाईसिंह उसकी मृत्यु के समय विद्यमान थे। उसका शरीर लंबा और पतला एवं मुंह गोल था।

महारावल का परलोकवास

महारावल लक्ष्मणसिंह का जीवन उच्च आदर्शों से परिपूर्ण न था। विवाहित राणियों के अतिरिक्त ग्यारह परदायतें (उपपत्नियां) और छः प्रीतिपात्र दासियां थीं, जिनसे लगभग ४५ संतानें हुईं। वह शैव धर्म का अनुयायी होने पर भी अन्य धर्मों से प्रेम रखता था। राजपूतों के जन्मसिद्ध अधिकार अश्व-शिक्षा और शस्त्र-विद्या का उसको पूरा ज्ञान था। राज्य की स्थिति के अनुसार वह उदार राजा था। उसका स्वभाव सरल और वृथा आडंबर से शून्य था। वह काव्य तथा सङ्गीत का प्रेमी और धुन का पक्का था। कुछ सरदारों और समीपवर्ती राज्यों के साथ उसका व्यवहार अच्छा न रहा, जिससे राज्य को बड़ी भारी क्षति हुई और उसे अपमान सहना पड़ा। अपने राज्य-शासन के दीर्घ समय में ओंकारेश्वर की यात्रा के अतिरिक्त वह कहीं

महारावल का व्यक्तित्व

बाहर नहीं गया और न उसने आधुनिक रेल, तार आदि सामयिक वस्तुओं से लाभ उठाया। उसका कुंवर शंभुसिंह से मेल नहीं रहा, जिससे उसने उसको अपने राज्य से चले जाने की आज्ञा दी। तब वह (कुंवर) कुछ काल तक उदयपुर और डूंगरपुर राज्यों में जाकर रहा। महारावल बोल-चाल में बड़ा निर्भीक था और अपने विचारों को प्रकट करने में कुछ भी संकोच न करता था। मुंह पर वह कभी उस्तरा नहीं फिरवाता न कभी मादा जानवर (घोड़ी) को सवारी के काम में लाता था।

शंभुसिंह

महारावल का जन्म और गद्दीनशीनी

महारावल शंभुसिंह का जन्म वि० सं० १९२५ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि १३ (ई० स० १८६८ ता० १४ अक्टोबर) को हुआ था। अपने पिता महारावल लक्ष्मणसिंह के देहांत के समय वह डूंगरपुर में था। जब उसके पास पिता की मृत्यु का समाचार पहुंचा तब वह बांसवाड़े गया और (आषाढादि) वि० सं० १९६१ (चैत्रादि १९६२) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १९०५ ता० ९ मई) को उसकी गद्दीनशीनी हुई।

कौंसिल-द्वारा शासन-प्रबंध

शासन-कार्य चलाने के लिए महारावल लक्ष्मणसिंह के समय से ही असिस्टेन्ट रेज़िडेंट (मेवाड़) के निरीक्षण में एक कौंसिल बन चुकी थी और उसमें पांच सदस्य (असिस्टेन्ट रेज़िडेंट मेवाड़, दीवान, दो सरदार और एक नगर निवासी-साहूकार) थे। इस कौंसिल ने राज्य-कार्य अपने हाथ में लेते ही जो-जो खराबियां थीं, उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया और राज्य के प्रत्येक विभाग में आवश्यक परिवर्तन कर कार्य सुव्यवस्थित रूप से चलाने की व्यवस्था की।

पुलिस-विभाग का नवीन रीति से संगठन होकर प्रजा की रक्षा के लिए जगह-जगह थाने और चौकियां स्थापित की गईं। न्याय विभाग की

अंधाधुन्ध कार्यवाही की रोक का प्रबन्ध किया गया और समुचित तहकीक़ात होने पर निर्णय करने की प्रथा जारी हुई। क़ानूनों का प्रचार हुआ, जिससे मनमानी मिट गई। राज्य के आय-व्यय का हिसाब व्यवस्थित रूप से रक्खे जाने में जो सुस्ती और बेपरवाही होती थी वह मिटाई गई और प्रतिवर्ष आयव्यय का बजट बनने लगा तथा उसी के अनुसार व्यय होने लगा। सायर के महसूल की दर एक सी नियत होकर उसके अनुसार वसूल की जाने लगी। अन्न का हिस्सा लेने की प्रथा से राज्य और कृषकों को शिकायत रहती थी, अतएव उसे बन्द कर ज़मीन की पैमाइश के द्वारा उपज के अनुसार मियादी ठेके बांध दिये गये। पहले पुलिस और माल का काम एक ही अहलकार-द्वारा होता था, वह भी पृथक् किया गया। जंगल विभाग का प्रबन्ध किया गया। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए राजधानी में म्युनिसिपल कमेटी की योजना हुई।

उस समय तक राज्य में सर्वत्र सालिमशाही सिक्के का चलन था, जिससे प्रजा को कष्ट रहता था। साथ ही उन दिनों कलदार रुपये का भाव भी बहुत अधिक बढ़ गया, जिससे प्रजा को कपड़ा आदि बाहर से आने वाला सामान महंगा मिलने लगा। तब ई० स० १९०४ (वि० सं० १९६१) में दो सौ सालिमशाही रुपये में सौ रुपये कलदार मिलने का भाव तय करके, छः महीने के भीतर सालिमशाही रुपयों को जमा कराने की मियाद स्थिर की गई और कलदार रुपये का चलन जारी कर दिया गया[1]। इसपर अंग्रेज़ सरकार ने भी बांसवाड़ा राज्य के ख़िराज के पैंतीस हज़ार सालिमशाही के स्थान में सत्रह हज़ार पांचसौ रुपये कलदार वार्षिक रक्खे[2]। दीवानी और फ़ौजदारी अदालतों की अपीलें कौंसिल में सुनी जाने लगीं। राजधानी में वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल और देहातों में चार पाठशालाएं खोली गईं। इनके अतिरिक्त राजधानी में हेमिल्टन पुस्तकालय भी स्थापित किया गया।

---

(१) अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा; पृ० १८१।

(२) वही; पृ० ११४।

वि० सं० १८६२ मार्गशीर्ष सुदि १३ (ई० स० १६०५ ता० १० दिसम्बर) को महाराजकुमार पृथ्वीसिंह का विवाह सिरोही के भूतपूर्व महाराव केसरीसिंह की राजकुमारी आनन्दकुमारी के साथ हुआ[1]।

महाराजकुमार पृथ्वीसिंह का विवाह

उसी वर्ष (अमांत) पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि १ (ई० स० १६०६ ता० ११ जनवरी) को अंग्रेज़-सरकार की तरफ़ से महारावल शंभुसिंह को राज्याधिकार मिला[2], परंतु उसमें राज्य प्रवन्ध करने की योग्यता न होने के कारण ई० स० १६०८ ता० ६ अक्टोबर (वि० सं० १८६५ आश्विन सुदि १५) को उसके राज्य-कार्य से इस्तीफ़ा[3] देने पर पुनः शासन-कार्य पोलिटिकल एजेंट की अध्यक्षता में ही होने लगा।

महारावल को राज्याधिकार मिलना

महारावल शंभुसिंह के राज्य-काल में नामली से बांसवाड़ा और बांसवाड़ा से डूंगरपुर तक तार की लाइनें खुल गईं। जेल का पुख़्ता प्रबंध होकर उसके लिए नवीन इमारत बनवाई गई। शिक्षाविभाग में वृद्धि होकर देहातों में पाठशालाएं बढ़ाई गईं। राजपूत जाति के हित के लिए 'वाल्टर-कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा' की एक शाखा बांसवाड़ा में स्थापित हुई, जिसका सभापति महारावल बनाया गया। मादक द्रव्यों के प्रचार में जो ख़राबियां थीं, उनको मिटाने के लिए आबकारी विभाग खोला गया। इमारत का महकमा (Public Works Department) अलग स्थापित हुआ। बांसवाड़ा के वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल में अंग्रेज़ी शिक्षा देने की व्यवस्था हुई। लोगों को उधार रुपया मिलने के लिए स्टेट बैंक खोला गया तथा ई० स० १६०७ (वि० सं० १८६४) में पोलिटिकल एजेंट की तनख़्वाह वगैरह के जो पांच हज़ार रुपये वार्षिक अंग्रेज़ सरकार को दिये

महारावल के समय के अन्य कार्य

(१) मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० ३१६।

(२) अर्सकिन; गैज़ेटियर ऑव् बांसवाड़ा; पृ० १६६।

(३) एचिसन्; ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; पृ० ४४७।

श्रीमान् रायरायां महाराजाधिराज महारावल सर पृथ्वीसिंहजी बहादुर, के. सी. आई. ई.

जाते थे, वे बिलकुल बंद हो गये। इन सब कार्यों का अधिकांश श्रेय उपर्युक्त अंग्रेज़ अफ़सरों को ही है, जिनकी तत्त्वावधानता में राज्य-कार्य होता था।

महारावल का देहांत और संतति

वि० सं० १९७० (अमांत) मार्गशीर्ष (पूर्णिमांत पौष) वदि ३० (ई० स० १९१३ ता० २७ दिसंवर) को महारावल शंभुसिंह का देहांत हो गया। उसके आठ राणियां थीं, जिनसे ९ पुत्र और दो पुत्रियां हुईं। पुत्रों में से कुंवर प्रतापसिंह तो वाल्यावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो गया और महाराजकुमार पृथ्वीसिंह, गुलाबसिंह, लालसिंह, छत्रसिंह, किशोरसिंह, राजसिंह[1] तथा शंकरसिंह उसकी मृत्यु के समय विद्यमान थे।

महारावल पृथ्वीसिंहजी

जन्म तथा शिक्षा

इनका जन्म वि० सं० १९४५ आषाढ़ सुदि ७ (ई० स० १८८८ ता० १५ जुलाई) को हुआ। प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर ये उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए मेयो कॉलेज (अजमेर) में भेजे गये। वहां इन्होंने नियमानुसार विद्याध्ययन कर डिप्लोमा परीक्षा पास की। अनन्तर मेवाड़ में वेदला ठिकाने के राव नाहरसिंह के चाचा राववहादुर राजसिंह के पास रहकर इन्होंने कुछ दिनों तक वहां की कार्यशैली का अवलोकन किया। वि० सं० १९६५ (ई० स० १९०८) में महारावल शंभुसिंह शासन-कार्य से पृथक् हुआ और दक्षिणी राजपूताना के पोलिटिकल एजेंट ने वांसवाड़ा राज्य का कार्य संभाला, उस समय ये वहां से बुलवाये गये और इन्होंने राज्य के प्रत्येक कार्य में योग देना आरंभ किया, जिससे राज्यसंवंधी कार्यों में इन्हें अनुभव हो गया तथा ई० स० १९११ के फ़रवरी मास (वि० सं० १९६७) से ये दक्षिणी राजपूताना के पोलिटिकल एजेंट के निरीक्षण में राज्यकार्य करने लगे।

---

(१) वि० सं० १९८३ आश्विन सुदि १० (ई० स० १९२६ ता० १६ अक्टोवर) शनिवार को राजसिंह की घोड़े पर से गिर जाने के कारण मृत्यु हुई।

वि० सं० १९६६ कार्तिक शुक्ला १४ (ई० स० १९०९ ता० २६ नवंबर) को इनकी महाराणी देवड़ी के उदर से महाराजकुमार चंद्रवीरसिंह का जन्म हुआ।

महाराजकुमार चंद्रवीरसिंह का जन्म

श्रीमान् सम्राट् पञ्चम जार्ज (स्वर्गीय) ने सम्राज्ञी सहित लन्दन से भारत में पधारकर वि० सं० १९६८ पौष (ई० स० १९११ दिसंबर) में अपने राज्याभिषेक का दिल्ली में बृहत् दरबार कर उक्त नगर को अपनी राजधानी बनाया। उस अवसर पर भारत के राजा, महाराजा तथा अन्य प्रतिष्ठित कर्मचारी एवं धनी मानी व्यक्तियों को दिल्ली में उपस्थित होने का भारत सरकार की ओर से निमंत्रण दिया गया। तदनुसार बांसवाड़ा राज्य में भी निमंत्रण आने पर ये अपने सरदारों और मंत्री आदि के साथ उक्त दरबार में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली गये।

दिल्ली दरबार में सम्मिलित होना

मानगढ़ के पहाड़ पर, जो बांसवाड़ा व सूंथ राज्य की सीमा पर है, गोविंदगिरि नामक एक साधु ने धूनी जमाकर भीलों को उपदेश देना प्रारंभ किया। उसका उद्देश्य पर्वतीय प्रदेश में भील-राज्य स्थापित करना था, इसलिए वह राजसत्ता के विरुद्ध भीलों को बहकाने लगा। फलतः बांसवाड़ा, डूंगरपुर आदि निकटवर्ती राज्यों के कितने एक भील उसके चंगुल में फंस गये और उन्होंने राजाज्ञा की उपेक्षा करना आरंभ किया। यह देखकर बांसवाड़ा राज्य ने वि० सं० १९७० (ई० स० १९१३) में इस बारे में अंग्रेज़ सरकार से लिखा पढ़ी कर पड़ोसी राज्यों और भील कॉर्प्स आदि की सहायता मांगी। इन्होंने (जो उस समय महाराजकुमार थे) अपने यहां के सरदारों आदि की जमीयत को लेकर भीलों पर चढ़ाई कर दी और उस साधु तथा उसकी मंडली को जा दबाया। जब वे लोग हथियार डालकर राज्य की सुपुर्दगी में आने को तैयार न हुए तो उनपर गोलियां चलाई गई, जिससे कई भील हताहत हुए और गोविंदगिरि जीवित पकड़ लिया गया।

गोविंदगिरि साधु का भीलों को बहकाना

वि० सं० १९७० (ई० स० १९१३) में महारावल शंभुसिंह का देहांत हो गया; तब ये पौष सुदि ११ (ई० स० १९१४ ता० ८ जनवरी) को नियमानुसार सिंहासनारूढ़ हुए और उसी वर्ष ता० १८ मार्च=अमांत फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ७ को भारत-सरकार की तरफ़ से राजपूताना के एजेंट टू दि गवर्नर जेनरल सर इलियट् कॉल्विन ने बांसवाड़े जाकर गद्दीनशीनी का दरबार किया और महारावल को भारत के वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज का ख़रीता सुनाकर राजकीय अधिकार सौंप दिये। उस अवसर पर प्रतापगढ़ (देवलिया) का महाराजकुमार मानसिंह तथा गढ़ी आदि के सरदार भी उपस्थित थे।

महारावल को राज्याधिकार मिलना

वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) के योरोपीय महासमर में बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से महारावल ने अपनी तथा अपनी प्रजा की ओर से अंग्रेज़ सरकार के प्रति राज-भक्ति प्रकट करते हुए स्वयं युद्धक्षेत्र में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की, परन्तु भारत के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज ने इनके युद्ध में सम्मिलित होने की आवश्यकता न समझ धन्यवाद-पूर्वक उसे अस्वीकार किया। तब धन और जन से सहायता देकर राज्य ने अपना कर्त्तव्य पालन किया। महारावल ने ब्रिटिश सेना में भरती होनेवाले 'रिक्रूटों' को पंद्रह बीघा भूमि देने, दरबार के उन सेवकों को जो युद्ध में जाना चाहें पेंशन देने और नये रिक्रूट भरती करनेवाले व्यक्ति को प्रति रिक्रूट पांच रुपया इनाम तथा उसकी अच्छी सेवा का प्रमाणपत्र देने की घोषणा की। राज्य ने विविध फंडों में सब मिलाकर लगभग पचास हज़ार रुपये दिये और प्रतिमास एक हज़ार रुपये युद्ध-कार्य में देने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त अट्ठावन हज़ार आठसौ तीस रुपये युद्ध ऋण में भी दिये।

यूरोपीय महासमर में महारावल की सहायता

इनका अंग्रेज़-अफ़सरों से बड़ा अच्छा व्यवहार है और भारत सरकार भी इनसे प्रसन्न है। इनके समय में कुछ वर्षों से दक्षिणी राजपूताने के

दक्षिणी राजपूताने के पोलिटिकल एजेंट का दफ़्तर बांसवाड़ा से हटना

पोलिटिकल एजेंट का दफ़्तर बांसवाड़ा से उठ गया है, क्योंकि महारावल और उनके सरदारों में मेल है तथा भीलों के उपद्रवों में कमी होने के कारण शासन-कार्य व्यवस्थित रूप से हो रहा है। इस समय दक्षिणी राजपूताना के पोलिटिकल एजेंट का कार्य उदयपुरस्थ मेवाड़ का रेज़िडेंट ही करता है। बांसवाड़े के जिस भवन में पोलिटिकल एजेंट का दफ़्तर और निवास था, उसे राज्य ने ख़रीद लिया है। वह मित्रनिवास कहलाता है और उसमें राज्य के बड़े-बड़े मेहमान ठहराये जाते हैं।

महारावल को ख़िताब मिलना

भारत के वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज, चेम्सफ़ोर्ड, रीडिंग, इर्विन और विलिंग्डन तथा भूतपूर्व सम्राट् श्रीमान् एडवर्ड अष्टम से युवराज की अवस्था में उनकी भारत यात्रा के अवसर पर, इनको मिलने के अवसर प्राप्त हुए हैं। इनके उत्तम गुणों से प्रभावित होकर अंग्रेज़-सरकार ने ई० स० १९३३ ता० १ जनवरी (वि० सं० १९८९) को इन्हें के० सी० आई० ई० का ख़िताब देकर सम्मानित किया है।

महारावल की शासन कार्यों में अभिरुचि

इनको शासन-कार्य से अनुराग है और ये अपने राज्य की उन्नति में प्रयत्नशील रहते हैं। बांसवाड़ा राज्य में इस समय जो कुछ उन्नति दिखाई पड़ रही है, वह इनके ही सुशासन का फल है। इन्होंने न्याय-विभाग में जुडीशियल कौंसिल नियत कर रक्खी है। बांसवाड़ा राज्य में दीवानी और फ़ौजदारी अदालतें प्रांतीय न्यायालयों से आये हुए मुक़दमों को सुनती हैं, परन्तु दीवानी और फ़ौजदारी अदालतों के फ़ैसलों की अपीलें जुडिशियल कौंसिल-द्वारा सुनी जाती हैं। कौंसिल से यदि न्याय न मिले तो स्वयं महारावल के इजलास में उज़्रदारी सुनी जाती है। इसके अतिरिक्त शासन-कार्य को भली भांति चलाने के लिए लेजिस्लेटिव कौंसिल (व्यवस्थापक सभा) भी बनी है। वि० सं० १९८७ (ई० स० १९३०) में महारावल ने उसके कार्य में परिवर्त्तन कर उक्त कौंसिल का कार्य बाहरी (फ़ारिन) और भीतरी (होम)

दो विभागों में बांट दिया है तथा युवराज चंद्रवीरसिंह को कौंसिल का सीनियर मेम्बर नियत किया है। रेवेन्यु, हिसाव और पुलिस के कार्यों में बहुत कुछ सुधार हो गया है। इन्होंने अपने नाम पर राजकीय व्यय से एक छापाखाना स्थापित किया है। प्रजा की सुविधा के लिए 'बांसवाड़ा स्टेट गज़ट' का जन्म हुआ था और उसमें राजकीय आज्ञायें प्रकाशित की जाती थीं; परंतु अब वह बन्द हो गया है। बांसवाड़ा राज्य में म्युनिसिपेलिटी के अतिरिक्त इन्होंने पंचायत प्रथा को भी जन्म दिया है, जिससे वहां की प्रजा को बहुत कुछ अधिकार प्राप्त हो गये हैं।

जिसप्रकार महारावल को राजकार्य से प्रेम है, उसी प्रकार इनकी लोकोपयोगी कार्यों की तरफ़ भी पूर्ण रुचि है। इनके राज्य-समय में शिक्षा विभाग में भी उन्नति हुई है और वह एक पृथक् विभाग बनाया जाकर शिक्षा प्रचार के हेतु एक डाइरेक्टर नियत कर दिया गया है। उसकी अधीनता में दो इन्स्पेक्टर नियत हैं, जो नियमित रूप से दौरा कर शिक्षणालयों का निरीक्षण करते रहते हैं। बांसवाड़ा के दरबार स्कूल में संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी की नवीं क्लास तक शिक्षा दी जाती है। देहातों में भी पाठशालाओं की वृद्धि हुई है। इस समय बालिकाओं की शिक्षा की भी राजधानी में व्यवस्था की गई है। राजपूतों में शिक्षा का अनुराग उत्पन्न कराने के लिए बांसवाड़ा में राजपूत बोर्डिंग हाउस स्थापित है। निर्धन और अपाहिज लोगों के पोषणार्थ बांसवाड़े में एक अनाथालय भी खोल दिया गया है और इस कार्य को चलाने के लिए महारावल ने एक फ़ंड खोल दिया है। आयुर्वैदिक चिकित्सा-पद्धति पर लोगों का विश्वास होने से बांसवाड़ा में आयुर्वेद-औषधालय की भी स्थापना हुई है। पाश्चात्य विधि से चिकित्सा के लिए जो अस्पताल पहले था, उसकी उन्नति कर नवीन भवन बनवा दिया है और कर्मचारियों में वृद्धि कर आवश्यक औज़ार आदि वस्तुएं मंगवा दी गई हैं, जिससे बहुत से रोगों का इलाज यहीं पर होने लग गया है। स्त्रियों की चिकित्सा के लिए योग्य दाइयां और नर्सें रक्खी गई हैं। बीमारों के रहने के लिए

महारावल के लोकोपयोगी कार्य

पृथक्-पृथक् वार्ड बना दिये हैं, जिनमें रोगी निवास कर अपनी चिकित्सा कराते हैं और निर्धन रोगी को खुराक राज्य से मिलने की व्यवस्था है। देहातों में भी शफ़ाखाने खोले जा रहे हैं, जिससे भविष्य में वहां की प्रजा को दवा मिलने की अनुकूलता हो जायगी।

वि० सं० १९८५ (ई० स० १९२८) में इन्होंने अपनी वर्षगांठ के अवसर पर प्रजा के ज़िम्मे के बाक़ी के लगान के रुपयों में से एक लाख रुपये छोड़ दिये। दरबार स्कूल के लिए इन्होंने नवीन भवन बनवाकर उसका नाम 'किंग जार्ज फ़िफ़्थ स्कूल' रक्खा है। जिस स्थान में पहले दरबार स्कूल था, उसको यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला का रूप देकर परलोकगत सम्राट् एडवर्ड सप्तम के नाम पर उसका नाम 'एडवर्ड धर्मशाला' रक्खा है। स्वास्थ्य सुधार के लिए बांसवाड़ा में म्युनिसिपल कमेटी स्थापित है, जिसकी मीटिंग के लिए कोई निजी भवन न होने से राजपूताना के भूतपूर्व एजेंट टू दि गवर्नर जेनरल सर इलियट कॉल्विन के नाम पर एक भवन बनवाकर उसका नाम 'कॉल्विन म्युनिसिपल हॉल' रक्खा है। सर कर्ज़न वाइली की स्मृति में बांसवाड़ा में सिद्धनाथ महादेव के समीप कागदी नदी पर 'वाइली ब्रिज' बनवा दिया है, जिससे आने-जानेवालों को बड़ा सुभीता हो गया है और बांसवाड़ा से झालोद तक पक्की सड़क बन रही है। रतलाम की तरफ़ जानेवाले मार्ग (दानपुर के घाटे) को भी सुधरवा दिया है। गोशाला के लिए ११ बीघे भूमि देकर बांसवाड़ा में गोशाला बनवा दी गई है, जिसमें लूली, लंगड़ी, और बूढ़ी-गायों को रक्खा जाकर उनका पालन पोषण किया जाता है। इस कार्य का समस्त व्यय राज्य देता है। बांसवाड़ा से रतलाम एवं अन्य जगहों के आवागमन के मार्ग (अपने इलाक़े में) मोटर चलने लायक़ बनवा दिये हैं। कृषि की उन्नति के लिए तलवाड़े में कृषि फ़ार्म खोला गया है और कृषकों को थोड़े सूद पर रुपये उधार मिलने की व्यवस्था है। इसी प्रकार व्यौपार की वृद्धि के लिए व्यौपारी-वर्ग को भी कम सूद पर रुपये क़र्ज़ मिलने के लिए कमर्शियल बैंक स्थापित है। औद्योगिक कार्यों की तरफ़

रुचि होने से महारावल ने राजधानी बांसवाड़ा में 'कॉटन फ़ैक्टरी' बनवा दी है। जनता के आमोद-प्रमोद के लिए राजधानी के समीप इन्होंने बाई तालाब की पिछोर में एक बड़ा बाग़ बनवाकर हिंसक जंतुओं को उसमें रखने के लिए पिंजरे बनवा दिये हैं। प्रजा के आराम के लिए राजधानी में बिजली की रोशनी का प्रबंध है और गांवों में ख़ास-ख़ास थानों तक टेलीफ़ोन-द्वारा समाचार पहुंचाने की व्यवस्था हो गई है। इन्होंने कई मंदिर, कुंए, बावलियां और तालाबों की मरम्मत करवाई है एवं कितनी ही जगह नये कुंए, बावलियां आदि जलाशय बनवाये हैं, जिनसे बहुधा जल का कष्ट मिट गया है। बांसवाड़ा की सुन्दरता बढ़ाने के लिए तंग रास्तों को ठीक करवा दिया है और राज्य महलों के त्रिपोलिया दरवाज़े पर क्लॉक टावर बनवाकर नई सड़क 'त्रिपोलिया रोड' निकलवा दी है।

शिल्पकार्यों से भी महारावल को कम अनुराग नहीं है। इन्होंने कई पुराने मकानों, महलों, देवालयों और जलाशयों का जीर्णोद्धार कराकर उन्हें सुरक्षित किया है। इन्होंने राज्य-महलों में कितने ही नवीन महल बनवाकर वहां की सुंदरता बढ़ा दी है। राजधानी में कागदी नदी के तट पर नृपति-निवास तथा विट्ठलदेव में सरिता-निवास नामक रमणीय महल बनवाये हैं। इनके तेईस वर्ष के शासन में कई नई इमारतें, महल, बंगले, पुल तथा कचहरियों के मकान बने हैं, जिनसे राजधानी की शोभा बढ़ गई है।

महारावल के बनवाये हुए महल आदि

वर्तमान महारावल बांसवाड़ा राज्य के योग्य शासक हैं। इन्होंने बांसवाड़ा के नष्ट वैभव को पुनः जीवित किया है। इनके राज्यासीन होने के पूर्व बांसवाड़ा के नरेशों के पास राज्योचित सामान की कमी थी, जिसकी इन्होंने बहुत कुछ पूर्ति की है। इनके सुप्रबंध के फलस्वरूप राज्यकोष की दशा अच्छी है और राज्य ऋण-ग्रस्त नहीं है। ये सिंह आदि हिंसक जंतुओं का शिकार तो करते हैं, परंतु उधर इनकी अधिक आसक्ति नहीं है। इनका रहन-

महारावल के जीवन पर विचार

सहन सरल और पुराने ढंग का है। प्राचीन संस्कृति के अनुसार आचरण करने में ही ये अपना गौरव समझते हैं। इनका अपने भाइयों, सरदारों, प्रजावर्ग तथा अन्य नृपतियों से भी मेल है। ख़ास-ख़ास अवसरों पर ये उनको अपने यहां बुलाते हैं और स्वयं भी उनके यहां जाते हैं। इन्होंने भारत में बम्बई, आबू, जोधपुर, ईडर, अजमेर, लखनऊ, बनारस कलकत्ता आदि की यात्राएं की हैं।

महारावल की राणियां और संतति

महारावल पृथ्वीसिंहजी ने चार विवाह किये हैं। पहला विवाह महाराजकुमार होने की अवस्था में सिरोही में हुआ, जिससे महाराजकुमार चंद्रवीरसिंह का जन्म हुआ, परंतु प्रसूतावस्था में ही उक्त महाराणी का देहांत हो गया। तदनन्तर इनका दूसरा विवाह दांता के परमार राणा जसवंतसिंह की पुत्री से हुआ, जिसके गर्भ से राजकुमारी अंबाकुंवरी, कोमलकुंवरी तथा महाराजकुमार राजेन्द्रसिंह उत्पन्न हुए। उनमें से महाराजकुमार तो बाल्यकाल में ही परलोक सिधारा और वि० सं० १९७२ (ई० स० १९१६) में उक्त महाराणी का भी प्रसूति रोग से शरीरांत हो गया। इसपर इन्होंने अपना तीसरा विवाह वि० सं० १९७३ (ई० स० १९१७) में काठियावाड़ के मालिया स्टेट के जाड़ेचा ठाकुर रायसिंह की पुत्री से किया, जिससे एक राजकुमारी हेतकुंवरी का जन्म हुआ। अनन्तर इन्होंने अपना चतुर्थ विवाह ईडर के महाराजा दौलतसिंह की बहिन से किया, जिसके गर्भ से महाराजकुमार नृपतिसिंह (वि० सं० १९७८ वैशाख सुदि ८=ई० स० १९२१ ता० १५ मई) और सूरज़कुंवरी, मोहनकुंवरी, शेरकुंवरी नामक राजकुमारियां उत्पन्न हुईं।

ज्येष्ठ महाराजकुमार चंद्रवीरसिंह ने बांसवाड़ा में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्तकर अजमेर के मेयो कालेज में प्रवेश किया, जहां उसने डिप्लोमा क्लास तक की शिक्षा प्राप्त की है। उसके दो विवाह—भ्रांगध्रा और कडाणा—में हुए हैं, जिनसे राजकुमारियां ही उत्पन्न हुई हैं। महाराजकुमार चंद्रवीरसिंह सरलहृदय और मिलनसार व्यक्ति है, परंतु वह कुछ वर्षों से बांसवाड़ा राज्य के बाहर ही रहता है।

महारावल की ज्येष्ठ राजकुमारी अंबाकुंवरी का विवाह चरखारी (मध्य भारत) राज्य के बुंदेला नरेश अरिमर्दनसिंहजी से वि० सं० १९८४ माघ सुदि ५ (ई० स० १९२८ ता० २७ जनवरी) को और राजकुमारी कोमल-कुंवरी का विवाह जयपुर राज्य के सूरजगढ़ के शेखावत ठाकुर रघुवीरसिंह से वि० सं० १९८८ माघ सुदि १४ (ई० स० १९३२ ता० २१ फ़रवरी) को हुआ है।

सातवां अध्याय

महारावल के समीपी सम्बन्धी और मुख्य-मुख्य सरदार

सरदारों के दर्जे आदि

बांसवाड़ा राज्य के सरदार चार दर्जों—भाई, सोलह, बत्तीस और गुड़ाबंदी—में विभक्त हैं। भाइयों और सोलह के सरदारों की गणना प्रथम वर्ग में होती है। द्वितीय वर्ग में बत्तीस और तृतीय वर्ग में गुड़ावंद सरदार हैं। सोलह, बत्तीस और भाइयों के ठिकानों में से अधिकांश को ताज़ीम और पैर में सोना पहनने का सम्मान प्राप्त है।

चंदूजी का गुड़ा, पीपलदा, सरवन, गोरी-तेजपुर, दौलतपुरा, खाग-रोद, खांदू, तेजपुर और सूरपुर के ठिकाने महारावल के भाइयों के हैं। जिनका सम्मान सोलह के सरदारों के बराबर होता है। कुशलपुरा का सरदार शक्तावत (सीसोदिया) है। मोलां (मोटा गांव), मेतवाला, अर्थूणा गढ़ी, गनोड़ा, खेड़ा-रोहानिया, नवा गांव और मोर के सरदार चौहान हैं। कुशलगढ़, गोपीनाथ का गुड़ा तथा ओड़वाड़ा के सरदार राठोड़ हैं। गढ़ी के सरदार को डूंगरपुर की तरफ़ से भी जागीर है। इसी प्रकार डूंगर-पुर के बनकोड़ा, ठाकरड़ा और मांडव के सरदारों को बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से जागीर है। कुशलगढ़ का राव रतलाम राज्य (मालवा) की तरफ़ से भी जागीर रखता है और उसका संबंध दक्षिणी राजपूताना के पोलिटिकल एजेंट से है।

कुशलगढ़ के अतिरिक्त अन्य सरदार नियत नौकरी के लिए अपनी सेना सहित स्वयं राजधानी में हाज़िर होते हैं। वे वार्षिक ख़िराज भी देते हैं और आवश्यकता होने पर अन्य मौकों पर भी नौकरी के लिए बुलाये जाते हैं। कभी कभी केवल जमीयत ही नौकरी के लिए बुलाई जाती है। महारावल स्वयं यदि सेना लेकर कहीं जाय तो सरदारों का अपनी

सेना सहित उपस्थित होना जागीर-प्रथा का मुख्य नियम है। अपुत्रावस्था में सरदार अपने यहां दत्तक पुत्र ले सकते हैं; परंतु वि० सं० १९३९ के समझौते के अनुसार राज्य में उसकी सूचना देना आवश्यक है। जब किसी सरदार का देहांत होता है तो उसका उत्तराधिकारी तलवारबंदी का नज़राना राज्य में दाख़िल करता है, तब तलवारबंदी होती है।

महारावल के राज्याभिषेक और पाटवी कुंवर तथा कुंवरियों के विवाह के अवसर पर सरदार राज्य को नज़राना देते हैं। वांसवाड़ा राज्य के सरदारों में चौहान मुख्य हैं और किसी समय राज्य की बागडोर उन्हीं के हाथ में थी और वे ही राज्य के रक्षक माने जाते थे। इन चौहानों में पाटवी (मुख्य) ठिकाना मोलां है, परन्तु आय में गढ़ी का ठिकाना सबसे बड़ा है। भाइयों में अधिक आय का ठिकाना खांदू है। पहले सरदार निरंकुश होकर मनमानी करते थे, परन्तु शनैः शनैः अब वे दबा दिये गये हैं और उनके न्याय-सम्बन्धी अधिकार सीमित कर दिये गये हैं। कई वर्षों से राज्य और सरदारों के बीच झगड़ा चला आता था, परन्तु वि० सं० १९३९ (ई० स० १८८३) में महारावल लक्ष्मणसिंह के समय पारस्परिक समझौता होकर कई विवादग्रस्त विषयों का निर्णय हो गया है।

महारावल के निकट के सम्बन्धी

चंदूजी का गुड़ा

यहां का सरदार गुलाबसिंह वांसवाड़ा के वर्तमान महारावल पृथ्वीसिंहजी का सहोदर भ्राता है और उसकी उपाधि 'महाराज' है।

उसका जन्म महारावल शंभुसिंह की दूसरी राणी ईडरवाली केसरकुंवरी के उदर से हुआ। वह राज्य के सायर डिपार्टमेंट का अफ़सर भी रहा है और वर्तमान महारावल ने उसको चंदूजी का गुड़ा जागीर में दिया है।

पीपलदा

यहां का सरदार लालसिंह वांसवाड़ा के वर्तमान महारावल का तीसरा भाई है और उसकी उपाधि 'महाराज' है।

महारावल शंभुसिंह की राणी (लूणावाड़ा इलाके के ढसिया के ठाकुर खुमाणसिंह की पुत्री) लालकुंवरी के उदर से उसका जन्म हुआ। वह बांसवाड़ा राज्य में शिक्षा-विभाग का अफ़सर रहा है और वर्तमान महारावल ने उसको पीपलदा की जागीर दी है।

सरवन

यहां का सरदार मदनसिंह महारावल पृथ्वीसिंहजी का चतुर्थ भाई है और उसकी उपाधि 'महाराज' है।

महाराज मदनसिंह का जन्म महारावल शंभुसिंह की राणी, गांमड़ा (डूंगरपुर) के चौहाण सरदार की पुत्री सूरजकुंवरी के उदर से हुआ है और महारावल पृथ्वीसिंहजी ने उसको सरवन की जागीर दी है।

गोड़ी-तेजपुर

यहां का सरदार छत्रसिंह, महारावल पृथ्वीसिंहजी का पांचवां भाई है और उसकी उपाधि 'महाराज' है।

छत्रसिंह का जन्म महारावल शंभुसिंह की नाथावत (कछवाही) राणी शिवकुंवरी के उदर से हुआ है और वर्तमान महारावल ने उसको यह जागीर दी है।

दौलतपुरा

यहां का स्वामी किशोरसिंह वर्तमान बांसवाड़ा-नरेश का छठा भाई है। उसकी उपाधि 'महाराज' है।

उसका जन्म महारावल शंभुसिंह की राणी, गांमड़ा (डूंगरपुर) के चौहान सरदार की पुत्री सूरजकुंवरी से हुआ और वर्तमान महारावल ने उसको दौलतपुरा की जागीर दी है।

शंकरसिंह

यह महारावल शंभुसिंह का सब से छोटा पुत्र और महारावल सर पृथ्वीसिंहजी का सब से छोटा भाई है। इसका जन्म महारावल शंभुसिंह की पंवार राणी से हुआ। अभी तक इसको कोई जागीर नहीं मिली है।

सागरोद

यहां का स्वामी महारावल लक्ष्मणसिंह का वंशधर है और उसकी उपाधि 'महाराज' है।

महारावल लक्ष्मणसिंह के छोटे पुत्र सवाईसिंह को वर्तमान महारावल पृथ्वीसिंहजी ने सागरोद की जागीर दी। सवाईसिंह का पुत्र दिग्विजयसिंह वहां का वर्तमान सरदार है।

सांदू

सांदू के स्वामी गुहिलोत (अहाड़ा) हैं। उनकी उपाधि 'महाराज' है और वे 'भाई' कहलाते हैं।

महारावल पृथ्वीसिंह (प्रथम) के चार पुत्र थे, उनमें से विजयसिंह बांसवाड़े का स्वामी हुआ। दूसरे पुत्र बख़्तसिंह[1] को वि० सं० १८४६ आषाढ सुदि ८ (ई० स० १७८९ ता० ३० जून)[2] को महारावल विजयसिंह ने सांदू की जागीर दी। बख़्तसिंह के दो पुत्र सरदारसिंह और बहादुरसिंह हुए, जिनमें से बहादुरसिंह, पहले तेजपुर गोद गया; फिर महारावल भवानीसिंह की निःसंतान मृत्यु होने पर बांसवाड़े का स्वामी हुआ।

सरदारसिंह को महारावल उम्मेदसिंह ने वि० सं० १८७४ (ई० स० १८१७) में मरवा डाला। तब सरदारसिंह का उत्तराधिकारी उस(सरदारसिंह)का पुत्र मानसिंह हुआ। महारावल बहादुरसिंह भी निःसंतान था, इसलिए उसने अपनी गद्दीनशीनी के साथ ही सूरपुर के महाराज खुशहालसिंह के पौत्र और बख़्तावरसिंह के पुत्र लक्ष्मणसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया, जो दूर का हक़दार था। इसपर सांदू के महाराज मानसिंह ने अपने हक़ का दावा मेजर रॉबिंसन, पोलिटिकल एजेंट मेवाड़, के पास पेश किया, जिससे आपस में फ़ैसला होकर वि० सं०

---

(१) वंशक्रम—[१] बख़्तसिंह [२] सरदारसिंह [३] मानसिंह [४] फ़तहसिंह और [५] रघुनाथसिंह।

(२) वि० सं० १८४६ आषाढ सुदि ८ का महारावल विजयसिंह का महाराज बख़्तावरसिंह के नाम का परवाना।

१८९६ (ई० स० १८३९) में महारावल ने खांदू के वार्षिक खिराज में से तेरह सौ रुपये सदा के लिए छोड़ दिये।

महाराज मानसिंह के पांच पुत्र—फ़तहसिंह, जोरावरसिंह, केसरीसिंह, गुलाबसिंह, और रत्नसिंह—हुए, जिनमें से फ़तहसिंह, मानसिंह का उत्तराधिकारी हुआ। फ़तहसिंह ने वि० सं० १९०९ (ई० स० १८५२) में बांसवाड़ा राज्य के निवासी उद्दंड भीलों को दबाने में अच्छी सेवा की। महारावल लक्ष्मणसिंह खांदू ठिकाने के अधिकारों में कुछ हस्तक्षेप करना चाहता था, जिससे महाराज फ़तहसिंह और उसके बीच विरोध हो गया। अन्त में जब वि० सं० १९३९ (ई० स० १८८३) में महारावल और सरदारों के बीच समझौता हुआ, तब खांदू के अधिकारों के सम्बन्ध में भी फ़ैसला हो गया[1]। फ़तहसिंह का पुत्र जसवंतसिंह पिता की विद्यमानता में ही वि० सं० १९४२ (ई० स० १८८५) में मर गया। इसलिए वि० सं० १९४७ (ई० स० १८९०) में उस(फ़तहसिंह)की मृत्यु होने पर उसका पौत्र रघुनाथसिंह (जसवंतसिंह का पुत्र) अपने दादा का उत्तराधिकारी हुआ, जो खांदू का वर्तमान सरदार है। उसका वि० सं० १९३८ श्रावण सुदि ११ (ई० स० १८८१ ता० ६ अगस्त) को जन्म हुआ है।

यद्यपि खांदू और राज्य के बीच के कुछ विवादग्रस्त विषयों का फ़ैसला महारावल लक्ष्मणसिंह के समय हो गया था तथापि शासन प्रबन्ध में परिवर्त्तन होने पर फिर राज्य और उसके बीच कई बातों का विवाद खड़ा हो गया। अन्त में खांदू ठिकाने से तलवारबंदी के अवसर पर एक हज़ार एक रुपया राज्य को देने; दाण और आबकारी की आय के एवज़ जो क़र्ज़ा राज्य का खांदू के ज़िम्मे था वो सब माफ़ होकर महाराज खांदू को दस हज़ार रुपये कलदार देने, खांदू पट्टे के जंगल पर राज्य की दस्तंदाज़ी न होने, खांदू पट्टे के लावारिस आसामियों का सामान ठिकाने में ही रखने एवं राज्य के खालसे का कोई आसामी खांदू पट्टे में गोद जाय तो उसका नज़राना महाराज खांदू ही के लेने आदि का

(१) देखो ऊपर पृष्ठ १९२-९७।

फ़ैसला वर्तमान महारावल के समय वि० सं० १९७१ मार्गशीर्ष सुदि १ (ई० स० १९१४ ता० १८ नवम्बर) को हुआ।

महाराज रघुनाथसिंह सुशिक्षित व्यक्ति है। वह ई० स० १९०४-१९१४ (वि० सं० १९६१-७१) तक बांसवाड़ा स्टेट कौंसिल का सदस्य रहा है। वि० सं० १९७० (ई० स० १९१३) में जब मानगढ़ की पहाड़ी में भीलों ने उपद्रव करना आरम्भ किया, उस समय वह अपनी सेना सहित राज्य की सेना में विद्यमान था। उसको महारावल ने दूसरे दर्जे के मैजिस्ट्रेट का अधिकार भी दे दिया है। उसके एक पुत्र शंकरसिंह तथा दो पौत्र भोपालसिंह और गंगासिंह हैं।

तेजपुर

महारावल पृथ्वीसिंह (प्रथम) का छोटा पुत्र रणसिंह[1] था, जिसको उस (रणसिंह) के ज्येष्ठ भ्राता विजयसिंह ने बांसवाड़े का स्वामी होने पर तेजपुर की जागीर दी और उसकी उपाधि 'महाराज' हुई, किन्तु वह (रणसिंह) निःसंतान था, इसलिए खांधू के महाराज बख़्तासिंह का छोटा पुत्र बहादुरसिंह उस (रणसिंह) का उत्तराधिकारी हुआ। महारावल भवानीसिंह के पीछे, बहादुरसिंह के बांसवाड़े का स्वामी होने पर तेजपुर की जागीर ख़ालसा हो गई। फिर महारावल लक्ष्मणसिंह ने वह ठिकाना अपने छोटे पुत्र सुजानसिंह को दिया, परन्तु वह निःसंतान ही मर गया। तब उक्त महारावल ने वहां अपने चतुर्थ पुत्र सज्जनसिंह को नियत किया, जो इस समय तेजपुर का सरदार है।

सूरपुर

महारावल पृथ्वीसिंह (प्रथम) के सब से कनिष्ठ पुत्र खुशहालसिंह को उस (पृथ्वीसिंह) के ज्येष्ठ पुत्र विजयसिंह ने बांसवाड़े का स्वामी होने पर सूरपुर की जागीर दी। खुशहालसिंह के दो पुत्र हंमीरसिंह और बख़्तावर-

---

(१) ऊपर पृ० १३६ में तख़्तसिंह का नाम बड़वे की ख्यात में न होना लिखा है, परन्तु उसी ख्यात में जहां राणियों के नाम दिये हैं वहां तख़्तसिंह और रणसिंह दोनों का भाई होना लिखा है।

सिंह थे। उनमें से हंमीरसिंह अपने पिता खुशहालसिंह का उत्तराधिकारी हुआ तथा बख़्तावरसिंह को वनाला गांव जागीर में मिला। बख़्तावरसिंह का पुत्र लक्ष्मणसिंह था, जिसको महारावल बहादुरसिंह ने निःसंतान होने से बांसवाड़े की गद्दी पर बैठने के समय दत्तक ले लिया। इससे लक्ष्मणसिंह ने, बहादुरसिंह के पीछे बांसवाड़े का राज्य पाया। हंमीरसिंह के पीछे उसका पुत्र माधवसिंह सूरपुर का स्वामी हुआ, परन्तु वह निःसन्तान था, इसलिए महारावल लक्ष्मणसिंह ने वहां अपने पुत्र सूर्यसिंह को नियत किया, जिसकी वि० सं० १९६० (ई० स० १९०३) में मृत्यु हो गई। सूर्यसिंह का पुत्र अभयसिंह था, जिसकी ई० स० १९२९ (वि० सं० १९८६) में मृत्यु हुई। उसका पुत्र भारतेन्द्रसिंह सूरपुर का वर्तमान महाराज है और डेली कॉलेज, इंदौर में शिक्षा पा रहा है।

प्रथम वर्ग के ताज़ीमी सरदार

मोलां (मोटा गांव)

वागड़िये चौहानों के ठिकानों में मोलां का ठिकाना प्रमुख है। जब वागड़ के चौहानों के ठिकानों में कोई सरदार मर जाता है तो मोलां का सरदार जाकर उसको सफ़ेद पगड़ी और तलवार बंधवाता है। उसके पीछे राज्य एवं दूसरे सरदारों की तरफ़ से यह दस्तूर होता है। बांसवाड़ा के महारावल की गद्दीनशीनी के समय भी मोलां का सरदार ही उसको गद्दी पर बिठलाता है। उसकी उपाधि 'ठाकुर' है तथा बांसवाड़ा राज्य के प्रथम वर्ग (सोलह) के सरदारों में उसकी बैठक सब से ऊपर है।

नाडोल के चौहान आसथान का वंशधर मुंधपाल वागड़ में चला आया। उसके पीछे कुछ पीढ़ी बाद चौहान वाला का पुत्र डूंगरसी वीर राजपूत हुआ। मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) ने उसकी वीरता के कारण उसको बदनोर का पट्टा दिया। वि० सं० १५७७ (ई० स० १५२०) में उक्त महाराणा ने ईडर के राव रायमल राठोड़ की सहायतार्थ मलिकहुसेन बहमनी (निज़ामुल्मुल्क) पर, जो गुजरात के सुलतान की

तरफ़ से ईडर का हाकिम था, चढ़ाई की। उसमें डूंगरसी अपने कई भाई-बेटों सहित मारा गया। उसके एक पुत्र कान्हसिंह ने अहमदनगर के क़िले के दरवाज़े को तोड़ने के समय बड़ी वीरता दिखलाई। जब अहमदनगर के क़िले के दरवाज़े के किंवाड़ों को तोड़ने के लिए हाथी से मुहरा कराया गया तो किंवाड़ों पर लगे हुए तीक्ष्ण भालों को देखकर हाथी मुहरा न कर सका। तब वीर कान्हसिंह ने भालों के सामने खड़ा होकर महावत को हाथी अपने बदन पर झोंकने के लिए कहा। महावत के वैसा ही करने पर हाथी ने कान्हसिंह पर मुहरा किया, जिससे किंवाड़ तो टूट गये पर कान्हसिंह का शरीर छिद गया और उसकी मृत्यु हो गई।

महारावल उदयसिंह ने जब वागड़ राज्य के दो भाग कर वागड़ का पूर्वी भाग (बांसवाड़ा राज्य) अपने छोटे पुत्र जगमाल को दे दिया और पश्चिमी हिस्सा, जिसकी राजधानी डूंगरपुर है, अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के लिए रक्खा, तब मोलां का ठिकाना वागड़ के पूर्वी भाग में होने से बांसवाड़ा राज्य के अधीन रहा।

कान्हसिंह का छोटा भाई सूरा था, जिसका पुत्र भाण हुआ। भाण[1] का सातवां वंशधर सूरतसिंह माही नदी के तट पर (महाराणा राजसिंह की सेना से लड़कर) काम आया। सूरतसिंह का पुत्र सरदारसिंह महाराणा जयसिंह का समकालीन था। बांसवाड़ा के महारावल पृथ्वीसिंह (प्रथम) की गद्दीनशीनी के समय सरदारसिंह के पुत्र सोभागसिंह ने महारावल के विरुद्ध आचरण करना आरंभ कर उस(महारावल)को गद्दी से उतारना चाहा, परंतु वह सफल मनोरथ न हुआ। तब वह मरहटी सेना को बांसवाड़े पर चढ़ा लाया। महारावल बांसवाड़ा छोड़कर भूंगड़े के पहाड़ों

---

(१) वंशक्रम—[१] भाण [२] करमसी [३] जसवंत [४] केशोदास [५] सांवलदास [६] गोपीनाथ [७] सूरतसिंह [८] सरदारसिंह [९] सोभागसिंह [१०] सवाईसिंह [११] अजीतसिंह [१२] भवानीसिंह [१३] दौलतसिंह [१४] सरदारसिंह (दूसरा) [१५] मदनसिंह [१६] शोभितसिंह [१७] किशोरसिंह और [१८] प्रतापसिंह।

में चला गया। मरहटी सेना ने बांसवाड़ा राज्य में लूट-मार जारी की। उसका राज्य की सेना से मुक़ावला हुआ। अंत में मरहटी सेना डूंगरपुर, प्रतापगढ़ एवं मेवाड़ के इलाक़ों को लूटती हुई लौट गई। बांसवाड़ा पर मरहटों को चढ़ा लाने से मेवाड़, डूंगरपुर और प्रतापगढ़ के स्वामी भी ठाकुर सोभागसिंह से अप्रसन्न हो गये, तथा उस(सोभागसिंह)के पास इन राज्यों की तरफ़ से जो जागीर थी, वह उन्होंने ज़ब्त कर ली। यही नहीं बांसवाड़ा की तरफ़ से जो जागीर थी, उसका अधिकांश भाग महारावल पृथ्वीसिंह ने खालसा कर गढ़ी के ठाकुर उदयसिंह को दे दिया।

सोभागसिंह का सातवां वंशधर मदनसिंह निःसंतान था, इसलिए उसके चचा लालसिंह का छोटा पुत्र शोभितसिंह मोलां का स्वामी हुआ, जिसकी वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०३) में मृत्यु हो गई। तब उस-(शोभितसिंह)का उत्तराधिकारी उपर्युक्त लालसिंह का ज्येष्ठ पुत्र किशोरसिंह हुआ। किशोरसिंह का जन्म वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में हुआ और वि० सं० १९६७ (ई० स० १९११) में मृत्यु हुई। उसका पुत्र प्रतापसिंह मोलां का वर्त्तमान सरदार है।

मेतवाला

यहां का सरदार चौहान है, जिसकी उपाधि 'ठाकुर' है। यह ठिकाना मोलां (मोटां गांव) से निकला है।

मेतवाले का चौहान मानसिंह बड़ा प्रभावशाली व्यक्ति था। बांस-वाड़े के महारावल मानसिंह की खांदू के भीलों के मुखिया-द्वारा मृत्यु हो जाने पर वह (चौहान मानसिंह) बांसवाड़े का स्वामी बन बैठा। वह इतना ज़बरदस्त था कि उसको बांसवाड़े से निकालने के लिए मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह और डूंगरपुर के महारावल सहसमल ने कुछ सेना भेजी, परंतु वह वहां से न निकाला जा सका। अन्त में वागड़ के दूसरे चौहान सरदारों ने उसको समझाया, तब उसने महारावल जगमाल के ज्येष्ठ पुत्र किशनसिंह के पौत्र उग्रसेन को, जो कल्याणमल का बेटा था, उसके ननिहाल से बुलाकर बांसवाड़े का स्वामी बनाया। महारावल उग्रसेन के समय राज्य की आधी

आय मानसिंह लेता और महारावल के आधे महलों में भी वही रहा करता था।

वि० सं० १६४६ (ई० स० १५६२) के पीछे कई कारणों से महारावल और मानसिंह के बीच विरोध हो गया। अन्त में राठोड़ सूरजमल और केशवदास की सहायता से महारावल ने मानसिंह को बांसवाड़े से निकाल दिया, जिसपर उसने दिल्ली जाकर मुग़ल बादशाह अक़बर को प्रसन्न कर बांसवाड़े का फ़रमान अपने नाम लिखवा लिया और वहां पर अधिकार करने के लिए मिर्ज़ा शाहरुख़ के साथ वह शाही सेना लेकर आया, परन्तु उसे सफलता नहीं हुई, जिससे वहां से लौटकर वह पुनः बादशाह के पास चला गया। महारावल के सरदार सूरजमल तथा ठाकुरसी राठोड़ उसके पीछे लगे हुए थे। वि० सं० १६५८ (ई० स० १६०१) में एक दिन वे अवसर पाकर बुरहानपुर में मानसिंह के खेमे में घुस गये और उन्होंने मानसिंह पर प्रहार किया। मानसिंह मारा गया, पर मरते-मरते उसने ठाकुरसी को भी मार लिया। मानसिंह का पुत्र शत्रुसाल था, जिसका वंशधर विजयसिंह इस समय मेतवाले का सरदार है।

अर्थूणा

यहां के सरदार हाथीयोत (हाथीरामोत) चौहान हैं और उनकी उपाधि 'ठाकुर' है।

वागड़िये चौहान वाला का एक पुत्र डूंगरसी और दूसरा हाथी[1] था। वागड़ के स्वामी महारावल उदयसिंह ने गनोड़ा की जागीर हाथी को दी थी। जब उक्त महारावल ने वागड़ राज्य के दो विभाग कर माही नदी का पूर्वी भाग (वर्तमान बांसवाड़ा राज्य) अपने छोटे पुत्र जगमाल को दिया, तब गनोड़ा माही नदी से पूर्व में होने के कारण वहां का स्वामी जगमाल की तरफ़ रहा और फिर जगमाल तथा उसके ज्येष्ठ भ्राता पृथ्वी-

---

(१) वंशक्रम—[१] हाथी [२] किशनसिंह [३] कपूर [४] ईसर [५] भीमसिंह [६] जसकरण [७] प्रतापसिंह [८] सरदारसिंह [९] गुलालसिंह [१०] पद्मसिंह [११] खुशहालसिंह [१२] दौलतसिंह [१३] भैरवसिंह [१४] भगवंतसिंह [१५] फ़तहसिंह और [१६] पृथ्वीसिंह (निःसंतान मृत्यु हुई)।

राज के बीच युद्ध हुआ, उस समय किशनसिंह जगमाल के पक्ष में रह कर लड़ा। इसपर महारावल जगमाल ने उसको अर्थूणा की जागीर दी; किन्तु थोड़े ही समय बाद अर्थूणा ज़ब्त हो गया। जब मेवाड़ के महाराणा जगत्‌सिंह की बांसवाड़े पर महारावल समरसिंह के समय वि० सं० १६९२ (ई० स० १६३५) में चढ़ाई हुई, तब किशनसिंह का प्रपौत्र भीमसिंह, वीरतापूर्वक युद्ध कर काम आया। इसपर उक्त महारावल ने फिर अर्थूणा उसके वंशजों को दे दिया। भीमसिंह का पुत्र जसकरण था। उस (जसकरण) का ११ वां वंशधर पृथ्वीसिंह थोड़े वर्ष हुए निःसंतान गुज़र गया है; इसलिए अर्थूणा इस समय राज्य के अधिकार में है।

गढ़ी

यहां का स्वामी चौहान क्षत्रिय है और उसकी उपाधि 'राव' है।

बनकोड़ा (डूंगरपुर राज्य) के ठाकुर परसा का पुत्र केसरीसिंह हुआ। उसका दूसरा पुत्र अगरसिंह[1] तथा तीसरा चंदनसिंह डूंगरपुर राज्य को छोड़कर बांसवाड़े के महारावल विष्णुसिंह के पास चले गये, जिनको उक्त महारावल ने निर्वाह के लिए कुछ जीविका (भूमि) निकाल अपने यहां रख लिया। थोड़े समय बाद उक्त महारावल ने अगरसिंह को सेमलिया और चंदनसिंह को वसई (वसी) गांव जागीर में दिया। अपनी योग्य सेवा से वे दोनों भाई शीघ्र ही महारावल के विश्वासपात्र बन गये और राज्य के उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों को भी करने लगे। महारावल विष्णुसिंह के समय के वि० सं० १७८६ वैशाख वदि ८ के ८५००१ रुपये के एक इक़रारनामे में (जो मेवाड़ राज्य के मुसाहब धायभाई नगराज और पंचोली कान्ह सहीवाला को लिखकर दिया गया था) महारावल विष्णुसिंह की स्वीकृति है और लेखक का नाम चौहान अगरसिंह दिया है, जिससे स्पष्ट है कि अगरसिंह उस समय महारावल के मुसाहिब के पद तक पहुंच गया था।

---

(१) वंशक्रम—[१] अगरसिंह [२] उदयसिंह [३] जोधसिंह [४] जसवंतसिंह [५] अर्जुनसिंह [६] रत्नसिंह [७] गंभीरसिंह [८] संग्रामसिंह [९] रायसिंह और [१०] हिम्मतसिंह।

महारावल विष्णुसिंह का देहांत होने पर उसका पुत्र उदयसिंह छोटी आयु में बांसवाड़े का स्वामी हुआ। उस समय महारावल के कुटुंबी नौगावां के भारतसिंह ने उपद्रव करना आरम्भ किया, तब ठाकुर अगरसिंह और चंदनसिंह के साथ उनको दबाने के लिए सेना भेजी गई। वि० सं० १७६४ मार्गशीर्ष (अमांत, पूर्णिमांत पौष) वदि २, ३ (ई० स० १७३७ ता० २८, २९ नवम्बर) को उनका भारतसिंह से मुकाबला हुआ, जिसमें वे दोनों भाई लड़कर मारे गये। चींच गांव में अगरसिंह और चंदनसिंह की स्मारक छत्रियां बनी हुई हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वहां पर ही यह युद्ध हुआ होगा। वि० सं० १८०३ (ई० स० १७४६) में महारावल उदयसिंह थोड़ी आयु में ही मर गया और उसका भाई पृथ्वीसिंह राजगद्दी पर बैठा। उस समय भी राज्य में उपद्रव हो रहा था, जिसको दबाने में अगरसिंह के पुत्र उदयसिंह ने बड़ी तत्परता दिखलाई, जिससे उक्त महारावल के समय उसको अच्छी जागीर मिल गई। उन्हीं दिनों बांसवाड़ा राज्य और सूंथ राज्य के बीच खींचतान हो गई और ठाकुर उदयसिंह का कुटुंबी गंभीरसिंह मारा गया, जिसका बदला लेने के लिए उदयसिंह ने अपने राजपूतों को साथ लेकर सूंथ पर आक्रमण किया। उस समय वहां का राजा बालक था, इसलिए उस (उदयसिंह) को रोकनेवाला वहां कोई न मिला, जिससे उसने निःसंकोच वहां के शेरगढ़ और चिलकारी परगनों पर अपना अधिकार कर लिया। डूंगरपुर के महारावल शिवसिंह की आज्ञानुसार ठाकुर उदयसिंह, मोरी के सरदार को, जो राज्य से विद्रोही हो गया था, पकड़ लाया। इसपर उक्त महारावल ने उसे चीतरी तथा घाटा की जागीर प्रदान की। फिर उसने सेमलिया गांव से उत्तर में एक मील दूर चांप नदी के किनारे गढ़ बनवाकर वहां अपने नाम से गांव आबाद किया, जो गढ़ी कहलाता है। वि० सं० १८३१ (ई० स० १७७४) में ठाकुर उदयसिंह का देहांत हुआ और उसका पुत्र जोधसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ।

उदयपुर के महाराणा भीमसिंह की वि० सं० १८५० (ई० स० १७९४) में बांसवाड़े पर चढ़ाई हुई। तब महारावल विजयसिंह ने जोधसिंह के द्वारा

महाराणा के पास तीन लाख रुपये भेजकर सुलह कर ली। ठाकुर जोधसिंह की वि० सं० १८५८ (ई० स० १८०१) में मृत्यु हुई। तब उसका पुत्र जसवंतसिंह गढ़ी का ठाकुर हुआ, परन्तु वह कुछ ही वर्ष जिया और वि० सं० १८६८ (ई० स० १८११) में उसके निःसंतान मर जाने पर डूंगरपुर राज्य के ठाकरड़े के सरदार दुर्जनसिंह का भाई अर्जुनसिंह गोद जाकर गढ़ी का ठाकुर हुआ। अर्जुनसिंह अपने समय का वीर और बुद्धिमान सरदार था। मरहटों, सिंधियों और पिंडारियों के उपद्रव के समय उसने बांसवाड़ा राज्य की बड़ी सेवा की। जब डूंगरपुर के महारावल जसवंतसिंह (दूसरे) को सिंधियों ने पकड़ लिया और वहां अपना अधिकार कर लिया, तब उस(अर्जुनसिंह) ने वहां से सिंधियों को निकालने में पूरा उद्योग किया। इसपर उक्त महारावल ने सिंधियों के क़ब्ज़े से छूट आने पर अर्जुनसिंह को फिर चीतरी की जागीर दे दी, जो बीच में राज्य के अधिकार में चली गई थी। अपने उत्तम आचरण और कर्त्तव्यनिष्ठा के कारण उस समय ठाकुर अर्जुनसिंह की ख्याति और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी, जिसका वर्णन सर मॉल्कम ने भी अपनी 'मेमोइर्स इन सेंट्रल इंडिया इनक्ल्यूडिंग मालवा' नामक पुस्तक में किया है। अर्जुनसिंह का वि० सं० १८९८ (ई० स० १८४१) में देहांत होने पर उसका पुत्र रत्नसिंह गढ़ी का ठाकुर हुआ, जो बहुत ही समझदार व्यक्ति था। उसकी पुत्री इंद्रकुंवरी का विवाह मेवाड़ के महाराणा शंभुसिंह से (जब वह बागोर का महाराज था) हुआ था, जिससे वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) में उक्त महाराणा ने उसको ताज़ीम, बांह-पसाव आदि की इज्ज़त देकर 'राव' का ख़िताब दिया। कुछ कारणों से महारावल लक्ष्मणसिंह और राव रत्नसिंह के बीच विरोध हो गया, परन्तु महारावल की तरफ़ से बाग़ के एवज़ में दूसरी ज़मीन दिये जाने तथा महसूल राहदारी का संतोषप्रद निबटारा हो जाने से फिर मेल हो गया और वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में महारावल ने उसे अपना मन्त्री बनाया। ठाकुर रत्नसिंह सन्तानहीन था, पर उसने अपने जीवनकाल में ही ठाकरड़े से गंभीरसिंह को बुलाकर दत्तक रख लिया; इसलिए

वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में उसकी मृत्यु होने पर गंभीरसिंह गढ़ी का राव हुआ। उन दिनों बांसवाड़ा राज्य के सरदारों और महारावल के बीच नौकरी, ख़िराज आदि के विषय में कई बातें विवाद-ग्रस्त थीं, जिसका महारावल-द्वारा वि० सं० १९३९ (ई० स० १८८२) में फ़ैसला होने पर गढ़ी के राव के गणगौर के त्यौहार और मेले के अवसर पर स्वयं बांसवाड़ा जाकर नौकरी न देने का निर्णय हुआ।

वि० सं० १९४५ (ई० स० १८८८) में राव गंभीरसिंह निःसंतान मर गया। तब संग्रामसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो उसके भाई (ठाकरड़े के सरदार) उदयसिंह का पुत्र था। वि० सं० १९६१ (ई० स० १९०४) में संग्रामसिंह भी अपुत्र मरा। तब गामड़े से रायसिंह गोद गया, जिसकी वि० सं० १९७४ (ई० स० १९१७) में मृत्यु हुई। उस-(रायसिंह)का पुत्र हिम्मतसिंह गढ़ी का वर्तमान राव है। राव हिम्मतसिंह ने मेयो कॉलेज, अजमेर में शिक्षा पाई है। वह 'क्रिकेट' का अच्छा खिलाड़ी है। गढ़ी में राव की तरफ़ से एक अच्छा स्कूल, अस्पताल आदि हैं, तथा देहातों में भी कई जगह प्रारंभिक पाठशालाएं हैं। राव की बाल्यावस्था के कारण गढ़ी ठिकाने पर जब राज्य का प्रबन्ध रहा, उस समय महारावल ने वहां के मैनेजर को न्याय सम्बन्धी तीसरे दरजे के दीवानी तथा फ़ौजदारी के अधिकार देकर सुभीता कर दिया था।

गनोड़ा

यहां का सरदार चौहान है और डूंगरपुर राज्य के बनकोड़ा ठिकाने के ठाकुर केसरीसिंह के छोटे पुत्र फ़तहसिंह का वंशज है। उसकी उपाधि 'ठाकुर' है। वर्त्तमान ठाकुर सरदारसिंह, मोतीसिंह का पुत्र है।

खेड़ा-रोहानिया

यहां का सरदार चौहान है और मांडव (डूंगरपुर राज्य) के ठाकुर प्रतापसिंह के पुत्र भीमसिंह[1] का वंशज है। उसकी उपाधि 'ठाकुर' है।

---

(१) वंशक्रम के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास;' जिल्द ३, भाग १, पृ० २०६।

वि० सं० १९८५ (ई० स० १९२८) में ठाकुर केसरीसिंह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र दुर्गानारायणसिंह उस (केसरीसिंह) का उत्तराधिकारी हुआ, जो खेड़ा-रोहानिया का वर्त्तमान सरदार है। डूंगरपुर राज्य की तरफ़ से उसके पास ठाकरड़े की जागीर है।

नवा गांव

यहां का सरदार चौहान है और डूंगरपुर राज्य के वनकोड़ा के ठाकुर लालसिंह के छोटे पुत्र सुरतानसिंह[1] का वंशज है। उसकी उपाधि 'ठाकुर' है और डूंगरपुर राज्य की तरफ़ से उसे मांडव की जागीर मिली है।

सुरतानसिंह का सातवां वंशधर दलपतसिंह निःसंतान मरा, इसलिए वर्त्तमान ठाकुर उम्मेदसिंह गामड़ा (डूंगरपुर राज्य) से गोद आया।

मौर

यहां का सरदार चौहान है और उसकी उपाधि 'ठाकुर' है। मौर की जागीर बांसवाड़ा राज्य से वनकोड़ा (डूंगरपुर राज्य) के ठाकुर को दी गई है, जो डूंगरपुर राज्य का प्रमुख सरदार है। वनकोड़े का वर्त्तमान सरदार सज्जनसिंह[2] है और पूर्ववत् मौर की जागीर पर उसका अधिकार है।

कुशलगढ़

कुशलगढ़ के स्वामी रामावत राठोड़ हैं। उनकी उपाधि 'राव' है और बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से तांबेसरा का पट्टा उनकी जागीर में है।

जोधपुर के सुप्रसिद्ध राव जोधा का एक पुत्र वरसिंह था, जो बहुत दिनों तक अपने भाई दूदा के साथ मेड़ते में रहा। मेड़ते में रहते हुए दूदा और वरसिंह के बीच मनो-मालिन्य हो गया, जिससे दूदा बीकानेर चला गया। इधर अवसर पाकर एक दिन मुसलमानों ने आक्रमण कर वरसिंह को पकड़कर क़ैद कर लिया। यह समाचार सुनकर दूदा बीकानेर से चढ़ा

(१) वंशक्रम के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास;' जिल्द ३; भाग १, पृ० २०६।

(२) वही; पृ० २०३-४।

और मुसलमानों को मेड़ते से निकालकर वरसिंह को छुड़ा लाया। फिर दूदा का मेड़ते पर और वरसिंह के वंशजों का रींयां (मारवाड़) पर अधिकार रहा। वरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सिंहा के वंशज भाबुआ के स्वामी हैं। उसका दूसरा पुत्र आसकरण था, जिसके वंशजों ने मालवे की तरफ़ जाकर वहां की भूमि पर अधिकार किया। आसकरण के पौत्र रामसिंह के लिए प्रसिद्ध है कि जब वि० सं० १६८८ (ई० स० १६३१) के लगभग बांसवाड़ा राज्य की गद्दी के लिए चौहानों और राठोड़ों में लड़ाई हुई, उस समय वह उसमें मारा गया। उसके तेरह पुत्र थे, जो रामावत राठोड़ कहलाये। फिर उस(रामसिंह)का तीसरा पुत्र जसवन्तसिंह गद्दी पर बैठा। जसवन्तसिंह का ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह था, जिसने साठ गांवों के साथ खेड़ा की जागीर प्राप्त की, जो रतलाम राज्य में है। तदनन्तर अमरसिंह बादशाह औरंगज़ेब की सेना से लड़कर मारा गया। उसके कोई संतति न थी, इसलिए जसवंतसिंह का छोटा पुत्र अखैराज अपने ज्येष्ठ भ्राता अमरसिंह का उत्तराधिकारी हुआ।

अखैराज के पीछे क्रमशः कल्याणसिंह, कीर्तिसिंह, दलसिंह, केसरीसिंह, अचलसिंह, भगवंतसिंह और ज़ालिमसिंह कुशलगढ़ के स्वामी हुए। ठाकुर ज़ालिमसिंह को मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह ने वि० सं० १८४० (ई० स० १७८३) में 'राव' का खिताब देकर सम्मानित किया था[1], जिससे उसके वंशजों की उपाधि 'राव' हुई। राव ज़ालिमसिंह का उत्तराधिकारी हंमीरसिंह हुआ।

राव हंमीरसिंह और रतलाम के स्वामी के बीच कई बातों का विवाद हो जाने से झगड़ा बढ़ गया और अन्त में अंग्रेज़ सरकार के पास शिकायत होने पर वहां से वि० सं० १९१२ (ई० स० १८५५) में यह निर्णय हुआ कि कुशलगढ़ का राव ... राज्य के मातहत है। वि० सं० १९१५ (ई० स० १८५८) में सिपाही ... समय जब बागी दल के मुखिया तांतिया टोपी के साथ के ... द होते हुए बांसवाड़ा की

(१) बांसवाड़ा ... ० स० १८५८), पृ० १२

बढ़े तो मार्ग में राव हंमीरसिंह ने अपनी सेना के साथ उपस्थित होकर उनको रोकने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु बाग़ियों की संख्या अधिक होने से उसे सफलता नहीं मिली और बाग़ी आगे बढ़ते ही गये। सिपाही विद्रोह के समय राव द्वारा की गई सेवाओं की अंग्रेज़ सरकार में प्रशंसा हुई और उसे खिलअत दी गई।

महारावल लक्ष्मणसिंह के समय कुछ बातें ऐसी हुई, जिनसे राव हंमीरसिंह और उसके बीच मनमुटाव हो गया, जो बढ़ता ही गया और राव हंमीरसिंह अपने को स्वतन्त्र मानकर बांसवाड़ा राज्य की आज्ञाओं की उपेक्षा करने लगा। जब उसकी उदूलहुक्मी और सर्कशी की शिकायतें हुई तो उसने पोलिटिकल एजेंट को स्पष्ट जवाब दिया कि मेरी रियासत बांसवाड़ा से बिल्कुल पृथक् है। यदि बांसवाड़ा के द्वारा मुझ से लिखा-पढ़ी होगी तो मैं कदापि उत्तर न दूंगा। उसे बहुत समझाया कि वह बांसवाड़ा राज्य के मातहत है और सरकार का अहदनामा बांसवाड़ा से है, उसके साथ नहीं, परंतु उसने न माना। पोलिटिकल एजेंट के बुलाने पर राव बांसवाड़े गया, पर महारावल के पास नहीं गया, इससे महारावल और उसके बीच का विरोध और भी बढ़ गया।

महारावल, कुशलगढ़ के राव के ज़िम्मे ख़िराज आदि की रक़म बाक़ी निकालकर उससे वसूल करना चाहता था। इसी बीच वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में कालिंजरा के थाने से एक क़ैदी भाग गया, जिसके लिए यह बात फैलाई गई कि उक्त क़ैदी को कुशलगढ़ के राव का कुंवर कई आदमियों को घायल कर छुड़ा ले गया है। बांसवाड़ा राज्य ने इस बात की आड़ लेकर कुशलगढ़ के राव के विरुद्ध कड़ी शिकायत की। तब पोलिटिकल अफ़सरों ने राव को क़ैदी सौंप देने की आज्ञा दी, पर वह क़ैदी कुशलगढ़वालों की तरफ़ से हमला कर नहीं छुड़ाया गया था, इसलिए कुशलगढ़ के राव ने अपनी निर्दोषिता बतलाते हुए कई उज्र किये, किन्तु कर्नल निक्सन ने उसके उज्र ठीक न समझे। अन्त में उक्त कर्नल के रिपोर्ट करने पर अंग्रेज़ सरकार ने कुशलगढ़ के राव की रतलाम की

जागीर पर भी ज़ब्ती होने की कार्यवाही की।

इस पर कुशलगढ़ के राव ने इस फ़ैसले के विरुद्ध पैरवी की तो पुनः इस मामले की जांच का हुक्म हुआ। फिर यह मामला मेजर मैकेंज़ी आदि खैरवाड़ा के अफ़सरों को सौंपा गया, जिन्होंने घटनास्थल पर जाकर तहक़ीक़ात की और महारावल के कामदार कोठारी केसरीसिंह ने डूंगरपुर के कामदारों की मारफ़त वास्तविक हाल उक्त अफ़सर को ज़ाहिर करा दिया और महारावल से भी किसी प्रकार ऐसा तहरीरी इक़रार करा लिया कि अपराधी का भागना कुशलगढ़ की मदद से न था, राज्य के अहलकारों की गफ़लत से सुनने में आया और इस मामले में कामदारों ने सब कार्यवाही मेरे (महारावल के) हुक्म से की है।

इसी बीच वि० सं० १९२५ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १८६८ ता० १९ नवम्बर) बुधवार को राव हमीरसिंह की मृत्यु हो गई, और उसका पुत्र जोरावरसिंह कुशलगढ़ का राव हुआ। बांसवाड़ा और कुशलगढ़ के झगड़े के संबंध में फिर उक्त अफ़सरों ने जब अंग्रेज़ सरकार में विस्तृत रिपोर्ट पेश कर महारावल की शिकायत की, तो सरकार ने नाराज़ होकर ई० स० १८६९ ता० १ अगस्त (वि० सं० १९२६ श्रावण वदि ८) को महारावल की सलामी में चार तोपें छः वर्ष के लिए घटाकर ग्यारह तोपें नियत करदीं। गांव ज़ब्त करने के बदले कुशलगढ़ के राव को ६३३७ रुपये हरजाने के दिलाना तजवीज़ होकर भविष्य में कुशलगढ़ के भीतरी मामलों में महारावल के किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने, कुशलगढ़ के इलाक़े में से जानेवाली व्यापार की वस्तुओं का महसूल राव के ही लेने, ११०० रुपये सालिमशाही वार्षिक ख़िराज के पोलिटिकल एजेंट के द्वारा बांसवाड़ा को देते रहने और अंग्रेज़ अफ़सर बांसवाड़े का स्वत्व समझ कर जो बात कहे, उसकी तामील करने का फ़ैसला हुआ।

उपर्युक्त फ़ैसले से कुशलगढ़ का राव बांसवाड़ा से बिल्कुल स्वतन्त्र सा हो गया। उसके ठिकाने की गणना अंग्रेज़ सरकार के संरक्षित ठिकानों में होने लगी एवं उसके न्यायसम्बन्धी अधिकार नियत कर दिये

गये। वार्षिक ख़िराज नियमित रूप से बराबर दाख़िल करने और ख़ास-ख़ास अवसरों अर्थात् महारावल की गद्दीनशीनी, कुंवर तथा कुंवरियों के विवाह पर स्वयं बांसवाड़ा में उपस्थित रहने के अतिरिक्त उसका अन्य कुछ भी सम्बन्ध बांसवाड़ा राज्य से न रहा।

इस निर्णय से कुशलगढ़ बांसवाड़ा राज्य के दबाव से मुक्त हो गया और उसको अपना वकील असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट के पास नियत करने का स्वत्व मिल गया। भारत सरकार के फ़ॉरेन सेक्रेटरी डब्ल्यू० एस० सेटनकर-द्वारा ई० स० १८६६ ता० २२ जुलाई (वि० सं० १९२६ आषाढ सुदि १४) को इस निर्णय की सूचना आने पर राव ने असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेंट के पास अपना वकील नियत कर दिया तथा ई० स० १८७२ के जनवरी (वि० सं० १९२८) मास में उसने ख़िराज भी दाख़िल कर दिया, परन्तु तलवारबंदी का नज़राना, जिसके लिए महारावल का उज्र था, दाखिल नहीं किया। अन्त में पोलिटिकल एजेंट मेवाड़ के सिफ़ारिश करने पर ई० स० १८७५ (वि० सं० १९३२) में वह (नज़राना) भी अंग्रेज़ सरकार ने माफ़ कर दिया।

राजपूताने के अन्य राज्यों की भांति कुशलगढ़ ठिकाने में भी बहुत समय तक प्रजा पर अत्याचार होते रहे और ई० स० १८७१ (वि० सं० १९२८) में वहां एक वृद्धा भीलनी को, जो ८० वर्ष की थी, डाकिनी प्रकट कर वृक्ष पर लटका कर मार डाला। इसकी सूचना पोलिटिकल एजेंट को मिलने पर तहक़ीक़ात आरम्भ हुई और सब रहस्य प्रकट हो गया। फिर एजेंट गवर्नर-जेनरल राजपूताना की आज्ञा से कादिर बोहरा (कामदार कुशलगढ़) और विश्वा भोपा (डाकिनी पकड़नेवालों) को पांच-पांच वर्ष तथा अली बोहरा (कोतवाल) को एक वर्ष क़ैद की सज़ा दी गई और तीनों अजमेर के जेलख़ाने में भेजे गए। कुशलगढ़ के राव पर दो हज़ार रुपये जुरमाना हुआ, जिसमें से एक हज़ार रुपये उक्त वृद्धा के पुत्रों को दिलवाए गए[1]।

(१) मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाये राजपूताना; जिल्द १, पृ० ५२१।

हुआ। उस(जोरावरसिंह)के उदयसिंह, दीपसिंह और जसवन्तसिंह नामक तीन पुत्र हुए। राव जोरावरसिंह के समय में कुशलगढ़ में पाठशाला और दवाखाने की स्थापना हुई एवं मुसाफ़िरों के ठहरने के लिए एक सराय भी बनवाई गई। तदनन्तर उस(जोरावरसिंह)का ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह कुशलगढ़ का स्वामी हुआ। ई० स० १९११ (वि० सं० १९६८) में श्रीमान् सम्राट् पञ्चम जॉर्ज (परलोकवासी) ने भारत में आकर दिल्ली में अपने राज्याभिषेकोत्सव का वृहत् दरबार किया। उस अवसर पर दरबार में सम्मिलित होने के लिए भारत सरकार की तरफ़ से राव उदयसिंह के पास निमन्त्रण पहुंचने पर उसने भी दिल्ली जाकर श्रीमान् सम्राट् की सेवा में उपस्थित होने का सम्मान प्राप्त किया। वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) में यूरोप में महासमर की आग भड़क उठने पर राव उदयसिंह ने अपने पुत्रों सहित रणक्षेत्र में जाने की इच्छा प्रकट की और यथाशक्ति धन आदि से सहायता देकर अंग्रेज़ सरकार के प्रति राजभक्ति का परिचय दिया। इकसठ वर्ष की आयु हो चुकने पर वि० सं० १९७२ (ई० स० १९१६) में राव उदयसिंह की मृत्यु हुई। उसके तीन पुत्र—रणजीतसिंह, लक्ष्मणसिंह और छत्रसिंह—हुए।

कुशलगढ़ के वर्त्तमान राव रणजीतसिंह का जन्म वि० सं० १९३९ वैशाख सुदि १४ (ई० स० १८८२ ता० २ मई) को हुआ और अपने पिता उदयसिंह के पीछे वह वि० सं० १९७२ पौष सुदि ९ (ई० स० १९१६ ता० १३ जनवरी) को कुशलगढ़ का स्वामी हुआ।

कुशलगढ़ के ठिकाने से रतलाम राज्य को १२०५ और बांसवाड़ा राज्य को ११०० रुपये सालिमशाही प्रतिवर्ष ख़िराज के दिये जाते थे, परंतु ई० स० १९०४ से सालिमशाही रुपये का चलन बंद हो गया। तब से वह रतलाम राज्य को लगभग ६०० रुपये और बांसवाड़ा राज्य को ५५० रुपये कलदार देता है। रतलाम का ख़िराज वह स्वयं और बांसवाड़ा का दक्षिणी रा[illegible] के पोलिटिकल एजेंट-द्वारा भेजता है।

समस्त लिखा-पढ़ी पोलिटिकल एजेंट-द्वारा ही होती है। उसको न्याय संबंधी अधिकार भी प्राप्त हैं, परंतु संगीन मामलों की रिपोर्ट पोलिटिकल एजेंट के पास करना आवश्यक है एवं मृत्युदंड, आजीवन क़ैद, निर्वासन आदि के बड़े मुक़द्दमों का फ़ैसला एजेंट गवर्नर-जेनरल की आज्ञा से होता है।

नवीन राव की गद्दीनशीनी के अवसर पर झाबुआ का राजा कुशलगढ़ आकर तलवार बंधवाता है। कुशलगढ़ में एक अच्छा स्कूल, अस्पताल, डाकख़ाना आदि हैं और देहातों में भी कुछ स्थानों में पाठशालाएं हैं। कुशलगढ़ का क्षेत्रफल ३४० वर्ग मील है और ई० स० १९३१ की मनुष्य गणना के अनुसार ३५५६४ मनुष्य वहां निवास करते हैं। ठिकाने में ५ सवार और ६० पुलिस के सिपाही तथा २ काम लायक़ तोपें हैं। वर्त्तमान समय में कुशलगढ़ की आय १५६००० रुपये हैं।

राव रणजीतसिंह के व्रजविहारीसिंह, भारतसिंह, उदयनारायणसिंह रामचंद्रसिंह और देवीसिंह नामक पांच पुत्र हुए, जिनमें से कुंवर व्रजविहारीसिंह की वि० सं० १९८८ माघ सुदि १४ (ई० स० १९३२ ता० ९ फ़रवरी) को २८ वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई। उस (व्रजविहारीसिंह) का पुत्र हरेन्द्रकुमारसिंह विद्यमान है, जिसका जन्म वि० सं० १९८१ पौष सुदि ७ (ई० स० १९२४ ता० ११ मई) को हुआ और वह मेयो कॉलेज, अजमेर में शिक्षा पा रहा है।

गोपीनाथ का गुढ़ा (तलवाड़ा)

यहां का सरदार मेड़तिया राठोड़ है और उसकी उपाधि 'ठाकुर' है। राठोड़ समरदान का पुत्र वल्लभनाथ और उसका गोपीनाथ था, जिसने गोपीनाथ का गुढ़ा बसाया। गोपीनाथ का चौथा वंशधर जोरावरसिंह रायपुर की गढ़ी के झगड़े में काम आया। जोरावरसिंह की सातवीं पीढ़ी में शेरसिंह हुआ, जो सिंधिया की फ़ौज के साथ खोडण में लड़कर काम आया। उसके पीछे मोहब्बतसिंह, भवानीसिंह, गुलाबसिंह और बख़्तावरसिंह,

गोपीनाथ के गुड़ा के स्वामी हुए। बख़्तावरसिंह का पुत्र प्रतापसिंह और उसका मोतीसिंह हुआ, जो यहां का वर्त्तमान सरदार है।

ओरीवाड़ा (ओड़वाड़ा)

यहां का सरदार मेड़तिया राठोड़ है और उसकी उपाधि 'ठाकुर' है।

बांसवाड़े के महारावल लक्ष्मणसिंह के समय ओरीवाड़े का सरदार ओंकारसिंह मर गया तब दौलतसिंह वहां नियत किया गया। दौलतसिंह का पुत्र अनूपसिंह और उसका लक्ष्मणसिंह हुआ, जो ओरीवाड़े का वर्त्तमान सरदार है।

कुशलपुरा

यहां का सरदार सीसोदियों की शक्तावत शाखा से है, जो मेवाड़ के भींडर ठिकाने से निकली है। उसकी गणना महारावल के 'भाइयों' में होती है और उसका ख़िराज माफ़ है।

ठाकुर जसवंतसिंह की मृत्यु होने पर उसका उत्तराधिकारी दलपतसिंह हुआ, जो कुशलपुरे का वर्त्तमान सरदार है।

द्वितीय वर्ग के सरदार

संख्या	ठिकाना	खांप	सरदार का नाम	विशेष वृत्त
१	भुवासा	चौहान	हरिसिंह	
२	भूखिया	,,	कुरिसिंह	
३	देवदा	अहाड़ा	मानसिंह	
४	कुवानिया	,,	केसरीसिंह	
५	भीमसोर	,,	लालसिंह	
६	आमजा	,,	माधोसिंह	
७	बीछावाड़ा	चौहान	गंभीरसिंह	
८	छांजा	,,	केसरीसिंह	
९	उंवाड़ा	,,	मोतीसिंह	
१०	नरवाली	शक्तावत सीसोदिया	शंभुसिंह	
११	मोहृयावासा	चौहान	मोहब्वतसिंह	
१२	कुंडला	कुंभावत सीसोदिया	हंमीरसिंह	
१३	वसी	चौहान	लालसिंह	
१४	देलवाड़ा	,,	बलवंतसिंह	
१५	गरखिया	चूंडावत सीसोदिया	शिवसिंह	
१६	सेमलिया		ओंकारसिंह	

परिशिष्ट-संख्या १

गुहिल से लगाकर वागड़ राज्य के संस्थापक सामंतसिंह तक मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं की शोध-पूर्ण वंशावली

१ गुहिल ।

२ भोज ।

३ महेन्द्र ।

४ नाग (नागादित्य) ।

५ शीलादित्य (शील)—वि० सं० ७०३ ।

६ अपराजित—वि० सं० ७१८ ।

७ महेन्द्र (दूसरा) ।

८ कालभोज (बापा)—वि० सं० ७९१–८१० ।

९ खुम्माण—वि० सं० ८१० ।

१० मत्तट ।

११ भर्तृभट (भर्तृपट्ट) ।

१२ सिंह ।

१३ खुम्माण (दूसरा) ।

१४ महायक ।

१५ खुम्माण (तीसरा) ।

१६ भर्तृभट (भर्तृपट्ट, दूसरा)—वि० सं० ९९९, १००० ।

१७ अल्लट—वि० सं० १००८, १०१० ।

१८ नरवाहन—वि० सं० १०२८ ।

१९ शालिवाहन ।

२० शक्तिकुमार—वि० सं० १०३४ ।

२१ अंबाप्रसाद ।

२२ शुचिवर्मा ।

२३ नरवर्मा ।

२४ कीर्तिवर्मा ।

२५ योगराज ।

२६ वैरट ।

२७ हंसपाल ।

२८ वैरिसिंह ।

२९ विजयसिंह—वि० सं० ११६४, ११७३ ।

३० अरिसिंह ।

३१ चोड़सिंह ।

३२ विक्रमसिंह ।

३३ रणसिंह (कर्णसिंह) ।

(मेवाड़ की रावल शाखा) (सीसोदे की राणा शाखा)

३४ क्षेमसिंह — माहप — राहप (मेवाड़ के वर्तमान राजवंश का मूल पुरुष)

३४ क्षेमसिंह के पुत्र: ३५ सामंतसिंह[1] (वि० सं० १२२८-३६) — ३६ कुमारसिंह

(१) सामंतसिंह नें पहले मेवाड़ में राज्य किया, तदनन्तर वागड़ में जाकर नवीन राज्य की स्थापना की । फिर कुमारसिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ । कुमारसिंह के पीछे मथनसिंह, पद्मसिंह, जैत्रसिंह, तेजसिंह, समरसिंह और रत्नसिंह मेवाड़ के स्वामी हुए । महारावल रत्नसिंह के समय वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी ने चित्तोड़ पर आक्रमण किया, जिसमें महारावल रत्नसिंह वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ काम आया । अनन्तर सीसोदे की राणा शाखा के (राहप के वंशधर) वीर हंमीरसिंह ने पीछा चित्तोड़ पर अधिकार कर लिया । उसके वंशज इस समय मेवाड़ के स्वामी हैं ।

परिशिष्ट-संख्या २

वागड़ राज्य के संस्थापक गुहिलवंशी सामंतसिंह से लगाकर महारावल उदयसिंह तक की वंशावली

१ सामंतसिंह (पहले मेवाड़ का स्वामी हुआ, फिर वागड़ पर राज्य किया) (वि० सं० १२२८-३६)।
२ जयतसिंह।
३ सीहड़देव (वि० सं० १२७७-९१)।
४ विजयसिंह (जयसिंह) (वि० सं० १३०६-८)।
५ देवपालदेव (देदा रावल)।
६ वीरसिंहदेव (वरसी रावल) (वि० सं० १३४३-५९)।
७ भूचंड (भचूंड)।
८ डूंगरसिंह।
९ कर्मसिंह।
१० कान्हड़देव।
११ प्रतापसिंह (पाता रावल)।
१२ गोपीनाथ (गेपा रावल) (वि० सं० १४८३-९८)।
१३ सोमदास (वि० सं० १५०६-३६)।
१४ गंगदास (वि० सं० १५३६-५३)।
१५ उदयसिंह (वि० सं० १५५५-८४)।

१६ पृथ्वीराज। (डूंगरपुर की शाखा)

जगमाल। (बांसवाड़े की शाखा)

परिशिष्ट-संख्या ३

वांसवाड़ा राज्य के संस्थापक महारावल जगमाल से लगाकर वर्त्तमान समय तक की वांसवाड़े के राजाओं की वंशावली

नाम	ख्यातों में उल्लिखित राज्याभिषेक के संवत्		शिलालेखों से ज्ञात संवत्	ग्रंथकर्ता के मतानुसार गद्दीनशीनी का संवत्
	बड़वे की ख्यात से	पुरानी ख्यातों से		
महारावल जगमाल	१५८५	१५८६	१५७५–१६०१	१५७५ के आस पास
„ जयसिंह	१५९६	१५९६	...	वि०सं०१६०२ के आस पास
„ प्रतापसिंह	१५९८	१५९८	१६०७–१६३६	„ १६०६ के आस पास
„ मानसिंह	१६३०	१६३०	...	„ १६३७
„ उग्रसेन	१६५०	१६४३	१६४६–१६७०	„ १६४३
„ उदयभाण	१६७०	१६७०	...	„ १६७०
„ समरसिंह	१६७५	१६७१	१६७१–१७०७	„ १६७१
„ कुशलसिंह	१७००	१७१७	१७१८–१७४३	„ १७१७
„ अजबसिंह	१७४४	१७४४	१७४८–१७५८	„ १७४४
„ भीमसिंह	१७६२	१७६२	१७६३	„ १७६२
„ विष्णुसिंह	१७६९	१७६९	१७७०–१७९३	„ १७६९
„ उदयसिंह	१७९३	१७९३	१७९४–१७९६	„ १७९३
„ पृथ्वीसिंह	१८०४	१८०३	१८०३–१८४०	„ १८०३
„ विजयसिंह	१८४२	१८४२	१८४५–१८७२	„ १८४२
„ उम्मेदसिंह	१८७२	...	१८७४–१८७५	„ १८७२
„ भवानीसिंह	१८७६	...	१८७७–१८९५	„ १८७६
„ बहादुरसिंह	१८९५	...	...	„ १८९५
„ लक्ष्मणसिंह	१९००	...	...	„ १९००
„ शंभुसिंह	...	...	...	„ १९६२
„ पृथ्वीसिंहजी दूसरे (विद्यमान)	...	...	...	„ १९७०

परिशिष्ट-संख्या ४

बांसवाड़ा राज्य के इतिहास का कालक्रम

महारावल जगमाल से जयसिंह तक

वि० सं०	ई० स०	
(१५७५)[1]	(१५१८)	महारावल उदयसिंह का वागड़ का आधा राज्य (बांसवाड़ा) अपने दूसरे पुत्र जगमाल को देना।
१५७५	१५१८	सुन्नरणपुर का महारावल उदयसिंह और महा(राज)-कुंवर जगमाल का शिलालेख।
१५७७	१५२०	चींच गांव का महारावल जगमाल का शिलालेख।
१५७७	१५२०	जगमाल का गुजरात की सेना से युद्ध करना।
१५८४	१५२७	जगमाल का खानवे के युद्ध में घायल होना।
(१५८४)	(१५२७)	पृथ्वीराज का बांसवाड़े पर अधिकार करना।
१५८७	१५३०	गुजरात के सुलतान वहादुरशाह का वागड़ में आकर जगमाल को आधा राज्य दिलाना।
(१५९७)	(१५४०)	जगमाल का चित्तोड़ से वणवीर को निकालने में महाराणा उदयसिंह का साथ देना।
(१६०२)	(१५४५)	जगमाल का देहांत।
(१६०२)	(१५४५)	जयसिंह का गद्दी बैठना।

महारावल प्रतापसिंह

(१६०६)	(१५४९)	प्रतापसिंह की गद्दीनशीनी।
१६१३	१५५७	हाजीखां की सहायतार्थ महाराणा उदयसिंह के साथ प्रतापसिंह का जाना।

---

(१) (   ) इस चिह्न में उल्लेखित संवत् आनुमानिक हैं।

वि० सं०	ई० स०	
१६३४	१५७७	प्रतापसिंह का बादशाह अकबर की सेवामें उपस्थित होना।
१६३५	१५७८	महाराणा प्रतापसिंह का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
(१६३५)	(१५७८)	राव चंद्रसेन का बांसवाड़े में जाकर रहना।
(१६३७)	(१५८०)	प्रतापसिंह का देहांत।

महारावल मानसिंह

(१६३७)	(१५८०)	मानसिंह की गद्दीनशीनी।
१६४०	१५८३	मानसिंह का देहांत।

महारावल उग्रसेन

(१६४३)	(१५८६)	उग्रसन का गद्दी बैठना।
१६५८	१६०१	उग्रसेन का चौहान मान को मरवाना।
१६६०	१६०३	बांसवाड़े पर शाही सेना का आना।
१६६५	१६०८	डूंगरपुर के स्वामी कर्मसिंह से युद्ध।
१६७०	१६१३	उग्रसेन का देहांत।

महारावल उदयभाण

१६७०	१६१३	उदयभाण की गद्दीनशीनी।
१६७१	१६१४	उदयभाण का देहांत।

महारावल समरसिंह

१६७१	१६१४	समरसिंह का गद्दी बैठना।
१६७२	१६१५	बांसवाड़े का फ़रमान मेवाड़ के कुंवर कर्णसिंह के नाम होना।
१६७४	१६१७	समरसिंह का बादशाह जहांगीर के पास मांडू जाना।

वि० सं०	ई० स०	
१६८४	१६२७	बादशाह शाहजहां का समरसिंह को मनसब देना।
१६९२	१६३५	महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
(१७००)	(१६४३)	बांसवाड़े का मेवाड़ से अलग होना।
१७१५	१६५८	बादशाह औरंगज़ेब का बांसवाड़े का फ़रमान महाराणा राजसिंह के नाम करना।
१७१६	१६५९	महाराणा राजसिंह का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
१७१७	१६६०	महारावल का देहांत।

महारावल कुशलसिंह

१७१७	१६६०	महारावल की गद्दीनशीनी।
१७३०	१६७३	महाराणा राजसिंह का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
(१७३५)	(१६७८)	बांसवाड़े का फ़रमान महारावल कुशलसिंह के नाम होना।
१७४३	१६८६	मेवाड़ के महाराणा जयसिंह का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
१७४४	१६८८	महारावल का देहांत।

महारावल अजबसिंह

१७४४	१६८८	महारावल का राज्याभिषेक।
१७४८	१६९१	महाराणा जयसिंह का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
१७५५	१६९८	महाराणा अमरसिंह (दूसरा) का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
१७५९	१७०२	डांगल ज़िले के २७ गांवों पर, जो महाराणा राजसिंह ने ज़ब्त किये थे, किसी तरह का दखल न देने के लिए अजबसिंह के नाम वज़ीर असदखां का पत्र।

वि० सं०	ई० स०	
१७६२	१७०६	महारावल का देहांत।

महारावल भीमसिंह

१७६२	१७०६	भीमसिंह की गद्दीनशीनी।
१७६९	१७१२	भीमसिंह का देहांत।

महारावल विष्णुसिंह

१७६९	१७१२	विष्णुसिंह का राज्याभिषेक।
१७७४	१७१७	मेवाड़ के मन्त्री बिहारीदास का सेना लेकर बांसवाड़े जाना।
१७८५	१७२८	बांसवाड़ा राज्य से खिराज वसूली का अधिकार पेशवा-द्वारा मल्हारराव होल्कर व ऊदाजी पंवार को दिया जाना।
१७८५	१७२८	मरहटा सेनापति राणोजी कदमराव और सवाई काटसिंह कदमराव का आकर बांसवाड़े में लूटमार करना।
१७८७	१७३०	महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
१७८७	१७३०	महारावल का अपनी बहिन का विवाह बूंदी के पद-च्युत राव बुधसिंह से करना।
१७९३	१७३७	महारावल का देहांत।

महारावल उदयसिंह

१७९३	१७३७	उदयसिंह की गद्दीनशीनी।
१७९८	१७४१	मरहटी सेना का बांसवाड़ा राज्य में आना।
१८०३	१७४६	उदयसिंह का देहावसान।

महारावल पृथ्वीसिंह (प्रथम)

वि० सं०	ई० स०	
१८०३	१७४६	पृथ्वीसिंह का राज्याभिषेक।
(१८०३)	(१७४६)	धार के स्वामी आनन्दराव का वांसवाड़े में आकर धन लेना।
१८०४	१७४७	महारावल का साहू राजा से सतारे जाकर मिलना।
१८०५	१७४६	धार के स्वामी के उपद्रवों की जांच के लिए पेशवा का मेघश्याम बापूजी को भेजना।
१८०७	१७५०	पृथ्वीसिंह का सतारे से लौटना।
१८१३	१७५६	लूणावाड़ा के राणा शक्तिसिंह से युद्ध।
१८४२	१७८६	महारावल का परलोकवास।

महारावल विजयसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१८४२	१७८६	विजयसिंह की गद्दीनशीनी।
१८५०	१७६४	मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की वांसवाड़े पर चढ़ाई।
१८५५	१७६८	महाराणा भीमसिंह की वांसवाड़े पर दूसरी वार चढ़ाई।
१८५७	१८००	धार के स्वामी आनन्दराव (दूसरा) की वांसवाड़े पर चढ़ाई।
१८६२	१८०५	वांसवाड़े में मेवाड़ की सेना का आना।
१८६६	१८१२	विजयसिंह का अंग्रेज़ सरकार की संरक्षणता में जाने का प्रस्ताव करना।
१८७०	१८१४	खुदादादखां सिंधी से युद्ध होना।
१८७२	१८१५	होलकर के सेनापति रामदीन का उपद्रव।
१८७२	१८१६	महारावल का परलोकवास।

वि० सं०	ई० स०	
		महारावल उम्मेदसिंह
१८७२	१८१६	महारावल की गद्दीनशीनी।
१८७४	१८१७	करीमखां पिंडारी का बांसवाड़े में आना।
१८७५	१८१८	महारावल की अंग्रेज़ सरकार से संधि होना।
१८७६	१८१९	महारावल का देहांत।
		महारावल भवानीसिंह
१८७६	१८१९	महारावल की गद्दीनशीनी।
१८७६	१८२०	अंग्रेज़ सरकार से चढ़े हुए ख़िराज आदि का अहदनामा होना।
१८७९	१८२३	ख़िराज के सम्बन्ध का दूसरा अहदनामा होना।
१८८०	१८२४	सेना व्यय के ८४०० रुपये देने का इक़रार होना।
१८८६	१८२९	पोलिटिकल एजेंट का शासन कार्य में दख़ल देना।
१८९३	१८३६	महारावल का शासन कार्य व्यवस्थित रूप से चलाने का इक़रार करना।
१८९५	१८३८	महारावल की मृत्यु।
		महारावल बहादुरसिंह
१८९५	१८३८	महारावल की गद्दीनशीनी।
१९००	१८४४	महारावल का देहांत।
		महारावल लक्ष्मणसिंह
१८९६	१८३९	लक्ष्मणसिंह का जन्म।
१९००	१८४४	लक्ष्मणसिंह की गद्दीनशीनी।
१९१३	१८५६	राज्याधिकार सौंपा जाना।
१९१५	१८५९	तात्या टोपे का बांसवाड़े में आना।

वि० सं०	ई० स०	
१९१८	१८६२	वांसवाड़ा राज्य को गोद लेने की सनद मिलना।
१९२१	१८६४	वेणेश्वर के मंदिर का फ़ैसला होना।
१९२५	१८६८	अपराधियों के लेन देन का मुआहदा होना।
१९२६	१८६९	कुशलगढ़ के वारे में अंग्रेज़ सरकार से फ़ैसला होना।
१९२६	१८६९	वांसवाड़े में असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट की नियुक्ति।
१९२८	१८७१	गुढे के ठाकुर हिम्मतसिंह का वांसवाड़े की सेना से मुक़ावला होना।
१९३३	१८७७	दिल्ली दरवार के उपलक्ष में झंडा आना।
१९५६	१८९९	महारावल का शासन कार्य से पृथक् होना।
१९६०	१९०३	महारावल के दूसरे कुंवर सूर्यसिंह का देहांत।
१९६२	१९०५	महारावल का परलोकवास।

महारावल शंभुसिंह

१९२५	१८६८	शंभुसिंह का जन्म।
१९६२	१९०५	शंभुसिंह का राज्याभिषेक।
१९६२	१९०५	महाराजकुमार पृथ्वीसिंह का विवाह।
१९६२	१९०६	शंभुसिंह को राज्याधिकार मिलना।
१९६५	१९०८	शंभुसिंह का राजकार्य छोड़ना।
१९७०	१९१३	शंभुसिंह का देहावसान।

महारावल सर पृथ्वीसिंहजी

१९४५	१८८८	महारावल का जन्म।
१९६५	१९०८	शासन कार्य में अनुभव प्राप्ति के लिए अवसर मिलना।
१९६६	१९०९	युवराज चंद्रवीरसिंह का जन्म।
१९६८	१९११	राजकुमार अवस्था में दिल्ली दरवार में जाना।
१९७०	१९१३	मानगढ़ की पहाड़ी पर भीलों का उपद्रव।

वि० सं०	ई० स०	
१९७०	१९१४	महारावल का गद्दी बैठना।
१९७०	१९१४	राज्याधिकार मिलना।
१९७३	१९१७	महारावल का तीसरा विवाह होना।
१९७८	१९२१	महाराजकुमार नृपतिसिंह का जन्म।
१९८४	१९२८	ज्येष्ठ राजकुमारी अंबाकुंवरी का विवाह।
१९८५	१९२८	महारावल का लगान की बाक़ी रक़म में से एक लाख रुपये माफ़ करना।
१९८८	१९३२	राजकुमारी कोमलकुमारी का विवाह।
१९८९	१९३३	महारावलजी को के० सी० आई० ई० का ख़िताब मिलना।

परिशिष्ट-संख्या ५

बांसवाड़ा राज्य के इतिहास के प्रणयन में जिन-जिन पुस्तकों से सहायता ली गई उनकी सूची

संस्कृत और प्राकृत

संस्कृत—

अमरकाव्य।
अमरसिंहाभिषेककाव्य।
जैनलेखसंग्रह (पूर्णचंद्र नाहर)।
ब्राह्मणभाग (अग्निरहस्यकांड)।
,, (एकपादकाख्यकांड)।
मत्स्यपुराण।
राजप्रशस्तिमहाकाव्य (रणछोड़ भट्ट)।
हरिभूषणमहाकाव्य (गंगाराम)।

प्राकृत—

पाइअलच्छीनाममाला (धनपाल)।

हिन्दी, डिंगल, मराठी, गुजराती, उर्दू, फ़ारसी आदि

हिन्दी—

अकबरनामा (मुंशी देवीप्रसाद)।
इतिहास राजस्थान (चारण रामनाथ रत्नू)।
ऐतिहासिक बातें (कविराजा बांकीदास)।
गढ़ी ठिकाने की ख्यात।
जहांगीरनामा (मुंशी देवीप्रसाद)।
जोधपुर राज्य की ख्यात।

डूंगरपुर राज्य के राणीमंगे की ख्यात।
दयालदास की ख्यात।
बांसवाड़ा राज्य की एक पुरानी वंशावली।
बांसवाड़ा राज्य के बड़वे की ख्यात।
महाराणा उदयसिंहजी का जीवन चरित्र (मुंशी देवीप्रसाद)।
मुंहणोत नैणसी की ख्यात।
राजपूताने का इतिहास (गौरीशंकर हीराचंद ओझा)।
राव कल्याणमलजी का जीवन चरित्र (मुंशी देवीप्रसाद)।
वीरविनोद (कविराजा श्यामलदास)।
शाहजहांनामा (मुंशी देवीप्रसाद)।
सिरोही राज्य का इतिहास (गौरीशंकर हीराचंद ओझा)।

डिंगल—

भीमविलास (कृष्ण कवि)।
राजविलास (मान कवि)।
वंशभास्कर (मिश्रण सूर्यमल्ल)।

मराठी—

धारच्यां पंवारा चे महत्त्व व दर्जा (लेले व ओक)।
सिलेक्शन्स फ़्रॉम दि सतारा राजाज़ एण्ड दि पेशवाज़ डायरीज़।

गुजराती—

गुजरात राजस्थान (कालीदास देवशंकर पंड्या)।
लूणावाड़े की ख्यात।

फ़ारसी, उर्दू—

अकबरनामा (अबुलफज़ल)।
तबक़ाते अकबरी।
तारीखे अलफ़ी।
मिराते सिकंदरी।
वक़ाये राजपूताना (मुंशी ज्वालासहाय)।

अंग्रेज़ी ग्रंथ

Aberigh-mackay, G. R.—The Native Chiefs of India and their States (1877).
Aitchison, C. U.—Treaties, Engagements and Sanads.
Annual Reports of the Rajputana Museum Ajmer.
Bayley—History of Gujarat.
Beveridge, A. S.—The Babar-nama in English (Memoirs of Babar)
Beveridge, H.—Translation of Akbarnama.
Briggs, John—History of the Rise of the Mohammadan power in India (Translation of Tarikh-i-Ferishta).
Campbell, J. M.—Gazetteer of Bombay Presidency.
Chiefs and Leading Families of Rajputana.
Elliot, Sir H. W.—The History of India as told by its own Historians.
Epigraphia Indica.
Erskine, K. D.—Gazetteer of the Banswara State.
Gazetteer of the Banswara State (1879) in Rajputana Gazetteer.
Hendley, Doctor T. H.—The Rulers of India and the Chiefs of Rajputana.
Indian Antiquary.
Journal of the Asiatic Society of Bengal.
Jwala Sahai—The Loyal Rajputana.
Malcolm, J.—Memoirs of Central India.
Markand N. Mehta and Mannu N. Mehta—Hind Rajasthan.
Memorandum on the Indian States.
Powlet—Gazetteer of Bikaner.
Rapson, E. J.—Catalogue of the coins of the Andhra Dynasty, the Western Ksatraps, the Traikutaka Dynasty and the Bodhi Dynasty.
Rogers, A. and Beveridge, H.—The Tuzuk-i-Jahangiri (Memoirs of Jahangir).
Syed Nawab Ali and Seddon—Mirat-i-Ahmadi Supplement, Translated from the Persian of Ali Mohammad Khan.
The Ruling Princes, Chiefs and Leading Personages in Rajputana and Ajmer.
Showers—A Missing Chapter in the Indian Mutiny.
Vedi-velu, A.—The Ruling Chiefs, Nobles, and Zamindars of India

अनुक्रमणिका

(क) वैयक्तिक

उ

ऊ

ऋ

ए

ओ

औ

अं

क

झ

ट

ठ

ड

ध

न

प

म

य

र

ल

व

श

स

ह

(ख) भौगोलिक

उ

ऊ

ए

ओ

अं

क

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

श

स

ह

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४	८	बादशाद	बादशाह
४५	१	बांकीदान	बांकीदास
१२३	११	वि० सं० १७६४	वि० सं० १७६३
,,	१२	ई० स० १७३७	ई० स० १७३६
१२७	१२	बांसवाड़ को	बांसवाड़े को
१२८	१३	४	२, ३
,,	,,	३०	२८, २९
१८५	४	कुवाानया	कुवानिया
१९८	३	झगड़ा	झगड़ों
१९९	१८	शहर	शेर
२०५	१०	तथा शंकरसिंह	मदनसिंह तथा शंकरसिंह
१३०	२७	कुशलगड़	कुशलगढ़